सुत्त-पिटक का

संयुत्त-निकाय

दूसरा भाग

[षळायतनवर्ग, महावर्ग]

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए.

त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ, बनारस

प्रथम संस्करण
११००

बु० सं० २४९८
ई० सं० १९५४

मूल्य

संयुत्त-सूची

खण्ड-सूची

ग्रन्थ-विषय-सूची

वस्तु-कथा

पूरे संयुत्त निकाय की छपाई एक साथ हो गई थी और पहले विचार था कि एक ही जिल्द में पूरा संयुत्त निकाय प्रकाशित कर दिया जाय, किन्तु ग्रन्थ-कलेवर की विशालता और पाठकों की असुविधा का ध्यान रखते हुए इसे दो जिल्दों में विभक्त कर देना ही उचित समझा गया। यही कारण है कि इस दूसरे भाग की पृष्ठ-संख्या का क्रम पहले भाग से ही सम्बन्धित है।

इस भाग में षळायतनवर्ग और महावर्ग ये दो वर्ग हैं, जिनमें ९ और १२ के क्रम से २१ संयुत्त हैं। वेदना संयुत्त सुविधा के लिए षळायतन और वेदना दो भागों में कर दिया गया है, किन्तु दोनों की क्रम-संख्या एक ही रखी गयी है, क्योंकि षळायतन संयुत्त कोई अलग संयुत्त नहीं है, प्रत्युत वह वेदना संयुत्त के अन्तर्गत ही निहित है।

इस भाग में भी उपमा-सूची, नाम-अनुक्रमणी और शब्द-अनुक्रमणी अलग से दी गई है। बहुत कुछ सतर्कता रखने पर भी प्रूफ सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह ही गई हैं, किन्तु वे ऐसी त्रुटियाँ हैं जिनका ज्ञान स्वतः उन स्थलों पर हो जाता है, अतः शुद्धि-पत्र की आवश्यकता नहीं समझी गई है।

सारनाथ, बनारस
४–९–५४

भिक्षु जगदीश काश्यप
भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त (=सूत्र)–सूची

चौथा खण्ड

षळायतन वर्ग

पहला परिच्छेद

३४. षळायतन संयुत्त

मूल पण्णासक

पहला भाग : अनित्य वर्ग

दूसरा भाग : यमक वर्ग

तीसरा भाग : सर्व वर्ग

चौथा भाग : जातिधर्म वर्ग

पाँचवाँ भाग : अनित्य वर्ग

द्वितीय पण्णासक

पहला भाग : अविद्या वर्ग

दूसरा भाग : मृगजाल वर्ग

तीसरा भाग : ग्लान वर्ग

चौथा भाग : छन्न वर्ग

पाँचवाँ भाग : षट् वर्ग

तृतीय पण्णासक

पहला भाग : योगक्षेमी वर्ग

पाँचवाँ भाग : नवपुराण वर्ग

चतुर्थ पण्णासक

पहला भाग : तृष्णा-क्षय वर्ग

दूसरा भाग : सट्ठि पेय्याल

तीसरा भाग : समुद्र वर्ग

चौथा भाग : आशीविष वर्ग

दूसरा परिच्छेद

३४. वेदना संयुत्त

पहला भाग : सगाथा वर्ग

दूसरा भाग : रहोगत वर्ग

तीसरा भाग : अट्ठसत परियाय वर्ग

तीसरा परिच्छेद

३५. मातुगाम संयुत्त

पहला भाग : पेय्याल वर्ग

दूसरा भाग : पेय्याल वर्ग

तीसरा भाग : बल वर्ग

चौथा परिच्छेद

३६. जम्बुखादक संयुत्त

पाँचवाँ परिच्छेद

३७. सामण्डक संयुत्त

छठाँ परिच्छेद

३८. मोग्गल्लान संयुत्त

सातवाँ परिच्छेद

३९. चित्त संयुत्त

आठवाँ परिच्छेद

४०. गामणी संयुत्त

नवाँ परिच्छेद

४१. असङ्खत संयुत्त

पहला भाग : पहला वर्ग

दूसरा भाग : दूसरा वर्ग

दसवाँ परिच्छेद

४२. अव्याकृत संयुत्त

पाँचवाँ खण्ड

महावर्ग

पहला परिच्छेद

४३. मार्ग संयुत्त

पहला भाग : अविद्या वर्ग

दूसरा भाग : विहार वर्ग

तीसरा भाग : मिथ्यात्व वर्ग

चौथा भाग : प्रतिपत्ति वर्ग

अञ्ञतित्थिय-पेय्याल

सुरिय-पेय्याल

विवेक-निश्रित

राग-विनय

प्रथम एकधर्म-पेय्याल

विवेक-निश्रित

राग-विनय

द्वितीय एकधर्म-पेय्याल

विवेक-निश्रित

राग-विनय

गङ्गा-पेय्याल

विवेक-निश्रित

सातवाँ भाग : एषण वर्ग

आठवाँ भाग : ओघ वर्ग

दूसरा परिच्छेद

४४. बोध्यङ्ग संयुत्त

पहला भाग : पर्वत वर्ग

दूसरा भाग : ग्लान वर्ग

तीसरा भाग : उदायि वर्ग

चौथा भाग : नीवरण वर्ग

पाँचवाँ भाग : चक्रवर्ती वर्ग

तीसरा परिच्छेद

४५. स्मृतिप्रस्थान संयुत्त

दूसरा भाग : नालन्द वर्ग

तीसरा भाग : शीलस्थिति वर्ग

चौथा भाग : अननुश्रुत वर्ग

पाँचवाँ भाग : अमृत वर्ग

चौथा परिच्छेद

४६. इन्द्रिय संयुत्त

तीसरा भाग : छळिन्द्रिय वर्ग

चौथा भाग : सुखेन्द्रिय वर्ग

पाँचवाँ भाग : जरा वर्ग

छठाँ परिच्छेद

४८. बल संयुत्त

सातवाँ परिच्छेद

४९. ऋद्धिपाद संयुत्त

आठवाँ परिच्छेद

५०. अनुरुद्ध संयुत्त

नवाँ परिच्छेद

५१. ध्यान संयुत्त

पहला भाग : गङ्गा-पेय्याल

दूसरा भाग : अप्रमाद वर्ग

तीसरा भाग : बलकरणीय वर्ग

चौथा भाग : एषण वर्ग

पाँचवाँ भाग : ओघ वर्ग

दसवाँ परिच्छेद

५२. आनापान-संयुत्त

पहला भाग : एकधर्म वर्ग

दूसरा भाग : द्वितीय वर्ग

ग्यारहवाँ परिच्छेद

५३. स्रोतापत्ति संयुत्त

पहला भाग : वेलुद्वार वर्ग

दूसरा भाग : सहस्सक वर्ग

तीसरा भाग : सरकानि वर्ग

चौथा भाग : पुण्याभिसन्द वर्ग

पाँचवाँ भाग : सगाथक पुण्याभिसन्द वर्ग

छठाँ भाग : सप्रज्ञ वर्ग

सातवाँ भाग : महाप्रज्ञा वर्ग

बारहवाँ परिच्छेद

५४. सत्य संयुत्त

पहला भाग : समाधि वर्ग

दूसरा भाग : धर्मचक्र-प्रवर्तन वर्ग

तीसरा भाग : कोटिग्राम वर्ग

चौथा भाग : सिंसपायन वर्ग

पाँचवाँ भाग : प्रपात वर्ग

छठाँ भाग : अभिसमय वर्ग

सातवाँ भाग : सप्तम वर्ग

आठवाँ भाग : अप्पका विरत वर्ग

नवाँ भाग : आमकधान्य-पेय्याल

दसवाँ भाग : बहुतर सत्व वर्ग

ग्यारहवाँ भाग : गति-पञ्चक वर्ग

चौथा खण्ड

षळायतन वर्ग

पहला परिच्छेद

३४. षळायतन-संयुत्त

मूल पण्णासक

पहला भाग

अनित्य वर्ग

§ १. अनिच्च सुत्त (३४. १. १. १)

आध्यात्म आयतन अनित्य हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ !

"भदन्त !" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

श्रोत्र अनित्य है···। घ्राण अनित्य है···। जिह्वा अनित्य है···। काया अनित्य है···।

मन अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में वैराग्य करता है। श्रोत्र में···। घ्राण में···। जिह्वा में···। काया में···। मन में···। वैराग्य करने से राग-रहित हो जाता है। रागरहित होने से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, पुनः जन्म नहीं होगा—जान लेता है।

§ २. दुक्ख सुत्त (३४. १. १. २)

आध्यात्म आयतन दुःख हैं

भिक्षुओ ! चक्षु दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

श्रोत्र दुःख है···। घ्राण दुःख है···। जिह्वा दुःख है···। काया दुःख है···। मन दुःख है···। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में वैराग्य करता है···।

§ ३. अनत्त सुत्त (३४. १. १. ३)

आध्यात्म आयतन अनात्म हैं

भिक्षुओ ! चक्षु अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

श्रोत्र अनात्म है···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ४. अनिच्च सुत्त (३४. १. १. ४)

बाह्य आयतन अनित्य हैं

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

शब्द अनित्य है···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ५. दुक्ख सुत्त (३४. १. १. ५)

बाह्य आयतन दुःख हैं

भिक्षुओ ! रूप दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है, वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

शब्द दुःख है···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ६. अनत्त सुत्त (३४. १. १. ६)

बाह्य आयतन अनात्म हैं

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है। जो अनात्म है, वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये। शब्द अनात्म है···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ७. अनिच्च सुत्त (३४. १. १. ७)

आध्यात्म आयतन अनित्य हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत चक्षु अनित्य है, वर्तमान का क्या कहना है ! भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक अतीत चक्षु में भी अनपेक्ष होता है, अनागत चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता, और वर्तमान चक्षु के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नशील होता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ ८. दुक्ख सुत्त (३४. १. १. ८)

आध्यात्म आयतन दुःख हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत चक्षु दुःख है, वर्तमान का क्या कहना ! भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक अतीत चक्षु में भी अनपेक्ष होता है, अनागत चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता, और वर्तमान चक्षु के निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नशील होता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ ९. अनत्त सुत्त (३४. १. १. ९)

आध्यात्म आयतन अनात्म हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत चक्षु अनात्म है, वर्तमान का क्या कहना !···

श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ १०. अनिच्च सुत्त (३४. १. १. १०)

बाह्य आयतन अनित्य हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत रूप अनित्य है, वर्तमान का क्या कहना !···।

शब्द···। गन्ध···। इसे जान पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ११. दुक्ख सुत्त (३४. १. १. ११)

बाह्य आयतन दुःख हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत रूप दुःख हैं, वर्तमान का क्या कहना !

शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ १२. अनत्त सुत्त (३४. १. १. १२)

बाह्य आयतन अनात्म हैं

भिक्षुओ ! अतीत और अनागत रूप अनात्म है, वर्तमान का क्या कहना ! शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक अतीत रूप में भी अनपेक्ष होता है, अनागत रूप का अभिनन्दन नहीं करता, और वर्तमान रूपके निर्वेद, विराग और निरोध के लिये यत्नशील होता है।

शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

अनित्य वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

यमक वर्ग

§ १. सम्बोध सुत्त (३४. १. २. १)

यथार्थ ज्ञान के उपरान्त बुद्धत्व का दावा

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व लाभ करने के पूर्व ही मेरे बोधिसत्व रहते मन में यह बात आई, "चक्षु का आस्वाद क्या है, दोष क्या है, मोक्ष क्या है ? श्रोत्र का···मन का···?

भिक्षुओ ! तब, मुझे ऐसा मालूम हुआ, "चक्षु के प्रत्यय से जो सुख-सौमनस्य उत्पन्न होते हैं, वे चक्षु के आस्वाद हैं। जो चक्षु अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है, यह है चक्षु का दोष। जो चक्षु के प्रति छन्दराग का प्रहाण है वह है चक्षु का मोक्ष।

श्रोत्र के···। घ्राण के···। जिह्वा के···। काया के···। मन के···।

भिक्षुओ ! जब तक मैं इन छः आध्यात्मिक आयतनों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और मोक्ष को मोक्ष के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक मैंने इस सदेव, समार,···लोक में सम्यक् सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं किया।

भिक्षुओ ! क्योंकि मैंने इन छः आध्यात्मिक आयतनों के आस्वाद को···यथार्थतः जान लिया है, इसीलिये···दावा किया।

मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया। चित्त की विमुक्ति हो गई, यह अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ २. सम्बोध सुत्त (३४. १. २. २)

यथार्थ ज्ञान के उपरान्त बुद्धत्व का दावा

[ऊपर जैसा ही]

§ ३. अस्साद सुत्त (३४. १. २. ३)

आस्वाद की खोज

भिक्षुओ ! मैंने चक्षु के आस्वाद जानने की खोज की। चक्षु का जो आस्वाद है उसे जान लिया। चक्षु का जितना आस्वाद है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। भिक्षुओ ! मैंने चक्षु के दोष जानने की खोज की। चक्षु का जो दोष है उसे जान लिया। चक्षु का जितना दोष है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। भिक्षुओ ! मैंने चक्षु के मोक्ष जानने की खोज की। चक्षु का जो मोक्ष है उसे जान लिया। चक्षु का जितना मोक्ष है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! जब तक मैं इन छः आध्यात्मिक आयतनों के आस्वाद···दावा किया।

मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया···।

§ ४. अस्साद-सुत्त (३४. १. २. ४)

आस्वाद की खोज

भिक्षुओ ! मैंने रूप के आस्वाद जानने की खोज की। रूप का जो आस्वाद है उसे जान लिया। रूप का जितना आस्वाद है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। भिक्षुओ ! मैंने रूप के दोष जानने की खोज की। रूप का जो दोष है उसे जान लिया। रूप का जितना दोष है मैंने प्रज्ञा से देख लिया। भिक्षुओ ! मैंने रूप के मोक्ष जानने की खोज की। रूप का जो मोक्ष है उसे जान लिया। रूप का जितना मोक्ष है मैंने प्रज्ञा से देख लिया।

भिक्षुओ ! जब तक मैं इन छः बाह्य आयतनों के आस्वाद···दावा किया।

मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया···।

§ ५. नो चेतं सुत्त (३४. १. २. ५)

आस्वाद के ही कारण

भिक्षुओ ! यदि चक्षु में आस्वाद नहीं होता, तो प्राणी चक्षु में रक्त नहीं होते। क्योंकि चक्षु में आस्वाद है इसीलिये प्राणी चक्षु में रक्त होते हैं।

भिक्षुओ ! यदि चक्षु में दोष नहीं होता, तो प्राणी चक्षु से निर्वेद (= वैराग्य) नहीं करते। क्योंकि चक्षु में दोष है इसीलिये प्राणी चक्षु से निर्वेद करते हैं।

भिक्षुओ ! यदि चक्षु से मोक्ष नहीं होता, तो प्राणी चक्षु से मुक्त नहीं होते। क्योंकि चक्षु से मोक्ष होता है इसीलिये प्राणी चक्षु से मुक्त होते हैं।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! जब तक मैं इन छः आध्यात्मिक आयतनों के आस्वाद को···दावा किया।

§ ६. नो चेतं सुत्त (३४. १. २. ६)

आस्वाद के ही कारण

भिक्षुओ ! यदि रूप में आस्वाद नहीं होता, तो प्राणी रूप में रक्त नहीं होते क्योंकि रूप में आस्वाद है इसीलिये प्राणी रूप में रक्त होते हैं।

भिक्षुओ ! यदि रूप में दोष नहीं होता, तो प्राणी रूप से निर्वेद नहीं करते। क्योंकि रूप में दोष है, इसीलिये प्राणी रूप से निर्वेद करते हैं।

भिक्षुओ ! यदि रूप से मोक्ष नहीं होता तो प्राणी रूप से मुक्त नहीं होते। क्योंकि रूप से मोक्ष होता है इसीलिये प्राणी रूप से मुक्त होते हैं।

शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! जब तक मैं इन छः बाह्य आयतनों के आस्वाद को···दावा किया···।

§ ७. अभिनन्दन सुत्त (३४. १. २. ७)

अभिनन्दन से मुक्ति नहीं

भिक्षुओ ! जो चक्षु का अभिनन्दन करता है वह दुःख का अभिनन्दन करता है। जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ।

जो श्रोत्र का···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है। जो दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख से मुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ ८. अभिनन्दन सुत्त (३४. १. २. ८)

अभिनन्दन से मुक्ति नहीं

भिक्षुओ ! जो रूप का अभिनन्दन करता है वह दुःख का अभिनन्दन करता है। जो दुःख का अभिनन्दन करता है वह दुःख से मुक्त नहीं हुआ है—ऐसा मैं कहता हूँ।

शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! जो रूप का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख का अभिनन्दन नहीं करता है वह दुःख से मुक्त हो गया—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ९. उप्पाद सुत्त (३४. १. २. ९)

उत्पत्ति ही दुःख है

भिक्षुओ ! जो चक्षु की उत्पत्ति, स्थिति, जन्म लेना, प्रादुर्भाव है वह दुःख की उत्पत्ति···है।

श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! जो चक्षु का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है वह दुःख का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है।

श्रोत्र···मन···।

§ १०. उप्पाद सुत्त (३४. १. २. १०)

उत्पत्ति ही दुःख है

भिक्षुओ ! जो रूप की उत्पत्ति, स्थिति, जन्म लेना, प्रादुर्भाव है वह दुःख की उत्पत्ति···है।

श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! जो रूप का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है वह दुःख का निरोध=व्युपशम=अस्त हो जाना है।

श्रोत्र···मन···।

यमक वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

सर्व वर्ग

§ १. सब्ब सुत्त (३४ १. ३. १)

सब किसे कहते हैं ?

श्रावस्ती...।

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें सर्व का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···। भिक्षुओ ! सर्व क्या है ? चक्षु और रूप । श्रोत्र और शब्द । घ्राण और गन्ध । जिह्वा और रस । काया और स्पर्श ।···मन और धर्म । भिक्षुओ ! इसी को सर्व कहते हैं ।

भिक्षुओ ! यदि कोई ऐसा कहे—मैं इस सर्व को दूसरे सर्व का उपदेश करूँगा, तो यह ठीक नहीं । पूछे जाने पर नहीं बता सकेगा । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह बात अनहोनी है ।

§ २. पहाण सुत्त (३४. १. ३. २)

सर्व-त्याग के योग्य

भिक्षुओ ! मैं सर्व-प्रहाण का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···। भिक्षुओ ! सर्व-प्रहाण के योग्य कौन से धर्म हैं ?

भिक्षुओ ! चक्षु का सर्व-प्रहाण करना चाहिये । रूप का···। चक्षु विज्ञान का···। चक्षु संस्पर्श का···। जो चक्षु संस्पर्श के प्रत्यय से सुख, दुःख, या अदुख-सुख वेदना उत्पन्न होती है उसका भी सर्व-प्रहाण करना चाहिये । श्रोत्र, शब्द···। घ्राण, गन्ध···। जिह्वा, रस···। काया, स्पर्श···। मन, धर्म···।

भिक्षुओ ! यही सर्व-प्रहाण के योग्य धर्म हैं ।

§ ३. पहाण सुत्त (३४. १. ३. ३)

जान-बूझकर सर्व-त्याग के योग्य

भिक्षुओ ! सभी जान-बूझकर प्रहाण करने योग्य धर्मों का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···।

···भिक्षुओ ! जान-बूझकर चक्षु का प्रहाण कर देना चाहिये, रूप···। चक्षु विज्ञान···। चक्षु संस्पर्श···। जो चक्षु संस्पर्श के प्रत्यय से सुख, दुख या अदुख-सुख वेदना उत्पन्न होती है उसका भी···। श्रोत्र···। मन···।

भिक्षुओ ! यही जान-बूझकर प्रहाण करने योग्य धर्म हैं ।

§ ४. परिजानन सुत्त (३४. १. ३. ४)

बिना जाने बूझे दुःखों का क्षय नहीं

भिक्षुओ ! सबको बिना जाने बूझे, उससे विरक्त हुये और उसको छोड़े दुःखों का क्षय करना सम्भव नहीं ।

…भिक्षुओ ! चक्षु को बिना जाने बूझे…दुःखों का क्षय करना सम्भव नहीं। रूप को…।…जो चक्षुसंस्पर्श के प्रत्यय से सुख, दुःख, या अदुख-सुख वेदना उत्पन्न होती है उसको…। श्रोत्र…। मन…।

भिक्षुओ ! इन्हीं सबको बिना जाने बूझे, उससे विरक्त हुये, और उसको छोड़े दुःख का क्षय करना सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! सबको जान-बूझ, उससे विरक्त हो, और उसको छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है।

भिक्षुओ ! किन सबको जान-बूझ, उससे विरक्त हो और उसको छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है ?

भिक्षुओ ! चक्षु को जान-बूझ…दुःखों का क्षय करना सम्भव है। रूप को…।" जो चक्षु संस्पर्श के प्रत्यय से सुख, दुःख, या अदुख-सुख वेदना उत्पन्न होती है उसको…। श्रोत्र…मन…।

भिक्षुओ ! इन्हीं सब को जान-बूझ, उससे विरक्त हो, और उसको छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है।

§ ५. परिजानन सुत्त (३४. १. ३. ५)

बिना जाने बूझे दुःखों का क्षय नहीं

भिक्षुओ ! सब को बिना जाने बूझे, उससे विरक्त हुये, और उसको छोड़े दुःखों का क्षय करना सम्भव नहीं।

…जो चक्षु है, जो रूप है, जो चक्षु विज्ञान है, और जो चक्षुविज्ञान से जानने योग्य धर्म हैं…।

जो श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

भिक्षुओ ! इन्हीं सब को बिना जाने बूझे, उससे विरक्त हुये, और उसको छोड़े दुःख का क्षय करना सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! सब को जान-बूझ,उससे विरक्त हो, और उसको छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है।

भिक्षुओ ! किस सब को…?

…जो चक्षु है, जो रूप हैं, जो चक्षु विज्ञान है, और जो चक्षुविज्ञान से जानने योग्य धर्म हैं…।

जो श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा… । काया…।

जो मन है, जो धर्म हैं, जो मनोविज्ञान है, और जो मनोविज्ञान से जानने योग्य धर्म हैं।…

भिक्षुओ ! इन्हीं सब को जान-बूझ, उससे विरक्त हो, और उसको छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है।

§ ६. आदित्त सुत्त (३४. १. ३. ६.)

सब जल रहा है

एक समय भगवान् हजार भिक्षुओं के साथ गया में गयासीस पहाड़ पर विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, भिक्षुओ ! सब आदिप्त है। भिक्षुओ ! क्या सब आदिप्त है ?

भिक्षुओ ! चक्षु आदिप्त है। रूप आदिप्त हैं। चक्षुविज्ञान आदिप्त है। चक्षु-संस्पर्श आदिप्त है। जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से…उत्पन्न होनेवाली सुख, दुःख, या अदुःख-सुख वेदना है वह भी आदिप्त है।

किससे आदिप्त है ? रागाग्नि से, द्वेषाग्नि से, मोहाग्नि से आदिप्त है। जाति से, जरा से, मृत्यु से, शोक से, परिदेव से, दुःख से, दौर्मनस्य से, और उपायासों से (= परेशानी से) आदिप्त है—ऐसा मैं कहता हूँ।

श्रोत्र आदिप्त है…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…।

मन आदिप्त है। धर्म आदिप्त हैं। मनोविज्ञान आदिप्त हैं। मनः संस्पर्श आदिप्त है। जो यह मनः संस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाली सुख, दुःख, और अदुख-सुख वेदना है वह भी आदिप्त है।

किससे आदिप्त है? रागाग्नि से, द्वेषाग्नि से, मोहाग्नि से आदिप्त है। जाति, जरा, मृत्यु…उपायासों से आदिप्त है—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षुओ! यह जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में भी निर्वेद करता है। रूपों में भी निर्वेद करता है। चक्षुविज्ञान में भी निर्वेद करता है। चक्षु संस्पर्श में भी…जो चक्षु संस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाली…वेदना है उसमें भी निर्वेद करता है।

श्रोत्र में भी निर्वेद करता है…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…; जो मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाली…वेदना है उसमें भी निर्वेद करता है।

निर्वेद करने से रागरहित हो जाता है। रागरहित होने से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान होता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया…जान लेता है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट हो कर भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

भगवान् के इस धर्मोपदेश करने पर उन हजार भिक्षुओं के चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गये।

§ ७. अन्धभूत सुत्त (३४. १. ३. ७)

सब कुछ अन्धा है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ! सब कुछ अन्धा बना हुआ है। भिक्षुओ! क्या अन्धा बना हुआ है।

भिक्षुओ! चक्षु अन्धा बना हुआ है। रूप अन्धे बने हैं। चक्षु-विज्ञान अन्धा बना है। चक्षु-संस्पर्श अन्धा बना है। यह जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होनेवाली…वेदना है वह भी अन्धी बनी है।

किससे अन्धा बना हुआ है? जाति, जरा…उपायास से अन्धा बना है—ऐसा मैं कहता हूँ।

श्रोत्र अन्धा…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…।

मन अन्धा बना है। धर्म अन्धे बने हैं। मनोविज्ञान अन्धा बना है। मनःसंस्पर्श अन्धा बना है। जो मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होनेवाली…वेदना है वह भी अन्धी बनी है।…

भिक्षुओ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ८. सारुप्प सुत्त (३४. १. ३. ८)

सभी मान्यताओं का नाश-मार्ग

भिक्षुओ! सभी मानने के नाश करनेवाले सारूप्य मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ! सभी मानने का नाश करनेवाला मार्ग क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु को नहीं मानता है; चक्षु में नहीं मानता है; चक्षु करके नहीं मानता है; चक्षु मेरा है ऐसा नहीं मानता है। रूप को नहीं मानता है; रूपों में नहीं मानता है; रूप करके नहीं मानता है। चक्षु-विज्ञान…। चक्षु-संस्पर्श…।

जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से···वेदना उत्पन्न होती है उसे नहीं मानता है, उसमें नहीं मानता है, वैसा करके नहीं मानता है, वह मेरा है यह भी नहीं मानता है।

श्रोत्र को नहीं मानता है···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन को नहीं मानता है; मनमें नहीं मानता है; मन करके नहीं मानता है; मन मेरा है ऐसा नहीं मानता है। धर्मों को नहीं मानता है···। मनोविज्ञान···। मनःसंस्पर्श···। जो मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से···वेदना उत्पन्न होती है उसे नहीं मानता है, उसमें नहीं मानता है, वैसा करके नहीं मानता है, वह मेरा है यह भी नहीं मानता है।

सब नहीं मानता है; सब में नहीं मानता है; सब करके नहीं मानता है; सब मेरा है यह नहीं मानता है।

वह इस प्रकार नहीं मानते हुये संसार में कहीं उपादान नहीं करता। कहीं उपादान नहीं करने से परित्रास नहीं करता। परित्रास नहीं करने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई···ऐसा जाना जाता है।

भिक्षुओ! यही सब मानने का नाश करनेवाला मार्ग है।

§ ९. सप्पाय सुत्त (३४. १. ३. ९)

सभी मान्यताओं का नाश-मार्ग

भिक्षुओ! सभी मानने के नाश करनेवाले सप्राय मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ! सभी मानने का नाश करनेवाला सप्राय मार्ग क्या है? भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु को नहीं मानता है...। रूपोंको...। चक्षु विज्ञान को...। चक्षु-संस्पर्श को...। जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होनेवाली...वेदना है उसको नहीं मानता है...।

भिक्षुओ! जिसको मानता है, जिसमें मानता है, जो करके मानता है, जिसे "मेरा है" ऐसा मानता है, वह उसका अन्यथा हो जाता है (= बदल जाता है)। अन्यथा हो जानेवाले संसार के जीव संसार ही का अभिनन्दन करते हैं।

श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ! जो स्कन्धधातु आयतन है उसे भी नहीं मानता है, उसमें भी नहीं मानता है, वैसा करके भी नहीं मानता है, वह मेरा है यह भी नहीं मानता है। इस प्रकार, नहीं मानते हुये संसार में वह कहीं उपादान नहीं करता। उपादान नहीं करने से वह कोई त्रास नहीं करता। परित्रास नहीं करने से वह अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई···

भिक्षुओ! यही सभी मानने का नाश करनेवाला सप्राय मार्ग है।

§ १०. सप्पाय सुत्त (३४. १. ३. १०)

सभी मान्यताओं का नाश-मार्ग

भिक्षुओ! सभी मानने के नाश करनेवाले सप्राय मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ! सभी मानने का नाश करनेवाला सप्राय मार्ग क्या है?

भिक्षुओ! तो तुम क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य?

अनित्य, भन्ते!

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख?

दुःख, भन्ते!

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

रूप···; चक्षु-विज्ञान···; चक्षु-संस्पर्श···; चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होनेवाली···वेदना नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !···

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में भी निर्वेद करता है। रूप में···। चक्षु विज्ञान में भी···। चक्षु संस्पर्श में भी···। चक्षु संस्पर्श के प्रत्यय से जो···वेदना उत्पन्न होती है उसमें भी निर्वेद करता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन में भी निर्वेद करता है, धर्मों में भी···, मनो-विज्ञान में भी···, मनःसंस्पर्श में भी···, मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से जो···वेदना उत्पन्न होती है उसमें भी निर्वेद करता है।

निर्वेद करने से रागरहित होता है। रागरहित होने से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने से 'विमुक्त हो गया' ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। जाति क्षीण हुई···।

भिक्षुओ ! यही सभी मानने का नाश करनेवाला सप्राय मार्ग है।

सर्व वर्ग समाप्त

चौथा भाग

जातिधर्म वर्ग

§ १. जाति सुत्त (३४. १. ४. १)

सभी जातिधर्मा हैं

श्रावस्ती…।

भिक्षुओ ! सब जातिधर्मा (=उत्पन्न होने के स्वभाववाला) है। भिक्षुओ ! जातिधर्मा क्या सब है?

भिक्षुओ ! चक्षु जातिधर्मा है। रूप जातिधर्मा हैं। चक्षु-विज्ञान जातिधर्मा है।… चक्षु-संस्पर्श…। जो चक्षुसंस्पर्श के प्रत्यय से…वेदना उत्पन्न होती है वह भी जातिधर्मा है।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन जातिधर्मा है। धर्म जातिधर्मा हैं। मनोविज्ञान…। मनःसंस्पर्श…। जो मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से…वेदना उत्पन्न होती है वह भी जातिधर्मा है।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हो गई…जान लेता है।

§ २–१०. जरा-व्याधि-मरणादयो सुत्तन्ता (३४. १. ४. २–१०)

सभी जराधर्मा हैं

भिक्षुओ ! सब जराधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब व्याधिधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब मरणधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब शोकधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब संक्लेशधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब क्षय-धर्मा है…।

भिक्षुओ ! सब व्ययधर्मा है…। भिक्षुओ ! सब समुदयधर्मा है…॥ भिक्षुओ ! सब निरोध-धर्मा है…॥

जातिधर्म वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

अनित्य वर्ग

§ १–१०. अनिच्च सुत्त (३४. १. ५. १–१०)

सभी अनित्य है

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! सभी अनित्य है···॥

भिक्षुओ ! सभी दुःख है···॥

भिक्षुओ ! सभी अनात्म है···॥

भिक्षुओ ! सभी अभिज्ञेय है···॥

भिक्षुओ ! सभी परिज्ञेय है···॥

भिक्षुओ ! सभी प्रहातव्य है···॥

भिक्षुओ ! सभी साक्षात् करने योग्य है···॥

भिक्षुओ ! सभी जानने बूझने के योग्य है···॥

भिक्षुओ ! सभी उपद्रव-पूर्ण है···॥

भिक्षुओ ! सभी उपसृष्ट (=परेशान) है···॥

अनित्य वर्ग समाप्त

प्रथम पण्णासक समाप्त

द्वितीय पण्णासक

पहला भाग

अविद्या वर्ग

§ १. अविज्ञा सुत्त (३४. २. १. १)

किसके ज्ञान से विद्या की उत्पत्ति ?

श्रावस्ती…।

तब, कोई भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है ?

भिक्षु ! चक्षु को अनित्य जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है। रूपों को अनित्य जान और देख लेने से…। चक्षु विज्ञान को…। चक्षुसंस्पर्श को…। जो चक्षुसंस्पर्श के प्रत्यय से… वेदना उत्पन्न होती है उसको अनित्य जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन को अनित्य जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है। धर्मों को अनित्य जान और देख लेने से…। मनोविज्ञान को…। मनःसंस्पर्श को…। जो मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से…वेदना उत्पन्न होती है उसको अनित्य जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है।

भिक्षु ! इसी को जान और देख लेने से अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है।

§ २. सञ्ञोजन सुत्त (३४. २. १. २)

संयोजनों का प्रहाण

भन्ते ! क्या जान और देख लेने से सभी संयोजन (= बन्धन) प्रहीण होते हैं ?

भिक्षु ! चक्षु को अनित्य जान और देख लेने से सभी संयोजन प्रहीण होते हैं। रूप को…। चक्षुविज्ञान को…। चक्षु-संस्पर्श को…।…वेदना उत्पन्न होती है उसको…। श्रोत्र…मन…।

भिक्षु ! इसी को जान और देख लेने से सभी संयोजन प्रहीण होते हैं।

§ ३. सञ्ञोजन सुत्त (३४. २. १. ३)

संयोजनों का प्रहाण

भन्ते ! क्या जान और देख लेने से सभी संयोजन विनाश को प्राप्त होते हैं ?

भिक्षु ! चक्षु को अनात्म जान और देख लेने से सभी संयोजन विनाश को प्राप्त होते हैं। रूप को…। चक्षु-विज्ञान को…। चक्षु-संस्पर्श को…। जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से…। वेदना उत्पन्न होती है उसको अनात्म जान और देख लेने से सभी संयोजन विनाश को प्राप्त होते हैं। श्रोत्र…मन…।

भिक्षु ! इसे जान और देख लेने से सभी संयोजन विनाश को प्राप्त होते हैं।

§ ४–५. आसव सुत्त (३४. २. १. ४–५)

आश्रवों का प्रहाण

भन्ते ! क्या जान और देख लेने से आश्रव प्रहीण होते हैं ?…

भन्ते ! क्या जान और देख लेने से आश्रव विनाश को प्राप्त होते हैं ?…

§ ६-७. अनुसय सुत्त (३४. २. १. ६–७)

अनुशय का प्रहाण

भन्ते ! क्या देख और जान लेने से अनुशय प्रहीण होते हैं ?…

भन्ते ! क्या देख और जान लेने से अनुशय विनाश को प्राप्त होते हैं ?…

§ ८. परिञ्ञा सुत्त (३४. २. १. ८)

उपादान परिज्ञा

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें सभी उपादान की परिज्ञा के योग्य धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! सभी उपादान की परिज्ञा के धर्म कौन से हैं ? चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में भी निर्वेद करता है। रूपों में भी…। चक्षु-संस्पर्श में भी…। वेदना में भी निर्वेद करता है। निर्वेद करने से राग-रहित होता है। राग-रहित होने से विमुक्त होता है। विमुक्त होने से 'उपादान मुझे परिज्ञात हो गया' ऐसा जान लेता है।

श्रोत्र और शब्दों के प्रत्यय से…। घ्राण और गन्धों के प्रत्यय से…। जिह्वा और रसों के प्रत्यय से…। काया और स्पर्श के प्रत्यय से…। मन और धर्मों के प्रत्यय से मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक मन में भी निर्वेद करता है। धर्मों में भी…। मनो-विज्ञान में भी…। मनःसंस्पर्श में भी…। वेदना में भी निर्वेद करता है। निर्वेद करने से रागरहित होता है। रागरहित होने से विमुक्त होता है। विमुक्त होने से 'उपादान मुझे परिज्ञात हो गया' ऐसा जान लेता है।

भिक्षुओ ! यही सभी उपादान की परिज्ञा के योग्य धर्म हैं।

§ ९. परियादिन्न सुत्त (३४. २. १. ९)

सभी उपादानों का पर्यादान

भिक्षुओ ! सभी उपादानों के पर्यादान (= नाश) के धर्म का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

…भिक्षुओ ! चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में निर्वेद करता है।… वेदना में भी निर्वेद करता है। निर्वेद करने से रागरहित हो जाता है। रागरहित होने से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने से 'उपादान पर्यादत्त (= नष्ट) हो गये' ऐसा जान लेता है।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

भिक्षुओ ! यही सभी उपादानों के पर्यादान के धर्म हैं।

§ १०. परियादिन्न सुत्त (३४. २. १. १०)

सभी उपादानों का पर्यादान

भिक्षुओ ! सभी उपादानों के पर्यादान के धर्म का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! सभी उपादानों के पर्यादान का धर्म क्या है ?

भिक्षुओ ! तो तुम क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है, क्या उसे ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

रूप…; चक्षुविज्ञान…; चक्षुसंस्पर्श…; …उत्पन्न होनेवाली वेदना है वह नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते।…

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है, क्या उसे ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक… जाति क्षीण हुई… जान लेता है।

भिक्षुओ ! यही सभी उपादान के पर्यादान का धर्म है।

अविद्या वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

मृगजाल वर्ग

§ १. मिगजाल सुत्त (३४. २. २. १)

एक विहारी

श्रावस्ती···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् मृगजाल भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग एक-विहारी, एक-विहारी" कहा करते हैं। भन्ते ! कोई कैसे एकविहारी होता है, और कोई कैसे सद्वितीय विहारी होता है ?"

मृगजाल ! ऐसे चक्षुविज्ञेय रूप हैं, जो अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने, प्यारे, इच्छा पैदा कर देने वाले, और राग बढ़ानेवाले हैं। कोई उसका अभिनन्दन करे, उसकी बड़ाई करे, और उसमें लग्न होकर रहे। इस तरह, उसको तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा के होने से सराग होता है। सराग होने से संयोग होता है। मृगजाल ! तृष्णा के जाल में फँसा हुआ भिक्षु सद्वितीय विहार करता है।

ऐसे श्रोत्रविज्ञेय शब्द हैं···।···ऐसे मनोविज्ञेय धर्म हैं···।

मृगजाल ! इस प्रकार विहार करनेवाला भिक्षु भले ही नगर से दूर किसी शान्त, विवेक और ध्यानाभ्यास के योग्य आरण्य में रहे, किन्तु वह सद्वितीयविहारी ही कहा जायगा।

सो क्यों ? तृष्णा जो उसके साथ द्वितीय होकर रहती है वह प्रहीण नहीं हुई है, इसलिये वह सद्वितीयविहारी ही कहा जायगा।

मृगजाल ! ऐसे चक्षुविज्ञेय रूप हैं···। भिक्षु उसका अभिनन्दन नहीं करे, उसकी बड़ाई नहीं करे, और उसमें लग्न होकर नहीं रहे। इस तरह, उसकी तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के नहीं रहने से सराग नहीं होता है। सराग नहीं होने से संयोग नहीं होता है। मृगजाल ! तृष्णा और संयोजन से छूट वह भिक्षु एकविहारी कहा जाता है।

ऐसे श्रोत्रविज्ञेय शब्द हैं···।···ऐसे मनोविज्ञेय धर्म हैं···। मृगजाल ! तृष्णा और संयोजन से छूट वह भिक्षु एकविहारी कहा जाता है।

मृगजाल ! यदि वह भिक्षु भले ही भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, राजा, राजमन्त्री, तैर्थिक तथा तैर्थिक-श्रावकों से आकीर्ण किसी गाँव के मध्य में रहे, वह एकविहारी ही कहा जायगा।

सो क्यों ?

तृष्णा जो उसके साथ द्वितीय होकर थी वह प्रहीण हो गई, इसलिये वह एकविहारी ही कहा जाता है।

§ २. मिगजाल सुत्त (३४. २. २. २)

तृष्णा-निरोध से दुःख का अन्त

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् मृगजाल भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्मोपदेश करें, जिसे सुन मैं अकेला, अलग, अप्रमत्त, संयमशील, और प्रहितात्म होकर विहार करूँ।

मृगजाल ! चक्षुविज्ञेय रूप है···। भिक्षु उसका अभिनन्दन करता है···। इस तरह, उसे तृष्णा उत्पन्न होती है। मृगजाल ! तृष्णा के समुदय से दुःख का समुदय होता है—ऐसा मैं कहता हूँ ···।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द हैं···। ···मनोविज्ञेय धर्म हैं···। मृगजाल ! तृष्णा के समुदय से दुःख का समुदय होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।···

मृगजाल ! चक्षुविज्ञेय रूप है···। भिक्षु उसका अभिनन्दन नहीं करता है···। इस तरह, उसकी तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। मृगजाल ! तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध होता है—ऐसा मैं कहता हूँ

श्रोत्रविज्ञेय शब्द है···।···मनोविज्ञेय धर्म है···। मृगजाल ! तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

तब, आयुष्मान् मृगजाल भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब, आयुष्मान् मृगजाल ने अकेला, अलग, अप्रमत्त, संयमशील, और प्रहितात्म हो विहार करते हुये शीघ्र ही उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य की सिद्धि को देखते देखते स्वयं जान और साक्षात् कर प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कुलपुत्र घर से बे-घर हो अच्छी तरह प्रव्रजित होते हैं। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, पुनः जन्म होने का नहीं—जान लिया।

आयुष्मान् मृगजाल अर्हतों में एक हुये।

§ ३. समिद्धि सुत्त (३४. २. २. ३)

मार कैसा होता है ?

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् समिद्धि भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग "मार, मार" कहा करते हैं। भन्ते ! मार कैसा होता है, या मार कैसे जाना जाता है ?

समिद्धि ! जहाँ चक्षु है, रूप हैं, चक्षुविज्ञान है, चक्षुविज्ञान से जानने योग्य धर्म हैं, वहीं मार है, या मार जाना जाता है।

समिद्धि ! जहाँ श्रोत्र है, शब्द हैं···।···जहाँ मन है, धर्म हैं···।

समिद्धि ! जहाँ चक्षु नहीं है···वहाँ मार भी नहीं है, या मार जाना भी नहीं जाता है।···

समिद्धि ! जहाँ श्रोत्र नहीं है···, जहाँ मन नहीं है···वहाँ मार भी नहीं है, या मार जाना भी नहीं जाता है।···

§ ४–६. समिद्धि सुत्त (३४. २. २. ४–६)

सत्व, दुःख, लोक

भन्ते ! लोग "सत्व, सत्व" कहा करते हैं···[मार के समान ही]।

भन्ते ! लोग "दुःख, दुःख" कहा करते हैं··· " ।

भन्ते ! लोग "लोक, लोक" कहा करते हैं··· " ।

§ ७. उपसेन सुत्त (३४. २. २. ७)

आयुष्मान् उपसेन का नाग द्वारा डँसा जाना

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् उपसेन राजगृह के सप्पसोण्डिक-प्राग्भार में शीतवन में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् उपसेन के शरीर में साँप काट खाया था।

तब, आयुष्मान् उपसेन ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! सुनें, इस शरीर को खाट पर लिटा बाहर ले चलें। यह शरीर एक मुट्ठी भुस्से की तरह बिखर जायगा।

यह कहने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् उपसेन से बोले, "हम लोग आयुष्मान् उपसेन के शरीर को विकल, या इन्द्रियों को विपरिणत नहीं देखते हैं।

तब, आयुष्मान् उपसेन बोले—भिक्षुओ ! सुनें, इस शरीर को खाट पर लिटा बाहर ले चलें। यह शरीर एक मुट्ठी भुस्से की तरह बिखर जायगा।

आवुस सारिपुत्र ! जिसे ऐसा होता हो—मैं चक्षु हूँ, या मेरा चक्षु है…मैं मन हूँ, या मेरा मन है—उसी का शरीर विकल होता है, या इन्द्रियाँ विपरिणत होती हैं।

आवुस सारिपुत्र ! मुझे ऐसा नहीं होता है, तो मेरा शरीर कैसे विकल होगा, इन्द्रियाँ कैसे विपरिणत होंगी !!

आयुष्मान् उपसेन के अहंकार, ममंकार, मानानुशय दीर्घकाल से इतने नष्ट कर दिये गये थे कि उन्हें ऐसा नहीं होता था कि—मैं चक्षु हूँ, या मेरा चक्षु है…मैं मन हूँ, या मेरा मन है।

तब, भिक्षु लोग आयुष्मान् उपसेन के शरीर को खाट पर लिटा बाहर ले आये। आयुष्मान् उपसेन का शरीर वहीं मुट्ठी भर भुस्से की तरह बिखर गया।

§ ८. उपवान सुत्त (३४. २. २. ८)

सांदृष्टिक-धर्म

…एक ओर बैठ, आयुष्मान् उपवान भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग "सांदृष्टिक धर्म, सांदृष्टिक धर्म "कहा करते हैं। भन्ते ! सांदृष्टिक धर्म कैसे होता है ?—अकालिक=(बिना देरी के प्राप्त होनेवाला), एहिपस्सिक (=जो लोगों को पुकार पुकार कर दिखाने के योग्य है, कि—आओ देखो !) औपनायिक (=निर्वाण की ओर ले जानेवाला), और विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर अनुमान किया जानेवाला ?

उपवान ! चक्षु से रूप को देख, भिक्षु को रूप का और रूपराग का अनुभव होता है। यदि अपने भीतर रूपों में राग है तो वह जानता है कि मुझे अपने भीतर रूपों में राग है। उपवान ! इसी लिये धर्म सांदृष्टिक, अकालिक…है।

श्रोत्र से शब्दों को सुन…।…मन से धर्मों को जान, भिक्षु को धर्म का और धर्मराग का अनुभव होता है। यदि अपने भीतर धर्मों में राग है तो वह जानता है कि मुझे अपने भीतर धर्मों में राग है। उपवान ! इसीलिये, धर्म सांदृष्टिक, अकालिक…है।

उपवान ! चक्षु से रूप को देख, किसी भिक्षु को रूप का अनुभव होता है, किन्तु रूपराग का नहीं। यदि अपने भीतर रूपों में राग नहीं है तो यह जानता है कि मुझे अपने भीतर रूपों में राग नहीं है। उपवान ! इसलिये भी, धर्म सांदृष्टिक, अकालिक…है।

श्रोत्र…।…मनसे…। यदि अपने भीतर धर्मों में राग नहीं है तो यह जानता है कि मुझे अपने भीतर धर्मों में राग नहीं है। उपवान ! इसीलिये भी, धर्म सांदृष्टिक, अकालिक…।

§ ९. छफस्सायतनिक सुत्त (३४. २. २. ९)

उसका ब्रह्मचर्य बेकार है

भिक्षुओ ! जो भिक्षु छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है उसका ब्रह्मचर्य बेकार है, वह इस धर्मविनय से बहुत दूर है।

यह कहने पर, कोई भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! मैंने यह नहीं समझा। भन्ते ! मैं छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता हूँ।"

भिक्षु ! क्या तुम ऐसा समझते हो कि चक्षु मेरा है, मैं हूँ, या मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षु ! ठीक है, इसी को यथार्थतः जान सुदृष्ट होगा। यही दुःख का अन्त है।...

श्रोत्र...। घ्राण...। जिह्वा...। काया...। मन...।

§ १०. छफस्सायतनिक सुत्त (३४. २. २. १०)

उसका ब्रह्मचर्य बेकार है

...वह इस धर्मविनय से बहुत दूर है।

यह कहने पर, कोई भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! ...नहीं जानता हूँ ?

भिक्षु ! तुम जानते हो न कि चक्षु मेरा नहीं है, मैं नहीं है, मेरा आत्मा नहीं है ?

हाँ भन्ते !

भिक्षु ! ठीक है। तुम इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लो। इस तरह, तुम्हारा प्रथम स्पर्शायतन प्रहीण हो जायगा, भविष्य में कभी उत्पन्न नहीं होगा।

श्रोत्र...। घ्राण...। जिह्वा...। काया...। मन...इस तरह, तुम्हारा छठाँ स्पर्शायतन प्रहीण हो जायगा, भविष्यमें कभी उत्पन्न नहीं होगा।

§ ११. छफस्सायतनिक सुत्त (३४. २. २. ११)

उसका ब्रह्मचर्य बेकार है

...वह इस धर्मविनय से बहुत दूर है।

...भन्ते !...नहीं जानता हूँ।

भिक्षु ! तो तुम क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है...?

नहीं भन्ते !

श्रोत्र...। घ्राण...। जिह्वा...। काया...। मन...।

भिक्षु ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में भी निर्वेद करता है...मन में भी निर्वेद करता है,...जाति क्षीण हुई...जान लेता है।

मृगजाल वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

ग्लान वर्ग

§ १. गिलान सुत्त (३४. २. ३. १)

बुद्धधर्म राग से मुक्ति के लिए

श्रावस्ती…।

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! अमुक विहार में एक नया साधारण भिक्षु दुःखी बीमार पड़ा है। यदि भगवान् वहाँ चलते जहाँ वह भिक्षु है तो बड़ी कृपा होती।

तब, भगवान् नये, साधारण और बीमार की बात सुन जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये।

उस भिक्षु ने भगवान् को दूर ही से आते देखा। देखकर, खाट बिछाने लगा।

तब, भगवान् उस भिक्षु से बोले, "भिक्षु! रहने दो, खाट मत बिछाओ। यहाँ आसन लगे हैं, मैं उन पर बैठ जाऊँगा। भगवान् बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठ कर, भगवान् उस भिक्षु से बोले, "भिक्षु ! कहो, तुम्हारी तबियत अच्छी तो है न ? तुम्हारा दुःख घट तो रहा है न ?

नहीं भन्ते मेरी तबियत अच्छी नहीं है। मेरा दुःख बढ़ ही रहा है, घटता नहीं है।

भिक्षु ! तुम्हारे मन में कुछ पछतावा या मलाल तो नहीं न है ?

भन्ते ! मेरे मन में बहुत पछतावा और मलाल है।

तुम्हें कहीं शील न पालन करने का आत्मपश्चात्ताप तो नहीं हो रहा है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षु ! तब, तुम्हारे मन में कैसा पछतावा या मलाल है ?

भन्ते ! मैं भगवान् के उपदिष्ट धर्म को शीलविशुद्धि के लिये नहीं समझता हूँ।

भिक्षु ! यदि मेरे उपदिष्ट धर्म को तुम शीलविशुद्धि के लिए नहीं समझते हो, तो किस अर्थ के लिये समझते हो ?

भन्ते ! भगवान् के उपदिष्ट धर्म को मैं राग से छूटने के लिये समझता हूँ।

ठीक है भिक्षु ! तुमने ठीक ही समझा है। राग से छूटने ही के लिये मैंने धर्म का उपदेश किया है।

भिक्षु ! तुम क्या समझते हो चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

श्रोत्र…; घ्राण…; जिह्वा…; काया…; मन…?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना चाहिये, "यह मेरा है…" ?

नहीं भन्ते !

भिक्षु ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

भगवान् यह बोले । संतुष्ट हो भिक्षु ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया । इस धर्मोपदेश को सुन उस भिक्षु को रागरहित, निर्मल, धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया—जो कुछ समुदयधर्मा है, सभी निरोधधर्मा है ।

§ २. गिलान सुत्त (३४. २. ३. २)

बुद्धधर्म निर्वाण के लिए

[ठीक ऊपर जैसा]

भिक्षु ! यदि मेरे उपदिष्ट धर्म को तुम शीलविशुद्धि के लिये नहीं समझते हो, तो किस अर्थ के लिये समझते हो ?

भन्ते ! भगवान् के उपदिष्ट धर्म को मैं उपादानरहित निर्वाण के लिये समझता हूँ ।

ठीक है.भिक्षु ! तुमने ठीक ही समझा है । उपादानरहित निर्वाण ही के लिये मैंने धर्म का उपदेश किया है ।

[ऊपर जैसा]

भगवान् यह बोले । संतुष्ट हो भिक्षु ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया । इस धर्मोपदेश को सुन उस भिक्षु का चित्त उपादानरहित हो आश्रवों से विमुक्त हो गया ।

§ ३. राध सुत्त (३४. २. ३. ३)

अनित्य से इच्छा को हटाना

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् राध भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्मोपदेश करें, जिसे सुन मैं अकेला अलग···विहार करूँ ।"

राध ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी लगी इच्छा को हटाओ । राध ! क्या अनित्य है ? राध ! चक्षु अनित्य है, उसके प्रति अपनी लगी इच्छा को हटाओ । रूप अनित्य है···। चक्षु-विज्ञान···। चक्षु-संस्पर्श···।···वेदना । श्रोत्र···मन···।

राध ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी लगी इच्छा को हटाओ !

§ ४. राध सुत्त (३४. २. ३. ४)

दुःख से इच्छा को हटाना

राध ! जो दुःख है, उसके प्रति अपनी लगी इच्छा को हटाओ ।···

§ ५. राध सुत्त (३४. २. ३. ५)

अनात्म से इच्छा को हटाना

राध ! जो अनात्म है, उसके प्रति अपनी लगी इच्छा को हटाओ ।···

§ ६. अविज्जा सुत्त (३४. २. ३. ६)

अविद्या का प्रहाण

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, भन्ते ! क्या कोई ऐसा एक धर्म है जिसके प्रहाण से भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है ?"

हाँ भिक्षु ! ऐसा एक धर्म है जिसके प्रहाण से भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है ।

भन्ते ! वह एक धर्म क्या है ?

भिक्षु ! वह एक धर्म अविद्या है जिसके प्रहाण से···।

भन्ते ! क्या जान और देख लेने से भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है ?

भिक्षु ! चक्षु को अनित्य जान और देख लेने से भिक्षु की अविद्या प्रहीण हो जाती है और विद्या उत्पन्न होती है।

रूप···। चक्षु विज्ञान···। चक्षु संस्पर्श···। वेदना···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षु ! इसे जान और देख भिक्षु की अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है।

§ ७. अविज्जा सुत्त (३४. २. ३. ७)

अविद्या का प्रहाण

[ऊपर जैसा]

भिक्षुओ ! भिक्षु ऐसा सुनता है—धर्म अभिनिवेश के योग्य नहीं हैं, सभी धर्म अभिनिवेश के योग्य नहीं हैं। वह सब धर्म को जानता है। वह सब धर्म को जान अच्छी तरह बूझता है। सब धर्मको बूझ सभी निमित्तों को ज्ञानपूर्वक देख लेता है। चक्षु को ज्ञानपूर्वक देख लेता है। रूपों को···। चक्षुविज्ञान को···। चक्षुसंस्पर्श को···। ···वेदना को···।

भिक्षु ! इसे जान और देख, भिक्षु की अविद्या प्रहीण होती है और विद्या उत्पन्न होती है।

§ ८. भिक्खु सुत्त (३४. २. ३. ८)

दुःख को समझने के लिए ब्रह्मचर्य-पालन

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! दूसरे मतवाले साधु हम से पूछते हैं—आवुस ! श्रमण गौतम के शासन में आप लोग ब्रह्मचर्य-पालन क्यों करते हैं ?

भन्ते ! इस पर हम लोगों ने उन्हें उत्तर दिया, "आवुस ! दुःख को ठीक-ठीक समझ लेने के लिये हम लोग भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

भन्ते ! इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देकर हम लोगों ने भगवान् के सिद्धान्त का ठीक-ठीक तो प्रतिपादन किया न ?······

भिक्षुओ ! इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देकर तुम लोगों ने मेरे सिद्धान्त के अनुकूल ही कहा है।··· दुःख को ठीक-ठीक समझ लेने के लिये ही मेरे शासन में ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है।

भिक्षुओ ! यदि दूसरे मतवाले साधु तुमसे पूछें—आवुस ! वह दुःख क्या है जिसे ठीक-ठीक समझने के लिये श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है ?—तो तुम उन्हें ऐसा उत्तर देनाः—

आवुस ! चक्षु दुःख है, उसे ठीक-ठीक समझने के लिये श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है। रूप दुःख···वेदना···। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

आवुस ! यही दुःख है, जिसे ठीक-ठीक समझने के लिये श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है।

§ ९. लोक सुत्त (३४. २. ३. ९)

लोक क्या है ?

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, 'भन्ते ! लोग 'लोक, लोक' कहा करते हैं। भन्ते ! क्या होने से 'लोक' कहा जाता है ?

भिक्षु ! लुजित होता है (=उखड़ता पखड़ता है), इसलिये "लोक" कहा जाता है। क्या लुजित होता है ?

भिक्षु ! चक्षु लुजित होता है। रूप…। चक्षुविज्ञान…। चक्षुसंस्पर्श…।…वेदना…।

भिक्षु ! लुजित होता है, इसलिये "लोक" कहा जाता है।

§ १०. फग्गुन सुत्त (३४. २. ३. १०)

परिनिर्वाण-प्राप्त बुद्ध देखे नहीं जा सकते

…एक ओर बैठ, आयुष्मान् फग्गुन भगवान् से बोले, "भन्ते ! क्या ऐसा भी चक्षु है, जिससे अतीत=परिनिर्वाण पाये=छिन्न प्रपञ्च…बुद्ध भी जाने जा सकें ?

श्रोत्र…। घ्राण …। जिह्वा…। काया…। क्या ऐसा मन है जिससे अतीत=परिनिर्वाण पाये=छिन्नप्रपञ्च…बुद्ध भी जाने जा सकें ?

नहीं फग्गुन ! ऐसा चक्षु नहीं है, जिससे अतीत=परिनिर्वाण पाये, छिन्नप्रपंच…बुद्ध भी जाने जा सकें।

श्रोत्र…मन…।

ग्लान वर्ग समाप्त

चौथा भाग

छन्न वर्ग

§ १. पलोक सुत्त (३४. २. ४. १)

लोक क्यों कहा जाता है ?

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग "लोक, लोक" कहा करते हैं। भन्ते ! क्या होने से 'लोक' कहा जाता है ?"

आनन्द ! जो प्रलोकधर्मा (=नाशवान्) है वह आर्यविनय में लोक कहा जाता है। आनन्द ! प्रलोकधर्मा क्या है ?

आनन्द ! चक्षु प्रलोकधर्मा है । रूप प्रलोकधर्मा हैं । चक्षु-विज्ञान···। चक्षु-संस्पर्श···। ···वेदना···।

श्रोत्र···मन···।

आनन्द ! जो प्रलोकधर्मा है वह आर्यविनय में लोक कहा जाता है।

§ २. सुञ्ञ सुत्त (३४. २.४.२)

लोक शून्य है

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग कहा करते हैं कि "लोक शून्य है"। भन्ते ! क्या होने से लोक शून्य कहा जाता है ?"

आनन्द ! क्योंकि आत्मा या आत्मीय से शून्य है इसलिए लोक शून्य कहा जाता है। आनन्द ! आत्मा या आत्मीय से शून्य क्या है ?

आनन्द ! चक्षु आत्मा या आत्मीय से शून्य है। रूप···। चक्षु-विज्ञान···। चक्षु-संस्पर्श···। ···वेदना···।

आनन्द ! क्योंकि आत्मा या आत्मीय से शून्य है इसलिये लोक शून्य कहा जाता है।

§ ३. संक्खित्त सुत्त (३४. २. ४. ३)

अनित्य, दुःख

···भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें, जिसे सुन मैं अकेला, अलग···विहार करूँ।

आनन्द ! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है···?

नहीं भन्ते !

रूप···; चक्षु-विज्ञान···; चक्षु-संस्पर्श···;···वेदना···?

अनित्य भन्ते !···

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसे ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है···?

नहीं भन्ते !

आनन्द ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ४. छन्न सुत्त (३४. २. ४. ४)

अनात्मवाद, छन्न द्वारा आत्म-हत्या

एक समय, भगवान् राजगृहमें वेलुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महाचुन्द और आयुष्मान् छन्न गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् छन्न बहुत बीमार थे।

तब, संध्या समय आयुष्मान् सारिपुत्र ध्यान से उठ, जहाँ आयुष्मान् महाचुन्द थे वहाँ गये, और बोले, आवुस चुन्द ! चलें, जहाँ आयुष्मान् छन्न बीमार है वहाँ चलें।"

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् महा-चुन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र को उत्तर दिया।

तब, आयुष्मान् महाचुन्द और आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ आयुष्मान् छन्न बीमार थे वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठ कर, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् छन्न से बोले :—"आवुस छन्न ! आपकी तबियत अच्छी तो है, बीमारी कम तो हो रही है न ?"

आवुस सारिपुत्र ! मेरी तबियत अच्छी नहीं है, बीमारी बढ़ ही रही है।

आवुस ! जैसे कोई बलवान् पुरुष तेज़ तलवार से शिर में बार बार चुभोये, वैसे ही वात मेरे शिर में धक्का मार रहा है। आवुस ! मेरी तबियत अच्छी नहीं है, बीमारी बढ़ ही रही है।

आवुस ! जैसे कोई बलवान् पुरुष शिर में कसकर रस्सी लपेट दे, वैसे ही अधिक पीड़ा हो रही है।···

आवुस ! जैसे कोई चतुर गोघातक या गोघातक का अन्तेवासी तेज़ छूरे से पेट काटे, वैसे ही अधिक पेट में वात से पीड़ा हो रही है।···

आवुस ! जैसे दो बलवान् पुरुष किसी निर्बल पुरुष को बाँह पकड़ कर धधकती आग में तपावें, वैसे ही मेरे सारे शरीर में दाह हो रहा है।··

आवुस···सारिपुत्र ! मैं आत्म-हत्या कर लूँगा; जीना नहीं चाहता।

आयुष्मान् छन्न आत्महत्या मत करें। आयुष्मान् छन्न जीवित रहें; हम लोग आयुष्मान् छन्न को जीवित रहना ही चाहते हैं। यदि आयुष्मान् छन्न को अच्छा भोजन नहीं मिलता हो तो मैं स्वयं अच्छा भोजन ला दिया करूँगा। यदि आयुष्मान् छन्न को अच्छा दवा-बीरो नहीं मिलता हो तो मैं स्वयं अच्छा दवा-बीरो ला दिया करूँगा। यदि आयुष्मान् छन्न को कोई अनुकूल टहल करने वाला नहीं है तो मैं स्वयं आयुष्मान् का टहल करूँगा। आयुष्मान् छन्न आत्महत्या मत करें। आयुष्मान् छन्न जीवित रहें। हम लोग आयुष्मान् छन्न को जीवित रहना ही चाहते हैं।

आवुस सारिपुत्र ! ऐसी बात नहीं है कि मुझे अच्छे भोजन न मिलते हों। मुझे अच्छे ही भोजन मिला करते हैं। ऐसी बात भी नहीं है कि मुझे अच्छा दवा-बीरो नहीं मिलता हो। मुझे अच्छा ही दवा-

औरों मिला करता है। ऐसी बात भी नहीं है कि मेरे टहल करनेवाले अनुकूल न हों। मेरे टहल करनेवाले अनुकूल ही हैं।

आवुस ! बल्कि, मैं शास्ता को दीर्घकाल से प्रिय समझता आ रहा हूँ, अप्रिय नहीं। श्रावकों को यही चाहिये। क्योंकि शास्ता की सेवा प्रिय से करनी चाहिये, अप्रिय से नहीं, इसीलिये भिक्षु छन्न निर्दोष आत्म-हत्या करेगा।...

यदि आयुष्मान् छन्न अनुमति दें तो हम कुछ प्रश्न पूछें।

आवुस सारिपुत्र ! पूछें, सुनकर उत्तर दूँगा।

आवुस छन्न ! क्या आप चक्षु, चक्षुविज्ञान, और चक्षुविज्ञान से जानने योग्य धर्मों को ऐसा समझते हैं—यह मेरा है...? श्रोत्र...मन...?

आवुस सारिपुत्र ! मैं चक्षु, चक्षुविज्ञान, और चक्षुविज्ञानसे जानने योग्य धर्मों को समझता हूँ कि—यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा आत्मा नहीं है। श्रोत्र...मन...।

आवुस छन्न !.........उनमें क्या देख और जानकर आप उन्हें ऐसा समझते हैं ?

आवुस सारिपुत्र !......उनमें निरोध देख और जानकर मैं उन्हें ऐसा समझता हूँ।

इस पर, आयुष्मान् महाचुन्द आयुष्मान् छन्न से बोले, "आवुस छन्न ! तो, भगवान् के इस उपदेश का भी सदा मनन करना चाहिये—निसृत में स्पन्दन होता है, अनिसृत में स्पन्दन नहीं होता है। स्पन्दन के नहीं होने से प्रश्रब्धि होती है। प्रश्रब्धि के होने से झुकाव नहीं होता है। झुकाव नहीं होने से अगतिगति नहीं होती है। अगतिगति नहीं होने से च्युत होना या उत्पन्न होना नहीं होता है। च्युत या उत्पन्न नहीं होने से न इस लोक में, न परलोक में, और न बीच में। यही दुःख का अन्त है।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महा-चुन्द आयुष्मान् छन्न को ऐसा उपदेश दे आसन से उठ चले गये।

उन आयुष्मानों के जाने के बाद ही आयुष्मान् छन्न ने आत्म-हत्या कर ली।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् से बोले, "भन्ते ! छन्न ने आत्म-हत्या कर ली है, उसकी क्या गति होगी ?"

सारिपुत्र ! छन्न ने तुम्हें क्या अपनी निर्दोषता बताई थी ?

भन्ते ! पुब्बविज्झन नामक वज्जियों का एक ग्राम है। वहाँ आयुष्मान् छन्न के मित्रकुल=सुहृद्कुल उपगन्तव्य (=जिनके पास जाया जाये) कुल हैं।

सारिपुत्र ! छन्न भिक्षु के सचमुच मित्रकुल=सुहृदकुल उपवद्यकुल हैं। सारिपुत्र ! किन्तु, मैं इतने से किसी को उपवज्य (=जाने आने के संसर्ग वाला) नहीं कहता। सारिपुत्र ! जो एक शरीर छोड़ता है और दूसरा शरीर धारण करता है, उसीको मैं 'उपवज्य' कहता हूँ। वह छन्न भिक्षु को नहीं है। छन्न ने निर्दोषपूर्ण आत्म-हत्या की है—ऐसा समझो।*

§ ५. पुण्ण सुत्त (३४. २. ४. ५)

धर्म-प्रचार की सहिष्णुता और त्याग

...एक ओर बैठ, आयुष्मान् पूर्ण भगवान् से बोले, "भन्ते ! मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें"।

पूर्ण ! चक्षु विज्ञेय रूप है, अभीष्ट, सुन्दर"। भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है,"इससे उसे तृष्णा उत्पन्न होती है। पूर्ण ! तृष्णा के समुदय से दुःख का समुदय होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

---

* यही सुत्त मज्झिम निकाय ३. ५. २ में भी।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द···मनोविज्ञेय धर्म···।

पूर्ण ! चक्षुविज्ञेय रूप हैं, अभीष्ट, सुन्दर···। भिक्षु उनका अभिनन्दन नहीं करता है···। इससे उसकी तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। पूर्ण ! तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द···मनोविज्ञेय धर्म···।

पूर्ण ! मेरे इस संक्षिप्त उपदेश को सुन तुम किस जनपद में विहार करोगे ?

भन्ते ! सूनापरन्त नाम का एक जनपद है, वहीं मैं विहार करूँगा।

पूर्ण ! सूनापरन्त के लोग बड़े चण्ड-रूखड़े हैं। पूर्ण ! यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें गाली देंगे और डाटेंगे तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे गाली देंगे और डाटेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरन्त के लोग बड़े भद्र हैं जो मुझे हाथ से मार-पीट नहीं करते हैं। भगवन् ! मुझे ऐसा ही होगा। सुगत ! मुझे ऐसा ही होगा।

पूर्ण ! यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें हाथ से मार-पीट करेंगे तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे हाथ से मार-पीट करेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरन्त के लोग बड़े भद्र हैं जो मुझे ढेला से नहीं मारते हैं। भगवन् ! मुझे ऐसा ही होगा। सुगत ! मुझे ऐसा ही होगा।

पूर्ण ! यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें ढेला से मारें, तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे ढेला से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरन्त के लोग भद्र हैं जो मुझे लाठी से नहीं मारते।···

यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें लाठी से मारेंगे तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे लाठी से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरन्त के लोग बड़े भद्र हैं जो मुझे किसी हथियार से नहीं मारते हैं।···

पूर्ण ! यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें हथियार से मारें तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे हथियार से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरन्त के लोग बड़े भद्र हैं जो मुझे जान से नहीं मार डालते हैं।···

पूर्ण ! यदि सूनापरन्त के लोग तुम्हें जान से मार डालें तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरन्त के लोग मुझे जान से भी मार डालें तो मुझे यह होगा—भगवान् के श्रावक इस शरीर और जीवन से ऊब आत्म-हत्या करने के लिये जल्लाद की तलाश करते हैं, सो यह मुझे बिना तलाश किये मिल गया। भगवन् ! मुझे ऐसा ही होगा। सुगत ! मुझे ऐसा ही होगा।

पूर्ण ! ठीक है, इस धर्मशान्ति से युक्त तुम सूनापरन्त जनपद में निवास कर सकते हो। पूर्ण ! अब तुम जहाँ चाहो जाने की छुट्टी है।

तब, आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, भगवान् को प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर, बिछावन लपेट, पात्र-चीवर ले सूनापरन्त की ओर रमत लगाते चल दिये। क्रमशः, रमत लगाते जहाँ सूनापरन्त जनपद है वहाँ पहुँचे। वहाँ सूनापरन्त जनपद में आयुष्मान् पूर्ण विहार करने लगे।

तब, आयुष्मान् पूर्ण ने उसी वर्षावास में पाँच सौ लोगों को बौद्ध-उपासक बना दिया। उसी वर्षावास में तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया। उसी वर्षावास में परिनिर्वाण भी पा लिया।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! पूर्ण नामक कुल-पुत्र जिसे भगवान् ने संक्षेप से धर्म का उपदेश किया था, वह मर गया। उसकी क्या गति होगी ?

भिक्षुओ ! वह कुलपुत्र पण्डित था। वह धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न था। मेरे धर्म को बदनाम नहीं करेगा। भिक्षुओ ! पूर्ण कुलपुत्र ने निर्वाण पा लिया।*

§ ६. बाहिय सुत्त (३४. २. ४. ६)

अनित्य, दुःख

...एक ओर बैठ, आयुष्मान् बाहिय भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें...।"

बाहिय ! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

...जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है...?

नहीं भन्ते !

रूप...। विज्ञान...। चक्षुसंस्पर्श ?

अनित्य भन्ते !

...जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है...?

नहीं भन्ते।

श्रोत्र...मन...।

बाहिय ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक...जाति क्षीण हुई...जान लेता है।

तब, आयुष्मान् बाहिय भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदनकर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब, आयुष्मान् बाहिय अकेला...जातिक्षीण हुई...जान लिये।

आयुष्मान् बाहिय अर्हतों में एक हुये।

§ ७. एज सुत्त (३४. २. ४. ७)

चित्त का स्पन्दन रोग है

भिक्षुओ ! एज (=चित्त का स्पन्दन) रोग है, दुर्गन्ध है, काँटा है। भिक्षुओ ! इसलिये बुद्ध अनेज, निष्कण्टक विहार करते हैं।

भिक्षुओ ! यदि तुम भी चाहो तो अनेज, निष्कण्टक विहार कर सकते हो।

चक्षु को नहीं मानना चाहिये; चक्षु में नहीं मानना चाहिये; चक्षु के ऐसा नहीं मानना चाहिये; चक्षु मेरा है ऐसा नहीं मानना चाहिए। रूप को नहीं मानना चाहिये...। चक्षुविज्ञान को...। चक्षु संस्पर्श को...।...वेदना को...।

श्रोत्र...। घ्राण...। जिह्वा...। काया...। मन...।

सभी को नहीं मानना चाहिए। सभी में नहीं मानना चाहिये। सभी के ऐसा नहीं मानना चाहिये। सभी मेरा है ऐसा नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार, वह नहीं मानते हुये लोक में कुछ भी उपादान नहीं करता है। उपादान नहीं करने से उसे परित्रास नहीं होता। परित्रास नहीं होने से वह अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब पुनर्जन्म होने का नहीं—ऐसा जान लेता है।

* यही सुत्त मज्झिम निकाय ३. ५. ३ में भी।

§ ८. एज सुत्त (३४. २. ४. ८)

चित्त का स्पन्दन रोग है

···भिक्षुओ ! यदि तुम भी चाहो तो अनेज, निष्कण्टक विहार कर सकते हो।

चक्षु को नहीं मानना चाहिए···[ऊपर जैसा]। भिक्षुओ ! जिसको मानता है, जिसमें मानता है, जिसको करके मानता है, जिसको 'मेरा है' ऐसा मानता है, उससे वह अन्यथा हो जाता है (=बदल जाता है)। अन्यथाभावी···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! जितने स्कन्ध-धातु आयतन हैं उन्हें भी नहीं मानना चाहिये, उनमें भी नहीं मानना चाहिये, वैसा करके भी नहीं मानना चाहिये, वे मेरे हैं ऐसा भी नहीं मानना चाहिये।

वह इस तरह नहीं मानते हुये लोक में कुछ उपादान नहीं करता। उपादान नहीं करने से उसे परित्रास नहीं होता है। परित्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ९. द्वय सुत्त (३४. २. ४. ९)

दो बातें

भिक्षुओ ! दो का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···। भिक्षुओ ! दो क्या है !

चक्षु और रूप। श्रोत्र और शब्द। घ्राण और गन्ध। जिह्वा और रस। काया और स्पर्श। मन और धर्म।

भिक्षुओ ! यदि कोई कहे कि मैं इन "दो को" छोड़ दूसरे दो का निर्देश करूँगा, तो उसका कहना फजूल है। पूछे जाने पर बता नहीं सकता। उसे हार खानी पड़ेगी।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि बात ऐसी नहीं है।

§ १०. द्वय सुत्त (३४. २. ४. १०)

दो के प्रत्यय से विज्ञान की उत्पत्ति

भिक्षुओ ! दो के प्रत्यय से विज्ञान पैदा होता है। भिक्षुओ ! दो के प्रत्यय से विज्ञान कैसे पैदा होता है ?

चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षु अनित्य = विपरिणामी = अन्यथाभावी है। रूप अनित्य = विपरिणामी = अन्यथाभावी हैं। वैसे ही दोनों चलन और व्यय अनित्य···। चक्षुविज्ञान अनित्य···। चक्षुविज्ञान की उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है वह भी अनित्य···। भिक्षुओ ! अनित्य प्रत्यय के कारण चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है। वह भला नित्य कैसे होगा ? भिक्षुओ ! जो इन तीन धर्मों का मिलना है वह चक्षु संस्पर्श कहा जाता है। चक्षुसंस्पर्श भी अनित्य = विपरिणामी = अन्यथाभावी है। चक्षुसंस्पर्श की उत्पत्ति के जो हेतु = प्रत्यय हैं वह भी अनित्य···। भिक्षुओ ! अनित्य प्रत्यय के कारण उत्पन्न चक्षुसंस्पर्श भला कैसे नित्य होगा ? भिक्षुओ ! स्पर्श के होने से ही वेदना होती है, स्पर्श के होने से ही चेतना होती है, स्पर्श के होने से ही संज्ञा होती है। ये धर्म भी चञ्चल व्ययशील, अनित्य, विपरिणामी, और अन्यथाभावी हैं।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। मन···।

भिक्षुओ ! इस तरह, दोनों के प्रत्यय से विज्ञान होता है।

छन्न वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

षट्वर्ग

§ १. संगय्ह सुत्त (३४. २. ५. १)

छः स्पर्शायतन दुःखदायक हैं

भिक्षुओ ! यह छः स्पर्शायतन अदान्त=अगुप्त=अरक्षित=असंयत दुःख देनेवाले हैं। कौन से छः ?

(१) भिक्षुओ ! चक्षु-स्पर्शायतन अदान्त...। (२) श्रोत्रस्पर्शायतन...। (३) घ्राणस्पर्शायतन...। (४) जिह्वास्पर्शायतन...। (५) कायास्पर्शायतन...। (६) मनःस्पर्शायतन...।

भिक्षुओ ! यही छः स्पर्शायतन अदान्त...हैं।

भिक्षुओ ! यह छः स्पर्शायतन सुदान्त=सुगुप्त=सुरक्षित=सुसंयत सुख देनेवाले हैं। कौन से छः ?

भिक्षुओ ! चक्षु-स्पर्शायतन...मनःस्पर्शायतन...।

भिक्षुओ ! यही छः स्पर्शायतन सुदान्त...सुख देनेवाले हैं।

भगवान् ने इतना कहा। इतना कहकर बुद्ध फिर भी बोले:—

> भिक्षुओ ! छः स्पर्शायतन हैं,
> जिनमें असंयत रहनेवाला दुःख पाता है।
> उनके संयम को जिनने श्रद्धा से जान लिया,
> वे क्लेशरहित हो विहार करते हैं ॥१॥
> मनोरम रूपों को देख,
> और अमनोरम रूपों को भी देख,
> मनोरम के प्रति उठनेवाले राग को दबावे,
> न 'यह मेरा अप्रिय है' समझ मनमें द्वेष लावे ॥२॥
> दोनों प्रिय और अप्रिय शब्द को सुन,
> प्रिय शब्दों के प्रति मूर्च्छित न हो जाय,
> अप्रिय के प्रति अपने द्वेष को दबावे,
> न "यह मेरा अप्रिय है" समझ, मनमें द्वेष लावे ॥३॥
> सुरभि मनोरम गन्धका घ्राण कर,
> और अशुचि अप्रिय का भी घ्राण कर,
> अप्रिय के प्रति अपनी खिन्नता को दबावे,
> और प्रिय के प्रति अपनी इच्छा में, बहक न जाय ॥४॥
> बड़े मधुर स्वादिष्ट रस का भोग कर,
> और कभी बुरे स्वादवाले पदार्थ को भी खा,
> स्वादिष्ट को बिल्कुल टूटकर नहीं खाता है,
> और अस्वादिष्ट को बुरा भी नहीं मानता है ॥५॥
> सुख-स्पर्श के लगने से मतवाला न हो जाय,

और दुःख-स्पर्श से काँपने न लगें,
सुख और दुःख दोनों स्पर्शों के प्रति उपेक्षा से,
न किसी को चाहें और न किसी को न चाहें ॥६॥
जैसे तैसे मनुष्य प्रपञ्चसंज्ञावाले हैं,
प्रपञ्च में पड़, वे संज्ञावाले हैं,
यह सारा घर मन पर ही खड़ा है
उसे जीत, निष्कर्म बनें ॥७॥
इस प्रकार, इन छः में जब मन सुभावित होता है,
तो कहीं स्पर्श के लगने से चित्त काँपता नहीं है।
भिक्षुओ ! राग और द्वेष को दबा,
जन्म-मृत्यु के पार हो जाते हैं ॥८॥

§ २. संगह्य सुत्त (३४. २. ५. २)

अनासक्ति से दुःख का अन्त

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् मालुक्यपुत्र भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें···।"

मालुक्यपुत्र ! यहाँ अभी छोटे छोटे भिक्षुओं के सामने क्या कहूँगा। जहाँ तुम जीर्ण=वृद्ध··· भिक्षु रहो वहाँ संक्षेप से धर्म सुनने की याचना करना।

भन्ते ! यहाँ मैं जीर्ण=वृद्ध···हूँ। भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें, जिसमें मैं भगवान् के कहने का अर्थ शीघ्र ही जान लूँ। भगवान् के उपदेश का मैं शीघ्र ही ग्रहण करनेवाला हो जाऊँगा।

मालुक्यपुत्र ! क्या समझते हो, जिन चक्षुविज्ञेय रूपों को तुमने न कभी पहले देखा है और न अभी देख रहे हो, उनको 'देखूँ' ऐसा तुम्हारे मन में नहीं होता है ? उनके प्रति तुम्हारा छन्द-राग या प्रेम है ?

नहीं भन्ते !

जो श्रोत्रविज्ञेय शब्द है···। जो घ्राणविज्ञेय गन्ध है···। जो जिह्वाविज्ञेय रस है···। जो काया-विज्ञेय स्पर्श हैं···। जो मनोविज्ञेय धर्म हैं···। नहीं भन्ते !

मालुक्यपुत्र ! यहाँ देखे-सुने···जाने धर्मों में, देखे में देखना भर होगा। सुने में सुना भर होगा। घ्राण किये में घ्राण करना भर रहेगा।···चखे में चखना भर रहेगा। छूये में छूना भर रहेगा। जाने में जानना भर रहेगा।

मालुक्यपुत्र ! इससे तुम उनमें नहीं सक्त होगे। मालुक्यपुत्र ! जब तुम उनमें सक्त नहीं होगे तो उनके पीछे नहीं पड़ोगे। मालुक्यपुत्र ! जब तुम उनके पीछे नहीं पड़ोगे, तो तुम न इस लोक में न परलोक में और न कहीं बीच में ठहरोगे। यही दुःख का अन्त है।

भन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का मैंने विस्तार से अर्थ जान लिया :—
रूप को देख स्मृति-भ्रष्ट हो, प्रियनिमित्त को मन में लाते,
अनुरक्त चित्तवाले को वेदना होती है, उसमें लग्न हो कर रहता है,
उसकी वेदनायें बढ़ती हैं, रूप से होने वाले अनेक,
लोभ और द्वेष उसके चित्त को दबा देते हैं,
इस प्रकार दुःख बटोरता है, वह 'निर्वाण से बहुत दूर' कहा जाता है ॥१॥

शब्द को सुन स्मृति-भ्रष्ट हो… [ऊपर जैसा ही]
इस प्रकार दुःख बटोरता है, वह 'निर्वाण से बहुत दूर' कहा जाता है ॥२॥
गन्ध का घ्राण कर स्मृति-भ्रष्ट हो…
इस प्रकार दुःख बटोरता है, वह 'निर्वाणसे बहुत दूर' कहा जाता है ॥३॥
रस का स्वाद ले स्मृति-भ्रष्ट हो…
इस प्रकार दुःख बटोरता है…॥४॥
स्पर्श के लगने से स्मृति-भ्रष्ट हो…
इस प्रकार दुःख बटोरता है…॥५॥
धर्मों को जान स्मृति-भ्रष्ट हो…
इस प्रकार दुःख बटोरता है…॥६॥
वह रूपों में राग नहीं करता, रूप को देख स्मृतिमान् रहता है,
विरक्त चित्त से वेदना का अनुभव करता है, उसमें लग्न नहीं होता,
अतः, उसके रूप देखने और वेदना का अनुभव करने पर भी,
घटता है, बढ़ता नहीं, ऐसा वह स्मृतिमान विचरता है।
इस प्रकार, दुःख को घटाते वह 'निर्वाण के पास' कहा जाता है ॥७॥
वह शब्दों में राग नहीं करता…[ऊपर जैसा] ॥८॥
वह गन्धों में राग नहीं करता…॥९॥
वह रसों में राग नहीं करता…॥१०॥
वह स्पर्शों में राग नहीं करता…॥११॥
वह धर्मों में राग नहीं करता…॥१२॥

भन्ते ! भगवान के संक्षेप से कहे गये का मैं इस प्रकार विस्तार से अर्थ समझता हूँ।

ठीक है, मालुक्यपुत्र ! तुमने मेरे संक्षेप से कहे गये का विस्तार से अर्थ ठीक ही समझा है।

रूप को देख स्मृतिभ्रष्ट हो…[ऊपर कही गई गाथा में ज्यों की त्यों]

मालुक्यपुत्र ! मेरे संक्षेप से कहे गये का इसी तरह विस्तार से अर्थ समझना चाहिए।

तब, आयुष्मान मालुक्यपुत्र भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब, आयुष्मान मालुक्यपुत्र अकेला, अलग, अप्रमत्त…।

आयुष्मान मालुक्यपुत्र अर्हतों में एक हुये।

§ ३. परिहान सुत्त (३४. २. ५. ३)

अभिभावित आयतन

भिक्षुओ ! परिहानधर्म, अपरिहानधर्म, और छः अभिभावित आयतनों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! परिहानधर्म कैसे होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख भिक्षु को पापमय चञ्चल संकल्पवाले संयोजन में डालनेवाले अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यदि भिक्षु उनको टिकने दे, छोड़े नहीं = दबावे नहीं = अन्त नहीं करे = नाश नहीं करे, तो उसे समझना चाहिए कि मैं कुशल धर्मों से गिर रहा हूँ (प्रहाण कर रहा हूँ)। भगवान् ने इसी को परिहान कहा है।

श्रोत्र से शब्द सुन…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मनसे धर्मों को जान…।

भिक्षुओ ! ऐसे ही परिहान धर्म होता है।

भिक्षुओ ! अपरिहान धर्म कैसे होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख, भिक्षु को पापमय, चंचल संकल्प वाले, संयोजन में डालनेवाले अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यदि भिक्षु उनको टिकने न दे, छोड़ दे = दबा दे = अन्त कर दे = नाश कर दे, तो उसे समझना चाहिये कि मैं कुशल धर्मों से गिर नहीं रहा हूँ। भगवान् ने इसी को अपरिहान कहा है।

श्रोत्र से शब्द सुन···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन से धर्मों को जान···।

भिक्षुओ ! ऐसे ही अपरिहान धर्म होता है।

भिक्षुओ ! छः अभिभावित आयतन कौन-से हैं ?

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख, भिक्षु को पापमय, चंचल संकल्प वाले, संयोजन में डालनेवाले अकुशल धर्म नहीं उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ ! तब, उस भिक्षु को समझना चाहिये कि मेरा यह आयतन अभिभूत हो गया है। (= जीत लिया गया है) इसी को भगवान् ने अभिभावित आयतन कहा है।

श्रोत्र से शब्द सुन···मन से धर्मों को जान···।

भिक्षुओ ! यही छः अभिभावित आयतन कहे जाते हैं।

§ ४. पमादविहारी सुत्त (३४. २. ५. ४)

धर्म के प्रादुर्भाव से अप्रमाद-विहारी होना

श्रावस्ती...।

भिक्षुओ ! प्रमादविहारी और अप्रमादविहारी का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! कैसे प्रमादविहारी होता है ?

भिक्षुओ ! असंयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करनेवाले का चित्त चक्षुविज्ञेय रूपों में क्लेश युक्त चित्तवाले को प्रमोद नहीं होता है। प्रमोद नहीं होने से प्रीति नहीं होती है। प्रीति नहीं होने से प्रश्रब्धि नहीं होती है। प्रश्रब्धि नहीं होने से दुःख-पूर्वक विहार करता है। दुःखयुक्त चित्त समाधि-लाभ नहीं करता है। असमाहित चित्त में धर्म प्रादुर्भूत नहीं होते। धर्मों के प्रादुर्भूत नहीं होने से वह 'प्रमाद विहारी' कहा जाता है।

भिक्षुओ ! असंयत श्रोत्र-इन्द्रिय से विहार करनेवाले का चित्त श्रोत्रविज्ञेय शब्दों में क्लेशयुक्त होता है।···घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! ऐसे ही प्रमादविहारी होता है।

भिक्षुओ ! कैसे अप्रमादविहारी होता है।

भिक्षुओ ! संयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करनेवाले का चित्त चक्षुविज्ञेय रूपों में क्लेशयुक्त नहीं होता है। क्लेशरहित चित्तवाले को प्रमोद होता है। प्रमोद होने से प्रीति होती है। प्रीति होने से प्रश्रब्धि होती है। प्रश्रब्धि होने से सुख-पूर्वक विहार करता है। सुख से चित्त समाधि-लाभ करता है। समाहित चित्त में धर्म प्रादुर्भूत होते हैं। धर्मों के प्रादुर्भूत होने से वह 'अप्रमादविहारी' कहा जाता है। श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! ऐसे ही अप्रमादविहारी होता है।

§ ५. संवर सुत्त (३४. २. ५. ५)

इन्द्रिय-निग्रह

भिक्षुओ ! संवर और असंवर का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! कैसे असंवर होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने, प्यारे, कामयुक्त, राग में डालनेवाले होते हैं। यदि कोई भिक्षु उसका अभिनन्दन करे, उसकी बड़ाई करे, और उसमें लग्न हो जाय, तो उसे समझना चाहिये कि मैं कुशल धर्मों से गिर रहा हूँ। इसे भगवान् ने परिहान कहा है।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द···। घ्राणविज्ञेय गन्ध···। जिह्वाविज्ञेय रस···। कायाविज्ञेय स्पर्श···। मनोविज्ञेय धर्म···।

भिक्षुओ ! ऐसे ही असंवर होता है।

भिक्षुओ ! कैसे संवर होता है ?

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने, प्यारे, कामयुक्त, राग में डालनेवाले होते हैं। यदि कोई भिक्षु उनका अभिनन्दन न करे, उनकी बड़ाई न करे, और उनमें लग्न न हो, तो उसे समझना चाहिये कि मैं कुशलधर्मों से नहीं गिर रहा हूँ। इसे भगवान् ने अपरिहान कहा है।

श्रोत्र···। मन···।

भिक्षुओ ! ऐसे ही संवर होता है।

§ ६. समाधि सुत्त (३४. २. ५. ६)

समाधि का अभ्यास

भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो। समाहित भिक्षु को यथार्थ-ज्ञान होता है।

किसका यथार्थ-ज्ञान होता है ?

चक्षु अनित्य है इसका यथार्थ-ज्ञान होता है। रूप···। चक्षुविज्ञान···। चक्षुसंस्पर्श···।···वेदना अनित्य है इसका यथार्थ-ज्ञान होता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन अनित्य है इसका यथार्थ-ज्ञान होता है···।

भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो। समाहित भिक्षु को यथार्थ-ज्ञान होता है।

§ ७. पटिसल्लाण सुत्त (३४. २. ५. ७)

कायविवेक का अभ्यास

भिक्षुओ ! प्रतिसल्लान का अभ्यास करो। प्रतिसल्लीन भिक्षु को यथार्थ-ज्ञान होता है।

किसका यथार्थ-ज्ञान होता है ?

चक्षु अनित्य है इसका यथार्थ-ज्ञान होता है···[ऊपर जैसा ही]

§ ८. न तुम्हाक सुत्त (३४. २. ५. ८)

जो अपना नहीं, उसका त्याग

भिक्षुओ ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ो। उसके छोड़ने से तुम्हारा हित और सुख होगा।

भिक्षुओ ! तुम्हारा क्या नहीं है ?

भिक्षुओ ! चक्षु तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो। उसके छोड़ने से तुम्हारा हित और सुख होगा। रूप तुम्हारा नहीं है···। चक्षु-विज्ञान···। चक्षुसंस्पर्श···।··· वेदना तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो। उसके छोड़ने से तुम्हारा हित और सुख होगा ?

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो। उसके छोड़ने से तुम्हारा हित और सुख होगा। धर्म तुम्हारा नहीं है···। मनोविज्ञान···। मनःसंस्पर्श···।··· वेदना तुम्हारी नहीं है, उसे छोड़ो। उसके छोड़ने से तुम्हारा हित और सुख होगा।

भिक्षुओ ! जैसे, इस जेतवन के तृण-काष्ठ-शाखा-पलास को लोग ले जायँ, या जलावें, या जो इच्छा करें, तो क्या तुम्हारे मनमें ऐसा होगा—हमें लोग ले जा रहे हैं, या हमें जला रहे हैं, या हमें जो इच्छा कर रहे हैं।

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! यह मेरा आत्मा या अपना नहीं है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, चक्षु तुम्हारा नहीं है... [ऊपर कहे गये की पुनरावृत्ति] उसके छोड़ने में तुम्हारा हित और सुख होगा ।

§ ९. न तुम्हाक सुत्त (३४. २. ५. ९)

जो अपना नहीं, उसका त्याग

[जेतवन तृण-काष्ठादि की उपमा को छोड़ ऊपर का सूत्र ज्यों का त्यों]

§ १०. उद्दक सुत्त (३४. २. ५. १०)

दुःख के मूल को खोदना

भिक्षुओ ! उद्दक रामपुत्र ऐसा कहता थाः—

यह मैं ज्ञानी (= वेदगू) हूँ, यह मैं सर्वजित् हूँ ।

मैंने दुःख के मूल को (=गण्ड-मूल) खन दिया है ॥

भिक्षुओ ! उद्दक रामपुत्र ज्ञानी नहीं होते हुये भी अपने को ज्ञानी कहता था । सर्वजित् नहीं होते हुये भी अपने को सर्वजित् कहता था । उसके दुःख-मूल लगे ही हुये थे, किन्तु कहता था कि मैंने दुःख के मूल को खन दिया है ।

भिक्षुओ ! यथार्थ में कोई भिक्षु ही ऐसा कह सकता हैः—

यह मैं ज्ञानी (=वेदगू) हूँ, यह मैं सर्वजित् हूँ ।

मैंने दुःख के मूल को खन दिया है ॥

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे ज्ञानी होता है ? भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है, इसी से भिक्षु ज्ञानी होता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे सर्वजित् होता है ? भिक्षुओ ! क्योंकि भिक्षु छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान उपादानरहित हो विमुक्त हो जाता है, इसी से भिक्षु सर्वजित् होता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे दुःख के मूल को खन देता है ? भिक्षुओ ! दुःख (= गण्ड) इन चार महाभूतों से बने शरीर के लिये कहा गया है, जो माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होता है, जो भात-दाल से बढ़ता-पोसाता है, जो अनित्य है, जिसमें गन्धादि का लेप करते हैं, जिसको मलते और दबाते हैं, और जो नष्ट-भ्रष्ट हो जानेवाला है । भिक्षुओ ! दुःख-मूल तृष्णा को कहा गया है । भिक्षुओ ! जब भिक्षु की तृष्णा प्रहीण हो जाती है, उच्छिन्नमूल, शिर कटे ताड़ के समान, मिटा दी गई, जो फिर उत्पन्न न हो सके, तो यह कहा जा सकता है कि उसने दुःख के मूल को खन दिया है ।

भिक्षुओ ! सो उद्दक रामपुत्र कहता था—

यह मैं ज्ञानी हूँ, यह मैं सर्वजित् हूँ ।
मैंने दुःख के मूल को खन दिया है ॥

भिक्षुओ ! उद्दक रामपुत्र ज्ञानी नहीं होते हुये भी अपने को ज्ञानी कहता था । सर्वजित् नहीं होते हुये भी अपने को सर्वजित् कहता था । उसके दुःख-मूल लगे ही हुये थे, किन्तु कहता था कि मैंने दुःख के मूल को खन दिया है ।

भिक्षुओ ! यथार्थ में कोई भिक्षु ही ऐसा कह सकता है :—

यह मैं ज्ञानी हूँ, यह मैं सर्वजित् हूँ ।
मैंने दुःख के मूल को खन दिया है ॥

षड्वर्ग समाप्त

द्वितीय पण्णासक समाप्त

तृतीय पण्णासक

पहला भाग

योगक्षेमी वर्ग

§ १. योगक्खेमी सुत्त (३४. ३. १. १)

बुद्ध योगक्षेमी हैं

भिक्षुओ ! तुम्हें योगक्षेमी-कारणभूत का धर्मोपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने…होते हैं। बुद्ध के वे प्रहीण होते हैं, उच्छिन्नमूल…। उसके प्रहाण के लिये योग किया था, इसलिये बुद्ध योगक्षेमी कहे जाते हैं।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द…मनोविज्ञेय धर्म…।

§ २. उपादाय सुत्त (३४. ३.१. २)

किसके कारण आध्यात्मिक सुख-दुःख ?

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! चक्षु के होने से, चक्षु के उपादान से आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। श्रोत्र… मन के होने से…।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

…जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है, क्या उसका उपादान नहीं करने से भी आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होंगे ?

नहीं भन्ते !

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ३. दुक्ख सुत्त (३४. ३. १. ३)

दुःख की उत्पत्ति और नाश

भिक्षुओ ! दुःख के समुदय और अस्त होने का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! दुःख का समुदय क्या है ?

चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है। वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। यही दुःख का समुदय है।

श्रोत्र और शब्दों के प्रत्यय से श्रोत्रविज्ञान उत्पन्न होता है…।…मन और धर्मों के प्रत्यय से मनोविज्ञान उत्पन्न होता है…।

भिक्षुओ ! दुःख का अस्त होना क्या है ?

…वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। उसी तृष्णा के बिल्कुल निरोध से मन का निरोध होता है। मन के निरोध से जाति का निरोध होता है। जाति के निरोध से जरा, मरण…सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस तरह, सारे दुःख-समुदाय का निरोध हो जाता है। यही दुःख का अस्त हो जाना है।

श्रोत्र…मन…। यही दुःख का अस्त हो जाना है।

§ ४. लोक सुत्त (३४. ३. १. ४)

लोक की उत्पत्ति और नाश

भिक्षुओ ! लोक के समुदय और अस्त होने का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! लोक का समुदय क्या है ?

चक्षु…तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है। वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है। उपादान के प्रत्यय से भव होता है। भव के प्रत्यय से जाति होती है। जाति के प्रत्यय से जरा, मरण…उत्पन्न होते हैं। यही लोक का समुदय है।

श्रोत्र…मन…। यही लोक का समुदय है।

भिक्षुओ ! लोक का अस्त होना क्या है ?

[ऊपरवाले सूत्र के ऐसा ही]

यही लोक का अस्त होना है।

§ ५. सेय्यो सुत्त (३४. ३. १. ५)

बड़ा होने का विचार क्यों ?

भिक्षुओ ! किसके होने से, किसके उपादान से ऐसा होता है—मैं बड़ा हूँ, या मैं बराबर हूँ, या मैं छोटा हूँ ?

धर्म के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! चक्षु के होने से, चक्षु के उपादान से, चक्षु के अभिनिवेश से ऐसा होता है—मैं बड़ा हूँ, या मैं बराबर हूँ, या मैं छोटा हूँ।

श्रोत्र के होने से…मन के होने से…।

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !…

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है क्या उसके उपादान नहीं करने से भी ऐसा होगा—मैं क्या बड़ा हूँ…?

नहीं भन्ते !

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ६. सञ्ञोजन सुत्त (३४. ३. १. ६)

संयोजन क्या है ?

भिक्षुओ ! संयोजनीय धर्म और संयोजन का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! संयोजनीय धर्म क्या हैं, और क्या है संयोजन ?

भिक्षुओ ! चक्षु संयोजनीय धर्म है। उसके प्रति जो छन्दराग है वह वहाँ संयोजन है। श्रोत्र…मन…।

भिक्षुओ ! यही संयोजनीय धर्म और संयोजन हैं।

§ ७. उपादान सुत्त (३४. ३. १. ७)

उपादान क्या है ?

···भिक्षुओ ! चक्षु उपादानीय धर्म है। उसके प्रति जो छन्दराग है वह वहाँ उपादान है।···

§ ८. पजान सुत्त (३४. ३. १. ८)

चक्षु को जाने विना दुःख का क्षय नहीं

भिक्षुओ ! चक्षु को बिना जाने, बिना समझे, उसके प्रति राग को बिना दबाये तथा उसे बिना छोड़े दुःखों का क्षय करना सम्भव नहीं। श्रोत्र को··· मन को···।

भिक्षुओ ! चक्षु को जान, समझ, उसके प्रति राग को दबा, तथा उसे छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है। श्रोत्र···मन···।

§ ९. पजान सुत्त (३४. ३. १. ९)

रूप को जाने विना दुःख का क्षय नहीं

भिक्षुओ ! रूप को बिना जाने ··तथा उसे बिना छोड़े दुःखों का क्षय करना सम्भव नहीं।

शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

रस···स्पर्श···। धर्म को जान···तथा उसे छोड़ दुःखों का क्षय करना सम्भव है।

§ १०. उपस्सुति सुत्त (३४. ३. १. १०)

प्रतीत्य-समुत्पाद, धर्म की सीख

एक समय भगवान् नातिक में गिञ्जकावसथ में विहार करते थे।

तब, एकान्त में शान्तचित्त बैठे हुये भगवान् ने यह धर्म की बात कही।

चक्षु और रूपों के प्रत्यय से चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का मिलना स्पर्श है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है। वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। तृष्णा के प्रत्यय से उपादान होता है।··· इस तरह, सारा दुःख-समूह उठ खड़ा होता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

···वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। उसी तृष्णा के बिलकुल निरोध से उपादान का निरोध होता है।···इस तरह, सारा दुःख-समूह निरुद्ध हो जाता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

उस समय कोई भिक्षु भी भगवान् की बात को खड़े-खड़े सुन रहा था।

भगवान् ने उसे खड़े-खड़े अपनी बात सुनते देखा। देखकर उसको कहा, "भिक्षु ! तुमने धर्म की इस बात को सुना ?"

हाँ भन्ते !

भिक्षु ! तुम धर्म की इस बात को सीख लो, याद कर लो। भिक्षु ! धर्म की बात ब्रह्मचारी को सीखने योग्य परमार्थ की होती है !

योगक्षेमी वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

लोककामगुण वर्ग

§ १–२. मारपास सुत्त (३४. ३. २. १–२)

मार के बन्धन में

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर··· । भिक्षु उसका अभिनन्दन करता है··· । भिक्षुओ ! वह भिक्षु मार के वश = आवास में पळा कहा जाता है । मारपाश में वह बझ गया है । पापी मार उसे अपने बन्धन में बाँध जो इच्छा करेगा ।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर···। भिक्षु उसका अभिनन्दन नहीं करता है···। भिक्षुओ ! वह भिक्षु मार के वश = आवास में नहीं पळा कहा जाता है । मारपाश में वह नहीं बझा है । पापी मार उसे अपने बन्धन में बाँध जो इच्छा नहीं कर सकेगा ।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ ३. लोककामगुण सुत्त (३४. ३. २. ३)

चलकर लोक का अन्त पाना सम्भव नहीं

भिक्षुओ ! मैं नहीं कहता कि कोई चल-चलकर लोक के अन्त को जान लेगा, देख लेगा या पा लेगा । भिक्षुओ ! मैं ऐसा भी नहीं कहता कि बिना लोक का अन्त पाये दुःख का अन्त हो जायगा ।

इतना कर, आसन से उठ भगवान् विहार के भीतर चले गये ।

तब, भगवान् के जाने के बाद ही भिक्षुओं के बीच यह हुआ, "आवुस ! यह भगवान् संक्षेप से हमें संकेत दे, उसे बिना विस्तार से समझाये विहार के भीतर चले गये हैं ।···कौन भगवान् के इस संक्षिप्त संकेत का अर्थ विस्तार से समझाये ?

तब, उन भिक्षुओं को यह हुआ—यह आयुष्मान् आनन्द स्वयं बुद्ध और विज्ञ गुरुभाइयों से प्रशंसित और सम्मानित हैं । आयुष्मान् आनन्द भगवान् के इस संक्षिप्त इशारे का विस्तार से अर्थ कहने में समर्थ हैं । तो, हम लोग वहाँ चलें जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं और उनसे इसका अर्थ पूछें ।

तब, वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आये और कुशल-समाचार पूछने के उपरान्त एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस आनन्द ! यह भगवान् संक्षेप से हमें इशारा दे, उसे बिना विस्तार से समझाये आसन से उठ विहार के भीतर चले गये कि—मैं नहीं कहता कि कोई चल-चलकर लोक के अन्त···।·········आयुष्मान् आनन्द इसे समझायें ।

आवुस ! जैसे कोई पुरुष हीर (=सार) पाने की इच्छा से वृक्ष के मूल-धळ को छोळ डाल-पात में हीर खोजने का प्रयास करे वैसे ही आयुष्मानों की यह बात है जो भगवान् के सामने आ जाने पर भी उन्हें छोळ यहाँ हम से यह पूछने आये हैं । आवुस ! भगवान् ही जानते हुये जानते हैं, और देखते हुये देखते हैं—चक्षुस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, धर्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप, वक्ता, प्रवक्ता, यथार्थ के निर्णेता,

अमृत के दाता, धर्मस्वामी, तथागत। इसका अर्थ भगवान् ही से पूछना चाहिये। जैसा भगवान् बतावें वैसा ही समझें।

आवुस आनन्द! ठीक है,......जैसा भगवान् बतावें वैसा ही हम समझें। तो भी, आयुष्मान् आनन्द स्वयं बुद्ध और विज्ञ गुरुभाइयों से प्रशंसित और सम्मानित हैं। भगवान् के इस संक्षेप से दिये गये इशारे का अर्थ विस्तारपूर्वक समझा सकते हैं। आयुष्मान् आनन्द इसे हलका करके समझावें

आवुस! तो सुनें, अच्छी तरह मन में लावें, मैं कहता हूँ।

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस!...इसका विस्तार से अर्थ मैं यों समझता हूँ।

आवुस! जिससे लोक में "लोक की संज्ञा" या मान करता है वह आर्यविनय में लोक कहा जाता है। आवुस! किससे लोक में लोक की संज्ञा या मान करता है? आवुस! चक्षु से लोक में लोक की संज्ञा या मान करता है। श्रोत्र से...। घ्राण से...जिह्वा से...। काया से...। मन से...। आवुस! जिससे लोक में लोक की संज्ञा या मान करता है वह आर्यविनय में लोक कहा जाता है।

आवुस! ...इसका विस्तार से अर्थ मैं यों ही समझता हूँ। यदि आप आयुष्मान् चाहें तो भगवान् के पास जा कर इसका अर्थ पूछें। जैसा भगवान् बतावें वैसा ही समझें।

"आवुस! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दे, आसन से उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते! भगवान्... विहार के भीतर चले गये...। भन्ते! इस लिये, हम लोग जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गये और इसका अर्थ पूछा।

भन्ते! सो आयुष्मान् आनन्द ने इन शब्दों में इसका अर्थ समझाया है।

भिक्षुओ! आनन्द पण्डित है, महाप्रज्ञ है। भिक्षुओ! यदि तुम मुझ से यह पूछते तो मैं ठीक वैसा ही समझाता जैसा कि आनन्द ने समझाया है। उसका यही अर्थ है इसे ऐसा ही समझो।

§ ४. लोककामगुण सुत्त (३४. ३. २. ४)

चित्त की रक्षा

भिक्षुओ! बुद्धत्व लाभ करने के पहले, बोधिसत्त्व रहते ही मुझे यह हुआ—जो पूर्वकाल में अनुभव कर लिये गये पाँच कामगुण अतीत, निरुद्ध, विपरिणत हो गये हैं, वहाँ मेरा चित्त बहुत जाता है, वर्तमान और अनागत की तो बात ही क्या! भिक्षुओ! सो मेरे मन में यह हुआ—जो पूर्वकाल में मेरे अनुभव कर लिये गये पाँच कामगुण अतीत, निरुद्ध, विपरिणत हो गये हैं, उनके प्रति आत्म-हित के लिये मुझे अप्रमत्त और स्मृतिमान् हो अपने चित्त की रक्षा करनी चाहिये।

भिक्षुओ! इसलिये, तुम्हारे भी जो पूर्वकाल में अनुभव कर लिये गये पाँच कामगुण अतीत, निरुद्ध, विपरिणत हो गये हैं, वहाँ चित्त बहुत जाता ही होगा...। इसलिये, उनके प्रति आत्महित के लिये तुम्हें भी अप्रमत्त और स्मृतिमान् हो अपने चित्त की रक्षा करनी चाहिये।

भिक्षुओ! इसलिये, उन आयतनों को जानना चाहिये जहाँ चक्षु निरुद्ध हो जाता है और रूप संज्ञा भी नहीं रहती है।...जहाँ मन निरुद्ध हो जाता है और धर्मसंज्ञा भी नहीं रहती है।

इतना कह, भगवान् आसन से उठ विहार के भीतर चले गये।

तब, भगवान् के जाने के बाद ही उन भिक्षुओं के मन में यह हुआ:— आवुस! यह भगवान् संक्षेप से संकेत दे, उसके अर्थ का बिना विस्तार किये आसन से उठ विहार के भीतर चले गये हैं।... कौन भगवान् के इस संक्षिप्त संकेत का अर्थ विस्तार से समझावे?

तब, उन भिक्षुओं को यह हुआ— यह आयुष्मान् आनन्द...।

तब, वे भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आये ...।

आवुस ! जैसे कोई पुरुष हीर पाने की इच्छा से वृक्ष के मूल-धड़ को छोड़...।

आवुस आनन्द !..आयुष्मान् आनन्द इसे हलका करके समझायें।

आवुस ! तो सुनें- अच्छी तरह मन में लावें, मैं कहता हूँ।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

आयुष्मान् आनन्द बोले—आवुस !........इसका विस्तार से अर्थ मैं यों समझता हूँ।

आवुस ! भगवान् ने यह षडायतन-निरोध के विषय में कहा है। इसलिये, उन आयतनों को जानना चाहिये जहाँ चक्षु निरुद्ध हो जाता है, और रूप-संज्ञा भी नहीं रहती है।...जहाँ मन निरुद्ध हो जाता है और धर्मसंज्ञा भी नहीं रहती है।

आवुस !''''''इसका विस्तार से अर्थ मैं यों ही समझता हूँ। यदि आप आयुष्मान् चाहें तो भगवान् के पास जाकर इसका अर्थ पूछें। जैसा भगवान् बतावें वैसा ही समझें।

"आवुस ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दे, आसन से उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये'''। भन्ते ! सो आयुष्मान् आनन्द ने इन शब्दों में इसका अर्थ समझाया है।

भिक्षुओ ! आनन्द पण्डित हैं, महाप्रज्ञ हैं। भिक्षुओ ! यदि तुम मुझसे यह पूछते तो मैं भी ठीक वैसा ही समझाता जैसा कि आनन्द ने समझाया है। उसका यही अर्थ है। इसे ऐसा ही समझो।

§ ५. सक्क सुत्त (३४. ३. २. ५)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

तब, देवेन्द्र शक्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, देवेन्द्र शक्र भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कारण है कि कुछ लोग अपने देखते ही देखते परिनिर्वाण नहीं पा लेते हैं, और कुछ लोग अपने देखते ही देखते परिनिर्वाण पा लेते हैं ?"

देवेन्द्र ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर लुभावने''हैं। भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है, उनकी बड़ाई करता है, और उनमें लग्न होके रहता है। इस तरह, उसे उनमें लगे हुये उपादानवाला विज्ञान होता है। देवेन्द्र ! उपादान के साथ लगा हुआ वह भिक्षु परिनिर्वाण नहीं पाता है।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द'''मनोविज्ञेय धर्म'''। देवेन्द्र ! उपादान के साथ लगा हुआ वह भिक्षु परिनिर्वाण नहीं पाता है।

देवेन्द्र ! यही कारण है कि कुछ लोग अपने देखते-देखते परिनिर्वाण नहीं पाते हैं।

देवेन्द्र ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर''है। भिक्षु उनका अभिनन्दन नहीं करता है'''उनमें लग्न होके नहीं रहता है। इस तरह, उसे उनमें लगे हुये उपादानवाला विज्ञान नहीं होता है। देवेन्द्र ! उपादान-रहित वह भिक्षु परिनिर्वाण पा लेता है।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द'''मनोविज्ञेय धर्म'''। देवेन्द्र ! उपादान-रहित वह भिक्षु परिनिर्वाण पा लेता है।

देवेन्द्र ! यही कारण है कि कुछ लोग अपने देखते-देखते परिनिर्वाण पा लेते हैं।

§ ६. पञ्चसिख (३४. ३. २. ६)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

राजगृह'' गृद्धकूट'''।

तब, पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, पञ्चशिख गन्धर्वपुत्र भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कारण है कि कुछ लोग अपने देखते ही देखते परिनिर्वाण नहीं पा लेते हैं और कुछ लोग अपने देखते-ही-देखते परिनिर्वाण पा लेते हैं ?"

...[ऊपर जैसा]

§ ७. पञ्चसिख सुत्त (३४. ३. २. ७)

भिक्षु के घर-गृहस्थी में लौटने का कारण

एक समय, आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, एक भिक्षु जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आया और कुशल-प्रश्न पूछने के उपरान्त एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला, "आवुस सारिपुत्र ! मेरा शिष्य भिक्षु शिक्षा को छोड़ घर-गृहस्थी में लौट गया है।"

आवुस ! इन्द्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा को न जाननेवाले, और जो जागरणशील नहीं है उनका ऐसा ही होता है। आवुस ! ऐसा हो नहीं सकता कि इन्द्रियों में असंयत भोजन में मात्रा को न जाननेवाला, और अजागरणशील जीवन भर परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन करेगा।

आवुस ! जो इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा को जाननेवाला, और जागरणशील है वही जीवन भर परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करेगा।

आवुस ! इन्द्रियों में संयत कैसे होता है ? आवुस ! भिक्षु चक्षु से रूप को देख न उसमें मन ललचाता है और न उसमें स्वाद लेता है। जो असंयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करता है, उसमें लोभ, द्वेष और पापमय अकुशल धर्म पैठ जाते हैं। अतः उसके संवर के लिए प्रयत्नशील होता है। चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करता है। चक्षुइन्द्रिय को संयत कर लेता है।

श्रोत्र...मन...मन-इन्द्रिय को संयत कर लेता है।

आवुस ! इसी तरह इन्द्रियों में संयत होता है

आवुस ! कैसे भोजन में मात्रा का जाननेवाला होता है ? आवुस ! भिक्षु अच्छी तरह ख्याल से भोजन करता है—न द्रव के लिये, न मद के लिये, न ठाट-बाट के लिये, किन्तु केवल इस शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिये, जीवन निर्वाह के लिये, विहिंसा की उपरति के लिये, ब्रह्मचर्य के अनुग्रह के लिये। इस तरह, पुरानी वेदनाओं को कम करता हूँ, नई वेदनायें उत्पन्न नहीं करूँगा, मेरा जीवन कट जायगा, निर्दोष और सुख-पूर्वक विहार करूँगा।

आवुस ! इस तरह भोजन में मात्रा का जाननेवाला होता है।

आवुस ! कैसे जागरणशील होता है ? आवुस ! भिक्षु दिन में चंक्रमण कर और आसन लगा आवरण में डालनेवाले धर्मों से चित्त को शुद्ध करता है। रात्रि के प्रथम याम में चंक्रमण कर और आसन लगा आवरण में डालनेवाले धर्मों से चित्त को शुद्ध करता है। रात्रि के मध्यम याम में दाहिने करवट पैर पर पैर रख सिंहशय्या लगा स्मृतिमान्, संप्रज्ञ और उत्साहशील रहता है। रात्रि के पिछले याम में चंक्रमण कर और आसन लगा आवरण में डालनेवाले धर्मों से चित्त को शुद्ध करता है।

आवुस ! इस तरह जागरणशील होता है।

आवुस ! इसलिये, ऐसा सीखना चाहिये—इन्द्रियों में संयत रहूँगा, भोजन में मात्रा को जानूँगा, जागरणशील रहूँगा ?

आवुस ! ऐसा ही सीखना चाहिये।

§ ८. राहुल सुत्त (३४. ३. २. ८)

राहुल को अर्हत्व की प्राप्ति

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, एकान्त में शान्त बैठे हुये भगवान् के चित्त में यह वितर्क उठा—राहुल के विमुक्ति देने वाले धर्म पक चुके हैं, तो क्यों न मैं उसे उसके ऊपर आश्रवों के क्षय करने में लगाऊँ!

तब, भगवान् पूर्वाह्न में पहन और पात्र-चीवर ले भिक्षाटन के लिये श्रावस्ती में पैठे। भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद भगवान् ने राहुल को आमन्त्रित किया—राहुल! आसन ले लो, दिन के विहार के लिये जहाँ अन्धवन है वहाँ चलें।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् राहुल भगवान् को उत्तर दे, आसन ले भगवान् के पीछे पीछे हो लिये।

उस समय अनेक सहस्र देवता भी भगवान् के पीछे-पीछे लग गये—आज भगवान् आयुष्मान राहुल को ऊपरवाले आश्रवों के क्षय करने में लगावेंगे।

तब, भगवान् अन्धवन में पैठ, एक वृक्ष के नीचे बिछे आसन पर बैठ गये। आयुष्मान राहुल भी भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राहुल से भगवान् बोले—

राहुल! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य?

अनित्य भन्ते!

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख है?

दुःख भन्ते!

जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

नहीं भन्ते!

रूप···। चक्षुविज्ञान···। चक्षुसंस्पर्श···।·· वेदना···।

अनित्य भन्ते!

···जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना ठीक है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है?

नहीं भन्ते!

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

राहुल! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में भी निर्वेद करता है·· जाति क्षीण हुई··· जान लेता है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट हो आयुष्मान् राहुल ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया। इस धर्मोपदेश के कहे जाने पर आयुष्मान् राहुल का चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो गया। अनेक सहस्र देवताओं को रागरहित निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया—जो कुछ समुदयधर्मा (= उत्पन्न होने स्वभाववाला) है सभी निरोधधर्मा है।

§ ९. सञ्ञोजन सुत्त (३४. ३. २. ९)

संयोजन क्या है?

भिक्षुओ! संयोजनीय धर्म और संयोजन का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ! संयोजनीय धर्म कौन-से हैं और क्या है संयोजन?

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर,…हैं। भिक्षुओ ! इन्हीं को कहते हैं संयोजनीय धर्म, और जो उनके प्रति होनेवाले छन्दराग हैं वही वहाँ संयोजन है।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द…मनोविज्ञेय धर्म…।

§ १०. उपादान सुत्त (३४. ३. २. १०)

उपादान क्या है ?

भिक्षुओ ! उपादानीय धर्म और उपादान का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! उपादानीय धर्म कौन से हैं, और क्या है उपादान ?

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर…है। भिक्षुओ ! इन्हीं को कहते हैं उपादानीय धर्म। उनके प्रति होनेवाले जो छन्द राग है वह वहाँ उपादान है।…

लोककामगुण वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

गृहपति वर्ग

§ १. वेसालि सुत्त (३४. ३. ३. १)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

तब, वैशाली का रहनेवाला उग्र गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, उग्र गृहपति भगवान् से बोला—भन्ते ! क्या कारण है कि कितने लोग अपने देखते-ही-देखते परिनिर्वाण पा लेते हैं, और कितने लोग नहीं पाते हैं ?

गृहपति ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट सुन्दर··· है।··· गृहपति ! उपादान के साथ लगा हुआ भिक्षु परिनिर्वाण नहीं पाता है।

[सूत्र ३४. ३. २. ५. के समान ही]

§ २. वज्जि सुत्त (३४. ३. ३. २)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् वज्जियों के हस्ति-ग्राम में विहार करते थे।

तब हस्ति-ग्राम का उग्र-गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, उग्र गृहपति भगवान् से बोला—···

[ऊपरवाले सूत्र के समान ही]

§ ३. नालन्दा सुत्त (३४. ३. ३. ३)

इसी जन्म में निर्वाण प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् नालन्दा में पावारिक-आम्रवन में विहार करते थे।

तब, उपालि गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···।

एक ओर बैठ, उपालि गृहपति भगवान् से बोला, "भन्ते ! क्या कारण है···[ऊपर वाले सूत्र के समान ही]

§ ४. भरद्वाज सुत्त (३४. ३. ३. ४)

क्यों भिक्षु ब्रह्मचर्य का पालन कर पाते हैं ?

एक समय आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते थे।

तब, राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, राजा उदयन आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज से बोला, "भारद्वाज ! क्या कारण है

कि यह नई उम्र वाले भिक्षु कोमल, काले केश वाले, नई जवानी पाये, संसार के सुखों का बिना उपभोग किये आजीवन परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, और इस लम्बी राह पर आ जाते हैं।

महाराज ! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् ने कहा है—भिक्षुओ ! सुनो, तुम माता की उम्रवाली स्त्रियों के प्रति माता का भाव रक्खो, बहन की उम्रवाली स्त्रियों के प्रति बहन का भाव रक्खो, लड़की की उम्रवाली के प्रति लड़की का भाव रक्खो। महाराज ! यही कारण है कि यह नई उम्र वाले भिक्षु···।

भारद्वाज ! चित्त बड़ा चंचल है। कभी-कभी माता के समान वालियों पर भी मन चला जाता है, कभी कभी बहन के समानवालियों पर भी मन चला जाता है, कभी कभी लड़की के समानवालियों पर भी मन चला जाता है। भारद्वाज ! क्या कोई दूसरा कारण है कि यह नई उम्रवाले भिक्षु···?

महाराज ! उन सर्वज्ञ···भगवान् ने कहा है, "भिक्षुओ ! पैर के तलवे के ऊपर और शिरके केश के नीचे चाम से लपेटी हुई नाना प्रकार की गन्दगियों का ख्याल करो। इस शरीर में हैं—केश, लोम, नख, दन्त, त्वचा, मांस, धमनियाँ, हड्डी, हड्डी की मज्जा, वक्क, हृदय, यकृत्, हृदय की झिल्ली, तिल्ली, फैफड़ा, आँत, बड़ी आँत, पेट, मैला, पित्त, कफ, पीब, लहू, पसीना, चर्बी, आँसू, तेल, थूक, मेढ़ा, लस्सी, मूत्र। महाराज ! यह भी कारण है कि यह नई उम्रवाले भिक्षु···।

भारद्वाज ! जिन भिक्षु ने काया, शील, चित्त और प्रज्ञा की भावना कर ली है उनके लिये तो यह सुकर हो सकता है। भारद्वाज ! किन्तु, जिन भिक्षुओं ने ऐसी भावना नहीं कर ली है उनके लिये तो यह बड़ा दुष्कर है। भारद्वाज ! कभी-कभी अशुभ की भावना करते करते शुभ की भावना होने लगती है। भारद्वाज ! क्या कोई दूसरा कारण है जिससे यह नई उम्रवाले भिक्षु···?

महाराज ! सर्वज्ञ···भगवान् ने कहा है—भिक्षुओ ! तुम इन्द्रियों में संयत होकर विहार करो। चक्षु से रूप को देखकर मत ललच जाओ, मत उसमें स्वाद लेना चाहो। असंयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करनेवाले के चित्त में लोभ, द्वेष, दौर्मनस्य और पापमय अकुशल धर्म पैठ जाते हैं। इसके संवर के लिये यत्नशील बनो। चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करो।

श्रोत्र से शब्द सुन···मन से धर्मों को जान···।

महाराज ! यह भी कारण है कि नई उम्रवाले भिक्षु···।

भारद्वाज ! आश्चर्य है, अद्भुत है !! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् ने कितना अच्छा कहा है !!! भारद्वाज ! यही कारण है कि यह नई उम्रवाले भिक्षु, कोमल, काले केशवाले, नई जवानी पाये, संसार के सुखों का बिना उपभोग किये आजीवन परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, और इस लम्बी राह पर आ जाते हैं।

भारद्वाज ! मैं भी जिस समय अरक्षित शरीर, वचन और मन से, अनुपस्थित स्मृति से, तथा असंयत इन्द्रियों से अन्तःपुर में पैठता हूँ, उस समय मेरा मन लोभ से अत्यन्त चंचल बना रहता है। और, जिस समय मैं रक्षित शरीर, वचन और मन से, उपस्थित स्मृति से, तथा संयत इन्द्रियों से अन्तःपुर में पैठता हूँ, उस समय मेरा मन लोभ में नहीं पड़ता।

भारद्वाज ! ठीक कहा है, बहुत ठीक कहा है !! भारद्वाज ! जैसे उलटा को सीधा कर दे, ढँके को उघार दे, भटके को राह दिखा दे, अंधकार में तेलप्रदीप उठा दे कि चक्षुवाले रूप देख लें, उसी तरह आप भारद्वाज ने अनेक प्रकार से धर्म को समझाया है। भारद्वाज ! मैं भगवान् की शरण में जाता हूँ, धर्म की और भिक्षुसंघ की। भारद्वाज ! आज से आजन्म अपनी शरण आये मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ५. सोण सुत्त (३४. ३. ३. ५)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

तब, गृहपतिपुत्र सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···। एक ओर बैठ, गृहपतिपुत्र सोण भगवान् से बोला, भन्ते ! क्या कारण है कि कुछ लोग अपने देखते ही देखते परिनिर्वाण नहीं पा लेते हैं··· । [देखो सूत्र '३४. ३. २. ५']

§ ६. घोसित सुत्त (३४. ३. ३. ६)

धातुओं की विभिन्नता

एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते थे ।

तब, गृहपति घोषित जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया...।

एक ओर बैठ गृहपति घोषित आयुष्मान् आनन्द से बोला, 'भन्ते ! लोग धातुनानात्व, धातु-नानात्व' कहा करते हैं । भन्ते ! भगवान् ने धातुनानात्व कैसे बताया है ?'

गृहपति ! लुभावने चक्षु धातुरूप, चक्षु विज्ञान और सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुख की वेदना उत्पन्न होती है । गृहपति ! अप्रिय चक्षुधातुरूप, चक्षुविज्ञान और दुःखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःख की वेदना उत्पन्न होती है । गृहपति ! उपेक्षित चक्षुधातुरूप, चक्षुविज्ञान, और अदुःख-सुख वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से अदुःख-सुख वेदना उत्पन्न होती है ।

श्रोत्रधातु··· मनोधातु··· ।

गृहपति ! भगवान् ने धातुनानात्व को ऐसे ही समझाया है ।

§ ७. हलिद्दक सुत्त (३४. ३. ३. ७)

प्रतीत्य समुत्पाद

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती में कुररघर पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, गृहपति हालिद्दिकानि जहाँ आयुष्मान् महा-कात्यायन थे वहाँ आया···।

एक ओर बैठ, गृहपति हालिद्दिकानि आयुष्मान् महा-कात्यायन से बोला, "भन्ते ! भगवान् ने बताया है कि धातुनानात्व के प्रत्यय से स्पर्श-नानात्व उत्पन्न होता है । स्पर्शनानात्व के प्रत्यय से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है । भन्ते ! कैसे धातुनानात्व के प्रत्यय से स्पर्श-नानात्व, और स्पर्शनानात्व के प्रत्यय से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है ।

गृहपति ! भिक्षु चक्षु से प्रिय रूप को देख, यह सुखवेदनीय चक्षुविज्ञान है ऐसा जानता है । स्पर्श के प्रत्यय से सुखवाली वेदना उत्पन्न होती है । चक्षु से ही अप्रिय रूप को देख, यह दुःखवेदनीय चक्षुविज्ञान है ऐसा जानता है । दुःखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःखवाली वेदना उत्पन्न होती है । चक्षु से ही उपेक्षित रूप को देख, यह अःदुख-सुखवेदनीय चक्षुविज्ञान है ऐसा जानता है । अदुःख-सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से अदुःख-सुख वेदना उत्पन्न होती है ।

गृहपति ! श्रोत्र से शब्द सुन··· मन से धर्मों को जान···।

गृहपति ! इसी तरह, धातुनानात्व के प्रत्यय से स्पर्शनानात्व, और स्पर्शनानात्व के प्रत्यय से वेदना-नानात्व उत्पन्न होता है ।

§ ८. नकुलपिता सुत्त (३४. ३. ३. ८.)

इसी जन्म में निर्वाण-प्राप्ति का कारण

एक समय भगवान् भर्ग में सुंसुमारगिर में भेसकलावन मृगदाव में विहार करते थे ।

तब, गृहपति नकुलपिता जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···। एक ओर बैठ, गृहपति नकुलपिता भगवान् से बोला, "भन्ते !" क्या कारण है···[देखो सूत्र '३४.३.२.५']

§ ९. लोहिच्च सुत्त (३४. ३. ३. ९)

प्राचीन और नवीन ब्राह्मणों की तुलना, इन्द्रिय-संयम

एक समय आयुष्मान् महा-कात्यायन अवन्ती में मक्करकट आरण्य में कुटी लगाकर विहार करते थे।

तब, लोहिच्च ब्राह्मण के कुछ शिष्य लकड़ी चुनते हुये उस आरण्य में जहाँ आयुष्मान् महा-कात्यायन की कुटी थी वहाँ पहुँचे। आकर, कुटी के चारों ओर ऊधम मचाने लगे, जोर जोर से हल्ला करने लगे, और आपस में धर-पकड़ की खेल खेलने लगे—ये मथमुण्डे नकली साधु बुरे, कुरूप, ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुये, इन बुरे लोगों से सत्कृत, गुरुकृत, सम्मानित और पूजित हैं।

तब, आयुष्मान् महाकात्यायन विहार से निकल, उन लड़कों से बोले—लड़के! हल्ला मत करो, मैं तुम्हें धर्म बताता हूँ।

ऐसा कहने पर वे लड़के चुप हो गये।

तब, आयुष्मान् महा-कात्यायन उन लड़कों से गाथा में बोले—

बहुत पहले के ब्राह्मण अच्छे शीलवाले थे,
जो अपने पुराने धर्म का स्मरण रखते थे,
उनकी इन्द्रियाँ संयत और सुरक्षित थीं,
उन लोगोंने अपने क्रोध को जीत लिया था ॥१॥
धर्म और ध्यान में वे रत रहते थे,
वे ब्राह्मण पुराने धर्म का स्मरण रखते थे,
यह उन सत्कर्मों को छोड़, गोत्र का रट लगाते हैं,
[शरीर, वचन, मनसे] उलटा पुलटा आचरण करते हैं ॥२॥
गुस्से से चूर, घमण्ड से बिल्कुल ऐंठे,
स्थावर और जंगम को सताते,
असंयत फिजूल के होते हैं,
स्वप्न में पाये धनके समान ॥३॥
उपवास करने वाले, कड़ी जमीन पर सोने वाले,
प्रातः काल में स्नान, और तीन वेद,
रूखड़े अजिन, जटा और भस्म,
मन्त्र, शीलव्रत, और तपस्या ॥४॥
ढोंगी, और टेढ़ा दण्ड,
और जल का आचमन लेना,
ब्राह्मणों के यही सामान हैं,
जोड़ने बटोरने के जाल फैलाये हैं ॥५॥
और सुसमाहित चित्त,
बिल्कुल प्रसन्न और निर्मल,
सभी जीवों पर प्रेम रखना,
यही ब्राह्मण की प्राप्ति का मार्ग ॥६॥

तब, वे लड़के क्रुद्ध और असंतुष्ट हो जहाँ लोहिच्च ब्राह्मण था वहाँ गये। जाकर लोहिच्च ब्राह्मण से बोले—हे! आप जानते हैं, श्रमण महा-कात्यायन ब्राह्मणों के वेद को बिल्कुल नीचा दिखा कर तिरस्कार कर रहा है।

इस पर, लोहिच्च ब्राह्मण बड़ा क्रुद्ध और असंतुष्ट हुआ।

तब, लोहिच्च ब्राह्मण के मनमें यह हुआ— लड़कों की बात को केवल सुनकर मुझे श्रमण महा-कात्यायन को कुछ ऊँचा नीचा कहना उचित नहीं। तो, मैं स्वयं चलकर उनसे पूछूँ।

तब, लोहिच्च ब्राह्मण उन लड़कों के साथ जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे वहाँ गया। जाकर, कुशल-प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, लोहिच्च ब्राह्मण आयुष्मान् महा-कात्यायन से बोला—हे कात्यायन! क्या मेरे कुछ शिष्य लकड़ी चुनने इधर आये थे?

हाँ ब्राह्मण! आये थे।

हे कात्यायन! क्या आपको उन लड़कों से कुछ बातचीत भी हुई थी?

हाँ ब्राह्मण! मुझे उन लड़कों से कुछ बातचीत भी हुई थी।

हे कात्यायन! आपको उन लड़कों से क्या बातचीत हुई थी?

हे ब्राह्मण! मुझे उन लड़कों से यह बातचीत हुई थीः—

बहुत पहले के ब्राह्मण अच्छे शीलवाले थे···

[ऊपर जैसा ही]

यही ब्राह्मण की प्राप्ति का मार्ग है ॥६॥

हे कात्यायन! आपने जो 'इन्द्रियों में (=द्वारों में) असंयत' कहा है, सो 'इन्द्रियों में असंयत' कैसे होता है?

ब्राह्मण! कोई चक्षु से रूप को देख प्रिय रूपों के प्रति मूर्छित हो जाता है। अप्रिय रूपों के प्रति चिढ़ जाता है। अनुपस्थित स्मृति से क्लेशयुक्त चित्तवाला होकर विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति या प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जानता है। इससे, उसके उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध नहीं होते हैं।

श्रोत्र से शब्द सुन,···मन से धर्मों को जान···।

ब्राह्मण! इसी तरह 'इन्द्रियों में असंयत' होता है।

कात्यायन! आश्चर्य है, अद्भुत है!! आपने 'इन्द्रियों में असंयत' जैसा होता है ठीक बताया। कात्यायन! आपने 'इन्द्रियों में संयत' कहा है, सो 'इन्द्रियों में संयत' कैसे होता है?

ब्राह्मण! कोई चक्षु से रूप को देख प्रिय रूपों के प्रति मूर्छित नहीं होता है। अप्रिय रूपों के प्रति चिढ़ नहीं जाता है। उपस्थित स्मृति से उदार चित्तवाला होकर विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। इससे, उसके उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं।

श्रोत्र से शब्द सुन···मन से धर्मों को जान···।

ब्राह्मण! इसी तरह इन्द्रियों में संयत होता है।

हे कात्यायन! आश्चर्य है, अद्भुत है!! आपने 'इन्द्रियों में संयत' जैसा होता है ठीक बताया।

कात्यायन! ठीक कहा है, बहुत ठीक कहा है!! कात्यायन! जैसे उलटा को सीधा कर दे···। कात्यायन! आज से आजन्म अपनी शरण आये मुझे स्वीकार करें।

कात्यायन! जैसे आप मक्करकट में अपने उपासकों के घर पर जाते हैं वैसे ही लोहिच्च ब्राह्मण के घर पर भी आया करें। वहाँ जो लड़के-लड़कियाँ हैं सो आपको प्रणाम् करेंगी, आपकी सेवा करेंगी, आसन या जल ला देंगी। उनका यह चिरकाल तक हित और सुख के लिये होगा।

§ १०. वेरहच्चानि सुत्त (३४. ३. ३. १०)

धर्म का सत्कार

एक समय आयुष्मान् उदायी कामण्डा में तोदेय्य ब्राह्मण के आश्रम में विहार करते थे।

तब, वेरहच्चानि गोत्र की ब्राह्मणी का शिष्य जहाँ आयुष्मान् उदायी थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे उस लड़के को आयुष्मान् उदायी ने धर्मोपदेश कर दिखा दिया, बता दिया, उत्साहित कर दिया और प्रसन्न कर दिया।

तब वह लड़का आसन से उठ जहाँ वेरहच्चानि-गोत्रकी ब्राह्मणी थी वहाँ आया और बोला:—हे! आप जानती हैं, श्रमण उदायी धर्म का उपदेश करते हैं—आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण, श्रेष्ठ, बिल्कुल पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को बता रहे हैं।

लड़के! तो, तुम मेरी ओर से कल के लिये श्रमण उदायी को भोजन का निमन्त्रण दे आओ।

'बहुत अच्छा!' कह वह लड़का···ब्राह्मणी को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् उदायी थे वहाँ गया और बोला—भन्ते! कल के लिये मेरी आचार्याणी का निमन्त्रण कृपया स्वीकार करें।

आयुष्मान् उदायी ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब, दूसरे दिन आयुष्मान् उदायी पूर्वाह्न समय पहन, और पात्र-चीवर ले जहाँ···ब्राह्मणी का घर था वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठ गये।

तब,···ब्राह्मणी ने अपने हाथ से अच्छे-अच्छे भोजन परोस कर उदायी को खिलाया।

तब, आयुष्मान् उदायी के भोजन कर लेने और पात्र से हाथ फेर लेने पर,···ब्राह्मणी पीढ़े से एक ऊँचे आसन पर चढ़ बैठी और शिर ढँक कर आयुष्मान् उदायी से बोली—श्रमण! धर्म कहो।

"बहिन! जब समय होगा तब" कह, आयुष्मान् उदायी आसन से उठ कर चले गये।

···दूसरी बार भी लड़का ब्राह्मणी से बोला, "हे! जानती हैं, श्रमण उदायी धर्म का उपदेश कर रहे हैं···।"

लड़के! तुम तो श्रमण उदायी की इतनी प्रशंसा कर रहे हो, किंतु "श्रमण धर्म कहो" कहे जाने पर वे "बहिन! जब समय होगा तब" कह, उठकर चले गये।

आप ऊँचे आसन पर चढ़ बैठीं और शिर ढँक कर बोलीं—श्रमण धर्म कहो। धर्म का मान-सत्कार करना चाहिये।

लड़के! तब, तुम मेरी ओर से कल के लिये श्रमण उदायी को भोजन का निमन्त्रण दे आओ।

तब, आयुष्मान् उदायी के भोजन कर लेने और पात्र से हाथ फेर लेने पर···ब्राह्मणी पीढ़े से एक नीच आसन पर बैठ, शिर खोलकर आयुष्मान् उदायी से बोली:—भन्ते! किसके होने से अर्हत् लोग सुख-दुःख का होना बताते हैं, और किसके नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बताते हैं?

बहिन! चक्षु के होने से अर्हत् लोग सुख-दुःख का होना बताते हैं, और चक्षु के नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बताते हैं।

श्रोत्रके होने से···मन के होने से···।

इस पर, ब्राह्मणी आयुष्यमान् उदायी से बोली—भन्ते! ठीक कहा है, जैसे उलटा को सीधा कर दे···बुद्ध की शरण···।

गृहपति वर्ग समाप्त

चौथा भाग

देवदह वर्ग

§ १. देवदहखण सुत्त (३४. ३. ४. १)

अप्रमाद के साथ विहरना

एक समय भगवान् शाक्यों के देवदह नामक कस्बे में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित कियाः—भिक्षुओ ! मैं सभी भिक्षुओं को छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद से रहने को नहीं कहता, और न मैं सभी भिक्षुओं को छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद से नहीं रहने को कहता।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु अर्हत् हो चुके हैं—क्षीणाश्रव, जिनका ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है, कृतकृत्य, जिनने भार को उतार दिया है, जिनने परमार्थ पा लिया है, जिनके भवसंयोजन क्षीण हो चुके हैं, जो पूर्ण ज्ञान से विमुक्त हो चुके हैं—उन्हें मैं छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद से रहने को नहीं कहता। सो क्यों ? अप्रमाद को तो उन्होंने जीत लिया है, वे अब प्रमाद नहीं कर सकते।

भिक्षुओ ! जो शैक्ष्य भिक्षु हैं, जिनने अपने पर पूरी विजय नहीं पायी है, जो अनुत्तर योगक्षेम की खोज में (=निर्वाण की खोज में) विहार कर रहे हैं, उन्हीं को मैं छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद से रहने को कहता हूँ।

श्रोत्रविज्ञेय शब्द…मनोविज्ञेय धर्म…।

भिक्षुओ ! अप्रमाद के इसी फल को देख, मैं उन भिक्षुओं को छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद से रहने को कहता हूँ।

§ २. संगह्य सुत्त (३४. ३. ४. २)

भिक्षु-जीवन की प्रशंसा

भिक्षुओ ! तुम्हें लाभ हुआ, बड़ा लाभ हुआ, कि ब्रह्मचर्यवास का अवकाश मिला।

भिक्षुओ ! हमने छः स्पर्शायतनिक नाम के नरक देखे हैं। वहाँ चक्षु से जो रूप देखता है सभी अनित्य रूप ही देखता है, इष्ट रूप नहीं। असुन्दर ही देखता है, सुन्दर नहीं। अप्रिय रूप ही देखता है प्रिय रूप नहीं।

वहाँ श्रोत्र से जो शब्द सुनता है…मनसे जो धर्म जानता है…।

भिक्षुओ ! तुम्हें लाभ हुआ, बड़ा लाभ हुआ, कि ब्रह्मचर्यवास का अवकाश मिला।

भिक्षुओ ! हमने छः स्पर्शायतनिक नाम के स्वर्ग देखे हैं। वहाँ चक्षु से जो रूप देखता है सभी इष्टरूप ही देखता है, अनिष्ट रूप नहीं। सुन्दर रूप ही देखता है, असुन्दर रूप नहीं। प्रिय रूप ही देखता है, अप्रिय रूप नहीं।

वहाँ श्रोत्र से जो शब्द सुनता है …।…मनसे जो धर्म जानता है इष्ट धर्म ही जानता है, अनिष्ट धर्म नहीं।

भिक्षुओ ! तुम्हें लाभ हुआ, बड़ा लाभ हुआ कि ब्रह्मचर्यवास का अवकाश मिला।

§ ३. अगह्य सुत्त (३४. ३. ४. ३)

समझ का फेर

भिक्षुओ ! देवता और मनुष्य रूप चाहनेवाले, और रूपसे प्रसन्न रहनेवाले हैं। भिक्षुओ ! रूपों के बदलने और नष्ट होने से देवता और मनुष्य दुःखपूर्वक विहार करते हैं। शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध रूप के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थ जान रूपचाहने वाले नहीं होते हैं, रूप में रत नहीं होते हैं, रूप से प्रसन्न रहने वाले नहीं होते हैं। रूपके बदलने और नष्ट होने से बुद्ध सुख-पूर्वक विहार करते हैं। शब्द के समुदय···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भगवान् ने यह कहा। यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले :—

रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और सभी धर्म,
जब तक वैसे अभीष्ट, सुन्दर और लुभावने कहे जाते हैं, ॥१॥
सो देवताओं के साथ सारे संसार का सुख समझा जाता है,
जहाँ वे निरुद्ध हो जाते हैं उसे वे दुःख समझते हैं ॥२॥
किंतु, पण्डित लोग तो सत्काय के निरोध को सुख समझते हैं,
संसार की समझ से उनकी समझ कुछ उलटी होती है ॥३॥
जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, उसे पण्डित लोग दुःख कहते हैं,
जिसे दूसरे लोग दुःख कहते हैं, उसे पण्डित लोग सुख कहते हैं ॥४॥
दुर्ज्ञेय धर्म को देखो, मूढ़ अविद्वानों में,
क्लेशावरण में पड़े अज्ञ लोगों को यह अन्धकार होता है ॥५॥
ज्ञानी सन्तों को यह खुला प्रकाश होता है,
धर्म न जानने वाले पास रहते हुये भी नहीं समझते हैं ॥६॥
भवराग में लीन, भवश्रोत में बहते,
मार के वश में पड़े, धर्म को ठीक ठीक नहीं जान सकते ॥७॥
पण्डितों को छोड़, भला कौन सम्बुद्ध-पद का योग्य हो सकता है !
जिस पद को ठीक से जान, अनाश्रव निर्वाण पा लेते हैं ॥८॥
······रूप के बदलने और नष्ट होने से बुद्ध सुखपूर्वक विहार करते हैं।

§ ४. पठम पलासी सुत्त (३४. ३. ४. ४)

अपनत्व-रहित का त्याग

भिक्षुओ ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ दो। उसे छोड़ देना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा। भिक्षुओ ! तुम्हारा क्या नहीं है ?

भिक्षुओ ! चक्षु तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो। उसे छोड़ देना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा। श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! जैसे यदि इस जेतवन के तृण-काष्ठ-शाखा-पलास को लोग चाहे ले जायँ, जला दें या जो इच्छा करें, तो क्या तुम्हारे मन में ऐसा होगा—ये हमें ले जा रहे हैं, या जला रहे हैं, या जो इच्छा कर रहे हैं

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! क्योंकि यह न तो मेरा आत्मा है न अपना है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, चक्षु तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो। उसे छोड़ देना तुम्हारे हित और सुख के लिये होगा। श्रोत्र…मन…।

§ ५. दुतिय पलासी सुत्त (३४. ३. ४. ५)

अपनत्व-रहित का त्याग

[ऊपर जैसा ही]

§ ६. पठम अज्झत्त सुत्त (३४. ३. ४. ६)

अनित्य

भिक्षुओ ! चक्षु अनित्य है। चक्षु की उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है वह भी अनित्य है। भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होने वाला चक्षु कहाँ से नित्य होगा ?

श्रोत्र…।…मन अनित्य है। मन की उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है वह भी अनित्य है।

भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होने वाला मन कहाँ से नित्य होगा ?

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ७. दुतिय अज्झत्त सुत्त (३४. ३. ४. ७)

दुःख

भिक्षुओ ! चक्षु दुःख है। चक्षु की उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है वह भी दुःख है। भिक्षुओ ! दुःख से उत्पन्न होनेवाला चक्षु कहाँ से सुख होगा ?

श्रोत्र…।…मन…दुःख से उत्पन्न होनेवाला मन कहाँ से सुख होगा ?

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ८. ततिय अज्झत्त सुत्त (३४. ३. ४. ८)

अनात्म

भिक्षुओ ! चक्षु अनात्म है। चक्षु की उत्पत्ति का जो हेतु=प्रत्यय है वह भी अनात्म है। भिक्षुओ ! अनात्म से उत्पन्न होनेवाला चक्षु कहाँ से आत्मा होगा ?

श्रोत्र…मन…।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

§ ९-११. पठम-दुतिय-ततिय बाहिर सुत्त (३४. ३. ४. ९-११)

अनित्य, दुःख, अनात्म

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है। रूप की उत्पत्ति का जो हेतु…प्रत्यय है वह भी अनित्य है। भिक्षुओ ! अनित्य से उत्पन्न होनेवाला रूप कहाँ से नित्य होगा ?

शब्द…। गन्ध…। रस…। स्पर्श…। धर्म…।

भिक्षुओ ! रूप दुःख है…।

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है…।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक…जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

देवदह वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

नवपुराण वर्ग

§ १. कम्म सुत्त (३४. ३. ५. १)

नया और पुराना कर्म

भिक्षुओ ! नये-पुराने कर्म, कर्म निरोध, और कर्म निरोधगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! पुराने कर्म क्या हैं ? भिक्षुओ ! चक्षु पुराना कर्म है (=पुराने कर्म से उत्पन्न), अभिसंस्कृत (=कारण से पैदा हुआ), अभिसञ्चेतयित (=चेतना से पैदा हुआ), और वेदना का अनुभव करने वाला। श्रोत्र…मन…। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं 'पुराना कर्म'।

भिक्षुओ ! नया कर्म क्या है ? भिक्षुओ ! जो इस समय मन, वचन या शरीर से करता है वह नया कर्म कहलाता है

भिक्षुओ ! कर्मनिरोध क्या है ? भिक्षुओ ! जो शरीर, वचन और मन से किये गये कर्मों के निरोध से विमुक्ति का अनुभव करता है, वह कर्मनिरोध कहा जाता है।

भिक्षुओ ! कर्मनिरोधगामी मार्ग क्या है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग—जो, (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कर्म-निरोधगामी मार्ग।

भिक्षुओ ! इस तरह, मैंने पुराने कर्म का उपदेश दे दिया, नये कर्म का उपदेश दे दिया, कर्मनिरोध का उपदेश दे दिया, कर्म-निरोधगामी मार्ग का उपदेश दे दिया।

भिक्षुओ ! जो एक हितैषी दयालु शास्ता (=गुरु) को अपने श्रावकों के प्रति कृपा करके करना चाहिये मैंने तुम्हें कर दिया।

भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्यागार हैं। भिक्षुओ ! ध्यान लगाओ। मत प्रमाद करो। पीछे पश्चात्ताप नहीं करना। तुम्हारे लिये मेरा यही उपदेश है।

§ २. पठम सप्पाय सुत्त (३४. ३. ५. २)

निर्वाण-साधक मार्ग

भिक्षुओ ! मैं तुम्हें निर्वाण के साधक मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! निर्वाण का साधक मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु देखता है कि चक्षु अनित्य है, रूप अनित्य हैं, चक्षु-विज्ञान अनित्य है, चक्षुसंस्पर्श अनित्य है, और जो चक्षु-संस्पर्श के प्रत्यय से सुख, दुःख या अदुःख-सुख वेदना उत्पन्न होती है वह भी अनित्य है।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। म[illegible]।

भिक्षुओ ! निर्वाण-साधन का यही मार्ग [illegible]

§ ३–४. दुतिय-ततिय सप्पाय सुत्त (३४. ३. ५. ३–४)

निर्वाण-साधक मार्ग

…भिक्षुओ ! भिक्षु देखता है कि चक्षु दुःख है…[ऊपर जैसा]

…भिक्षुओ ! भिक्षु देखता है कि चक्षु अनात्म है…।

भिक्षुओ ! निर्वाण-साधन का यही मार्ग है।

§ ५. चतुत्थ सप्पाय सुत्त (३४. ३. ५. ५)

निर्वाण-साधक मार्ग

भिक्षुओ ! निर्वाण-साधन के मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! निर्वाण-साधन का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! क्या समझते हो, चक्षु नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख, और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना चाहिये—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

रूप नित्य है या अनित्य है ?…

चक्षुविज्ञान…। चक्षुसंस्पर्श…।…वेदना…।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक… जाति क्षीण हुई…जान लेता है।

भिक्षुओ ! निवार्ण-साधन का यही मार्ग है।

§ ६. अन्तेवासी सुत्त (३४. ३. ५. ६)

बिना अन्तेवासी और आचार्य के विहरना

भिक्षुओ ! बिना अन्तेवासी[1] और बिना आचार्य के[2] ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।

भिक्षुओ ! अन्तेवासी और आचार्य वाला भिक्षु दुःख से विहार करता है, सुख से नहीं। भिक्षुओ ! बिना अन्तेवासी और आचार्य का भिक्षु सुख से विहार करता है।

भिक्षुओ ! अन्तेवासी और आचार्यवाला भिक्षु कैसे दुःख से विहार करता है, सुख से नहीं ?

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख, भिक्षु को पापमय, चञ्चल संकल्प वाले, संयोजन में डालने वाले अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। यह अकुशल धर्म उसके अन्तःकरण में बसते हैं, इसलिये वह अन्तेवासी वाला कहा जाता है। वे पापमय अकुशल धर्म उसके साथ समुदाचरण करते हैं, इसलिये वह आचार्य वाला कहा जाता है।

श्रोत्र से शब्द सुन…मन से धर्मों को जान…।

भिक्षुओ ! इस तरह, अन्तेवासी और आचार्यवाला भिक्षु दुःख से विहार करता है, सुख से नहीं।

भिक्षुओ ! बिना अन्तेवासी और आचार्यवाला भिक्षु कैसे सुख से विहार करता है ?

---

१. अन्तेवासी = (साधारणार्थ) शिष्य। "अन्तःकरण में रहने वाला क्लेश" —अट्ठकथा।

२. आचार्य = "आचरण करने वाला क्लेश" —अट्ठकथा।

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख, भिक्षु को पापमय ···अकुशल धर्म नहीं उत्पन्न होते हैं। यह अकुशल धर्म उसके अन्तःकरण में नहीं बसते हैं, इसलिये वह 'बिना-अन्तेवासी वाला' कहा जाता है। वे पापमय अकुशल धर्म उसके साथ समुदाचरण नहीं करते हैं, इसलिये वह 'बिना आचार्यवाला' कहा जाता है।

श्रोत्र से शब्द सुन···मन से धर्मों को जान···।

भिक्षुओ ! इस तरह, बिना अन्तेवासी और आचार्यवाला भिक्षु सुख से विहार करता है।···

§ ७. किमत्थिय सुत्त (३४. ३. ५. ७)

दुःख विनाश के लिए ब्रह्मचर्य-पालन

भिक्षुओ ! यदि तुम्हें दूसरे मतवाले साधु पूछें—आवुस ! किस अभिप्राय से श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य पालन करते हैं—तो तुम्हें उसका इस तरह उत्तर देना चाहिये :—

आवुस ! दुःख की परिज्ञा के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है।

भिक्षुओ ! यदि तुम्हें दूसरे मत वाले साधु पूछें—आवुस ! वह कौन सा दुःख है जिसकी परिज्ञा के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है—तो तुम्हें उसका इस तरह उत्तर देना चाहिये :—

आवुस ! चक्षु दुःख है, उसकी परिज्ञा के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है। रूप दुःख है···। चक्षुविज्ञान···।
चक्षुर्संस्पर्श···।···वेदना···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

आवुस ! यही दुःख है जिसकी परिज्ञा के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है।

भिक्षुओ ! दूसरे मतवाले साधु से पूछे जाने पर तुम ऐसा ही उत्तर देना।

§ ८. अत्थि नु खो परियाय सुत्त (३४. ३. ५. ८)

आत्म-ज्ञान-कथन के कारण

भिक्षुओ ! क्या कोई ऐसा कारण है जिससे भिक्षु बिना श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आकारपरिवितर्क और दृष्टिनिध्यान क्षान्ति के परम ज्ञान से ऐसा कहे—जाति क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया···?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

हाँ भिक्षुओ ! ऐसा कारण है जिससे भिक्षु बिना श्रद्धा के···जाति क्षीण हो गई···जान लेता है।

भिक्षुओ ! वह कारण क्या है ?

भिक्षुओ ! चक्षु से रूप देख यदि अपने भीतर राग-द्वेष-मोह होवे तो भिक्षु जानता है कि मेरे भीतर राग-द्वेष-मोह हैं। यदि अपने भीतर राग···नहीं हो तो भिक्षु जानता है कि मेरे भीतर राग··· नहीं हैं।

भिक्षुओ ! ऐसी अवस्था में क्या वह भिक्षु श्रद्धा से, या रुचि से···धर्मों को जानता है ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! क्या यह धर्म प्रज्ञा से देख कर जाने जाते हैं ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! यही कारण है जिससे भिक्षु बिना श्रद्धा, रुचि···के परम ज्ञान से ऐसा कहता है—जाति क्षीण हो गई···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।······

§ ९. इन्द्रिय सुत्त (३४. ३. ५. ९)

इन्द्रिय सम्पन्न कौन ?

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'इन्द्रियसम्पन्न, इन्द्रियसम्पन्न' कहा करते हैं। भन्ते ! इन्द्रियसम्पन्न कैसे होता है ?

भिक्षु ! चक्षु-इन्द्रिय में उत्पत्ति और विनाश का देखने वाला चक्षु-इन्द्रिय में निर्वेद करता है। श्रोत्र···। घ्राण···।

निर्वेद करने से रागरहित होता है। रागरहित होने से विमुक्त हो जाता है।···जाति क्षीण हुई···—जान लेता है।

भिक्षु ! ऐसे ही इन्द्रियसम्पन्न होता है।

§ १०. कथिक सुत्त (३४. ३. ५. १०)

धर्मकथिक कौन ?

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, 'भन्ते ! लोग 'धर्मकथिक, धर्मकथिक' कहते हैं। भन्ते ! धर्मकथिक कैसे होता है ?

भिक्षु ! यदि चक्षु के निर्वेद, वैराग्य और निरोध के लिये धर्म का उपदेश करता है। तो इतने से वह धर्मकथिक कहा जा सकता है। यदि चक्षु के निर्वेद, वैराग्य और निरोध के लिये यत्नशील हो, तो इतने से वह धर्मानुधर्मप्रतिपन्न कहा जा सकता है। यदि चक्षु के निर्वेद, वैराग्य और निरोध से उपादानरहित बन विमुक्त हो गया हो तो कहा जा सकता है कि इसने अपने देखते ही देखते निर्वाण पा लिया है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

नवपुराण वर्ग समाप्त

तृतीय पण्णासक समाप्त।

चतुर्थ पण्णासक

पहला भाग

तृष्णा-क्षय वर्ग

§ १. पठम नन्दिक्खय सुत्त (३४. ४. १. १)

सम्यक् दृष्टि

भिक्षुओ ! जो अनित्य चक्षु को अनित्य के तौर पर देखता है, वही सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि होने से निर्वेद करता है। तृष्णा के क्षय से राग का क्षय होता है, राग का क्षय होने से तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा और राग के क्षय होने से चित्त विमुक्त हो गया—ऐसा कहा जाता है।

श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

§ २. दुतिय नन्दिक्खय सुत्त (३४. ४. १. २)

सम्यक् दृष्टि

[ऊपर जैसा ही]

§ ३. ततिय नन्दिक्खय सुत्त (३४. ४. १. ३)

चक्षु का चिन्तन

भिक्षुओ ! चक्षु का ठीक से चिन्तन करो। चक्षु की अनित्यता को यथार्थ रूप में देखो। भिक्षुओ ! इस तरह, भिक्षु चक्षु में निर्वेद करता है। तृष्णा के क्षय से राग का क्षय होता है… [शेष ऊपर जैसा ही]।

§ ४. चतुत्थ नन्दिक्खय सुत्त (३४. ४. १. ४)

रूप-चिन्तन से मुक्ति

भिक्षुओ ! रूप का ठीक से चिन्तन करो। रूप की अनित्यता को यथार्थ रूप में देखो। भिक्षुओ ! इस तरह, भिक्षु रूप में निर्वेद करता है। तृष्णा के क्षय से राग का क्षय होता है, राग के क्षय से तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा और राग के क्षय होने से चित्त विमुक्त हो गया—ऐसा कहा जाता है।

शब्द…। गन्ध…। रस…। स्पर्श…। धर्म…।

§ ५. पठम जीवकम्बवन सुत्त (३४. ४. १. ५)

समाधि-भावना करो

एक समय भगवान् राजगृह में जीवक के आम्रवन में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया…—भिक्षुओ ! समाधि की भावना करो। भिक्षुओ ! समाहित भिक्षु को यथार्थ-ज्ञान हो जाता है। किसका यथार्थ-ज्ञान हो जाता है ?

चक्षु अनित्य है—इसका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। रूप अनित्य हैं—इसका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। चक्षु विज्ञान···। चक्षु संस्पर्श···।···वेदना···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! समाधि की भावना करो। भिक्षुओ ! समाहित भिक्षु को यथार्थ-ज्ञान हो जाता है।

§ ६. दुतिय जीवकम्बवन सुत्त (३४. ४. १. ६)

एकान्त-चिन्तन

भिक्षुओ ! एकान्त चिन्तन में लग जाओ। भिक्षुओ ! एकान्त चिन्तन में रत भिक्षु को यथार्थ ज्ञान हो जाता है। किसका यथार्थ-ज्ञान हो जाता है ?

चक्षु अनित्य···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! एकान्त चिन्तन, में लग जाओ।

§ ७. पठम कोट्ठित सुत्त (३४. ४. १. ७)

अनित्य से इच्छा का त्याग

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् महाकोट्ठित भगवान् से बोले—भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करें···।

कोट्ठित ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी इच्छा को हटाओ। कोट्ठित ! क्या अनित्य है ?

कोट्ठित ! चक्षु अनित्य है, उसके प्रति अपनी इच्छा को हटाओ। रूप···चक्षुविज्ञान···। चक्षु-संस्पर्श···। वेदना···।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

कोट्ठित ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी इच्छा को हटाओ।

§ ८–९. दुतिय-ततिय कोट्ठित सुत्त (३४. ४. १. ८–९)

दुःख से इच्छा का त्याग

···कोट्ठित ! जो दुःख है उसके प्रति अपनी इच्छा को हटाओ॥

···कोट्ठित ! जो अनात्म है उसके प्रति अपनी इच्छा को हटाओ॥

§ १०. मिच्छादिट्ठि सुत्त (३४. ४. १. १०)

मिथ्यादृष्टि का प्रहाण कैसे ?

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला। "भन्ते ! क्या जान और देखकर मिथ्यादृष्टि प्रहीण होती है ?

भिक्षु ! चक्षु को अनित्य जान और देखकर मिथ्यादृष्टि प्रहीण होती है। रूप···। चक्षु-विज्ञान···। चक्षुसंस्पर्श···।···वेदना···। श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान और देखकर मिथ्यादृष्टि प्रहीण होती है।

§ ११. सक्काय सुत्त (३४. ४. १. ११)

सत्कायदृष्टि का प्रहाण कैसे ?

···भन्ते ! क्या जान और देखकर सत्कायदृष्टि प्रहीण होती है ?

भिक्षु ! चक्षु को दुःखवाला जान और देखकर सत्कायदृष्टि प्रहीण होती है। रूप···। चक्षु-विज्ञान···। चक्षु-संस्पर्श···।···वेदना···। श्रोत्र···मन···।

भिक्षु ! इसे जान और देखकर सत्कायदृष्टि प्रहीण होती है।

§ १२. अत्त सुत्त (३४. ४. १. १२)

आत्मदृष्टि का प्रहाण कैसे ?

···भन्ते ! क्या जान और देखकर आत्मानुदृष्टि प्रहीण होती है ?

भिक्षु ! चक्षु को अनात्म जान और देखकर आत्मानुदृष्टि प्रहीण होती है। रूप···। चक्षु-विज्ञान ··। चक्षुसंस्पर्श···।···वेदना···। श्रोत्र···मन···।

भिक्षु ! इसे जान और देखकर आत्मानुदृष्टि प्रहीण होती है।

नन्दिक्षय वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

सट्ठि पेय्याल

§ १. पठम छन्द सुत्त (३४. ४. २. १)

इच्छा को दबाना

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। भिक्षुओ ! क्या अनित्य है ?

भिक्षुओ ! चक्षु अनित्य है, उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

§ २-३. दुतिय-ततिय छन्द सुत्त (३४. ४. २. २-३)

राग को दबाना

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उसके प्रति अपने राग को दबाओ…।

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उसके प्रति अपने छन्द-राग को दबाओ…।

§ ४–६. छन्द सुत्त (३४. ४. २. ४–६)

इच्छा को दबाना

भिक्षुओ ! जो दुःख है उसके प्रति अपनी इच्छा (छन्द) को दबाओ…।

भिक्षुओ ! जो दुःख है उसके प्रति अपने राग को दबाओ…।

भिक्षुओ ! जो दुःख है उसके प्रति अपने छन्दराग को दबाओ…।

चक्षु…। श्रोत्र…। घ्राण…। जिह्वा…। काया…। मन…।

§ ७–९. छन्द सुत्त (३४. ४. २. ७–९)

इच्छा को दबाना

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। राग को दबाओ। छन्दराग को दबाओ।

भिक्षुओ ! क्या अनित्य है !

भिक्षुओ ! रूप अनित्य हैं…। शब्द अनित्य हैं…। गन्ध…। रस…। स्पर्श…। धर्म…।

§ १०–१२. छन्द सुत्त (३४. ४. २. १०–१२)

भिक्षुओ ! जो अनित्य है उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। राग को दबाओ। छन्दराग को दबाओ।

भिक्षुओ ! क्या अनित्य है ?

भिक्षुओ ! रूप अनित्य है…। शब्द अनित्य है…। गन्ध…। रस…। स्पर्श…। धर्म…।

§ १३–१५. छन्द सुत्त (३४. ४. २. १३–१५)

इच्छा को दबाना

भिक्षुओ ! जो दुःख है उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। राग को दबाओ। छन्दराग को दबाओ।

भिक्षुओ ! क्या दुःख है ?

भिक्षुओ ! रूप दुःख है…। शब्द…। गन्ध…। रस…। स्पर्श…। धर्म…।

§ १६–१८. छन्द सुत्त (३४. ४. २. १६–१८)

इच्छा को दबाना

भिक्षुओ ! जो अनात्म है उसके प्रति अपनी इच्छा को दबाओ। राग को दबाओ। छन्दराग को दबाओ।

भिक्षुओ ! क्या अनात्म है ?

भिक्षुओ ! रूप अनात्म है···। शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

§ १९. अतीत सुत्त (३४. ४. २. १९)

अनित्य

भिक्षुओ ! अतीत चक्षु अनित्य है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक चक्षु में निर्वेद करता है। श्रोत्र में···मन में···। निर्वेद करने से राग-रहित हो जाता है।···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ २०. अतीत सुत्त (३४. ४. २. २०)

अनित्य

भिक्षुओ ! अनागत चक्षु अनित्य है···। श्रोत्र···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ २१. अतीत सुत्त (३४. ४. २. २१)

अनित्य

भिक्षुओ ! वर्तमान चक्षु अनित्य है···। श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ २२–२४. अतीत सुत्त (३४. ४. २. २२–२४)

दुःख अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत चक्षु दुःख है···।

भिक्षुओ ! अनागत चक्षु दुःख है···।

भिक्षुओ ! वर्तमान चक्षु दुःख है···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ २५–२७. अतीत सुत्त (३४. ४. २. २५–२७)

अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत चक्षु अनात्म है···

भिक्षुओ ! अनागत चक्षु अनात्म है···।

भिक्षुओ ! वर्तमान चक्षु अनात्म है···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ २८–३०. अतीत सुत्त (३४. ४. २. २८–३०)

अनित्य

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान रूप अनित्य है। शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ३१-३३. अतीत सुत्त (३४. ४. २. ३१-३३)

दुःख

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान रूप दुःख है···। शब्द···धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ३४-३६. अतीत सुत्त (३४ ४. २. ३४-३६)

अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान रूप अनात्म हैं। शब्द···धर्म।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ३७. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ३७)

अनित्य, दुःख, अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

अतीत श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक··· जाति क्षीर्ण हुई···जान लेता है।

§ ३८. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ३८)

अनित्य

भिक्षुओ ! अनागत चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

अनागत श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ३९. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ३९)

अनित्य

भिक्षुओ ! वर्तमान चक्षु अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

वर्तमान श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ४०-४२. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ४०-४२)

दुःख

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान चक्षु दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ४३-४५. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ४३-४५)

अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान चक्षु अनात्म है। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, और न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ४६–४८. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ४६–४८)

अनित्य

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान···रूप अनित्य हैं।···। शब्द···। गन्ध···। रस···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ४९–५१. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ४९–५१)

अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान रूप दुःख है।···। शब्द··· धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ५२–५४. यदनिच्च सुत्त (३४. ४. २. ५२–५४)

अनात्म

भिक्षुओ ! अतीत···। अनागत···। वर्तमान रूप अनात्म हैं। जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये।

शब्द···धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

§ ५५. अज्झत्त सुत्त (३४. ४. २. ५५)

अनित्य

भिक्षुओ ! चक्षु अनित्य है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ५६. अज्झत्त सुत्त (३४. ४. २. ५६)

दुःख

भिक्षुओ ! चक्षु दुःख है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ५७. अज्झत्त सुत्त (३४. ४. २. ५७)

अनात्म

भिक्षुओ ! चक्षु अनात्म है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···।

§ ५८–६०. बाहिर सुत्त (३४. ४. २. ५८–६०)

अनित्य, दुख, अनात्म

भिक्षुओ ! रूप अनित्य···। दुःख···। अनात्म···। शब्द···। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हो गई···जान लेता है।

सट्ठि-पेय्याल समाप्त

तीसरा भाग

समुद्र वर्ग

§ १. पठम समुद्द सुत्त (३४. ४. ३. १)

समुद्र

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक्जन 'समुद्र, समुद्र' कहा करते हैं। भिक्षुओ ! आर्यविनय में यह समुद्र नहीं कहा जाता। यह तो केवल एक महा उदक-राशि है।

भिक्षुओ ! पुरुष का समुद्र तो चक्षु है, रूप जिसका वेग है। भिक्षुओ ! जो उस रूप-मय वेग को सह लेता है वह कहा जाता है कि इसने लहर-भँवर-ग्राह (= खतरे का स्थान)—राक्षस वाले चक्षु-समुद्र को पार कर लिया है। निष्पाप हो स्थल पर खड़ा है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भगवान् ने यह कहा···:—

जो इस सग्राह, सराक्षस समुद्र को,
उर्मिके भयवाले दुस्तर को पार कर चुका है,
वह ज्ञानी, जिसका ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है,
लोक के अन्त को प्राप्त पारंगत कहा जाता है॥

§ २. दुतिय समुद्द सुत्त (३४. ४. ३. २)

समुद्र

भिक्षुओ !···यह तो केवल एक महा उदक-राशि है।

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर···हैं। भिक्षुओ ! आर्यविनय में इसी को समुद्र कहते हैं। यहीं देव, मार और ब्रह्मा के साथ यह लोक, श्रमण और ब्राह्मण के साथ यह प्रजा, देवता, मनुष्य सभी बिल्कुल डूबे हुये हैं, अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, घास-पात जैसे हो रहे हैं। वे बार बार नरक में दुर्गति को प्राप्त हो संसार से नहीं छूटते।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

§ ३. बालिसिक सुत्त (३४. ४. ३. ३)

छः बंसियाँ

जिसके राग, द्वेष और अविद्या छूट जाती हैं, वह इस ग्राह-राक्षस-उर्मिभय वाले दुस्तर समुद्र को पार कर जाता है।

संग-रहित, मृत्यु को छोड़ देनेवाला, उपाधि-रहित,
दुःख को छोड़, जो फिर उत्पन्न नहीं हो सकता,
अस्त हो गया, उसकी कोई हद नहीं,

वह मार (= मृत्युराज) को भी छका देने वाला है,
ऐसा मैं कहता हूँ ॥

भिक्षुओ ! जैसे, बंसी फेंकने वाला चारा लगाकर बंसी को किसी गहरे पानी में फेंके। तब, कोई मछली चारे की लालच से उसे निगल जाय। भिक्षुओ ! इस प्रकार, वह मछली बंसी फेंकने वाले के हाथ पड़कर बड़ी विपत्ति में पड़ जाय। बंसी फेंकने वाला जैसी इच्छा हो उसे करे। भिक्षुओ ! वैसे ही, लोगों को विपत्ति में डालने के लिये संसार में छ बंसी हैं। कौन से छः ?

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर···हैं। यदि कोई भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है,···उनमें लग्न होके रहता है, तो कहा जाता है कि उसने बंसी को निगल लिया है। मार के हाथ में आ वह विपत्ति में पड़ चुका है। पापी मार जैसी इच्छा उसे करेगा।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर···है। यदि कोई भिक्षु उनका अभिनन्दन नहीं करता है,···तो कहा जाता है कि उसने मार की बंसी को नहीं निगला है। उसने बंसी को काट दिया। वह विपत्ति में नहीं पड़ा है। पापी मार उसे जैसी इच्छा नहीं कर सकेगा।

श्रोत्र···मन···।

§ ४. खीररुक्ख सुत्त (३४. ४. ३. ४)

आसक्ति के कारण

भिक्षुओ ! भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुविज्ञेय रूपों में राग लगा हुआ है, द्वेष लगा हुआ है, मोह लगा हुआ है, राग प्रहीण नहीं हुआ है, द्वेष प्रहीण नहीं हुआ है, मोह प्रहीण नहीं हुआ है। यदि कुछ भी रूप उसके सामने आते हैं तो वह झट आसक्त हो जाता है, किसी विशेष का तो कहना ही क्या ?

सो क्यों ? क्योंकि उसके राग, द्वेष और मोह अभी लगे ही हुये हैं, प्रहीण नहीं हुये हैं।

श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई दूध से भरा पीपल, या बड़, या पाकड़, या गूलर का नया कोमल वृक्ष हो।···उसे कोई पुरुष एक तेज कुठार से जहाँ जहाँ मारे तो क्या वहाँ वहाँ दूध निकले ?

हाँ भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! क्योंकि उसमें दूध भरा है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुविज्ञेय रूपों में राग लगा हुआ है···प्रहीण नहीं हुआ है। यदि कुछ भी रूप उसके सामने आते हैं तो वह झट आसक्त हो जाता है, किसी विशेष का तो कहना ही क्या ?

सो क्यों ? क्योंकि उसके राग, द्वेष और मोह अभी लगे ही हुये हैं, प्रहीण नहीं हुये हैं। श्रोत्र···मन···।

भिक्षुओ ! भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुविज्ञेय रूपों में राग नहीं है, द्वेष नहीं है, मोह नहीं है, राग प्रहीण हो गया है, द्वेष प्रहीण हो गया है, मोह प्रहीण हो गया है। यदि विशेष रूप भी उसके सामने आते हैं तो वह आसक्त नहीं होता, कुछ का तो कहना ही क्या ?

सो क्यों ? क्योंकि उसके राग, द्वेष और मोह नहीं हैं, बिल्कुल प्रहीण हो गये हैं। श्रोत्र··· मन···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई बूढ़ा, सूखा-साखा पीपल, या बड़, या पाकर, या गूलर का वृक्ष हो। उसे कोई पुरुष एक तेज कुठार से जहाँ जहाँ मारे तो क्या वहाँ वहाँ दूध निकलेगा ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! क्योंकि उसमें दूध नहीं है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु या भिक्षुणी का चक्षुविज्ञेय रूपों में राग नहीं है...। यदि विशेष रूप भी उसके सामने आते हैं तो वह आसक्त नहीं होता, कुछ का तो कहना ही क्या ?

सो क्यों ? क्योंकि उसके राग, द्वेष और मोह नहीं है...।

§ ५. कोट्ठित सुत्त (३४. ४. ३. ५)

छन्दराग ही बन्धन है

एक समय, आयुष्मान् **सारिपुत्र** और आयुष्मान् **महाकोट्ठित वाराणसी** के पास **ऋषिपतन मृगदाय** में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महाकोट्ठित संध्या समय ध्यान से उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् महा-कोट्ठित आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस ! क्या चक्षु रूपों का बन्धन (=संयोजन) है, या रूप ही चक्षु के बन्धन हैं ? श्रोत्र...? क्या मन धर्मों का बन्धन है, या धर्म ही मन के बन्धन हैं ?"

आवुस कोट्ठित ! न चक्षु रूपों का बन्धन हैं, न रूप ही चक्षु के बन्धन हैं।...। न मन धर्मों का बन्धन है, न धर्म ही मन के बन्धन है। किन्तु जो वहाँ दोनों के प्रत्यय से छन्दराग उत्पन्न होता है वही वहाँ बन्धन है।

आवुस ! जैसे, एक काला बैल और एक उजला बैल एक साथ रस्सी से बँधे हों। तब, यदि कोई कहे कि काला बैल उजले बैल का बन्धन है, या उजला बैल काले बैल का बन्धन है, तो क्या वह ठीक कहता है ?

नहीं आवुस !

आवुस ! न तो काला बैल उजले बैल का बन्धन है, और न उजला बैल काले बैल का। किन्तु, वे एक ही रस्सी के साथ बँधे हैं, जो वहाँ बन्धन है।

आवुस ! वैसे ही, न तो चक्षु रूपों का बन्धन है, और न रूप ही चक्षु के बन्धन हैं। किन्तु, जो वहाँ दोनों के प्रत्यय से छन्द राग उत्पन्न होते हैं वही वहाँ बन्धन हैं।

वैसे ही, न तो श्रोत्र शब्दों का बन्धन है...। न तो मन धर्मों का बन्धन है...। किन्तु, जो वहाँ दोनों के प्रत्यय से छन्द राग उत्पन्न होते हैं वही वहाँ बन्धन हैं।

आवुस ! यदि चक्षु रूपों का बन्धन होता, या रूप चक्षु के बन्धन होते, तो दुःखों के बिल्कुल क्षय के लिये ब्रह्मचर्यवास सार्थक नहीं समझा जाता।

आवुस ! क्योंकि, चक्षु रूपों का बन्धन नहीं है, और न रूप चक्षु के बन्धन हैं..., इसीलिये दुःखों के बिल्कुल क्षय के लिये ब्रह्मचर्यवास की शिक्षा दी जाती है।

श्रोत्र...। घ्राण...। जिह्वा...। काया...। मन...।

आवुस ! इस तरह भी जानना चाहिए कि न तो चक्षु रूपों का बन्धन है और न रूप चक्षु के बन्धन हैं। किन्तु, दोनों के प्रत्यय से जो छन्दराग उत्पन्न होता है वही वहाँ बन्धन है।

श्रोत्र...मन...।

आवुस ! भगवान् को भी चक्षु हैं। भगवान् चक्षु से रूप को देखते हैं। किन्तु, भगवान् को कोई छन्दराग नहीं होता। भगवान् का चित्त अच्छी तरह विमुक्त है।

भगवान् को श्रोत्र भी है···।···भगवान् को मन भी है। भगवान् मन से धर्मों को जानते हैं। किन्तु, भगवान् को कोई छन्दराग नहीं होता। भगवान् का चित्त अच्छी तरह विमुक्त है।

आवुस ! इस तरह भी जानना चाहिए कि न तो चक्षु रूपों का बन्धन है और न रूप चक्षु के बन्धन हैं। किन्तु, दोनों के प्रत्यय से जो छन्दराग उत्पन्न होता है वही वहाँ बन्धन है।

श्रोत्र···।···मन···।

§ ६. कामभू सुत्त (३४. ४. ३. ६)

छन्दराग ही बन्धन है

एक समय आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् कामभू कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् कामभू संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आये, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् कामभू आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस ! क्या चक्षु रूपों का बन्धन है, या रूप ही चक्षु के बन्धन हैं ? श्रोत्र···मन···?"

[ऊपर जैसा ही—'भगवान् का' उदाहरण छोड़कर]

§ ७. उदायी सुत्त (३४. ४. ३. ७)

विज्ञान भी अनात्म है

एक समय आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् उदायी कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् उदायी संध्या समय···।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् उदायी आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस ! जैसे भगवान् ने इस शरीर को अनेक प्रकार से बिल्कुल साफ-साफ खोलकर अनात्म कह दिया है, वैसे ही क्यों विज्ञान को भी बिल्कुल साफ-साफ अनात्म कह कर बताया जा सकता है ?

आवुस ! चक्षु और रूप के प्रत्यय से चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है।

हाँ आवुस !

चक्षुविज्ञान की, उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है, यदि वह बिल्कुल सदा के लिए एकदम निरुद्ध हो जाय तो क्या चक्षुविज्ञान का पता रहेगा ?

नहीं आवुस !

आवुस ! इस तरह भी भगवान् ने बताया और समझाया है कि विज्ञान अनात्म है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···।

मनोविज्ञान की उत्पत्ति का जो हेतु = प्रत्यय है यदि वह बिल्कुल सदा के लिए एकदम निरुद्ध हो जाय तो क्या चक्षुविज्ञान का पता रहेगा ?

नहीं आवुस !

आवुस ! इस तरह भी भगवान् ने बताया और समझाया है कि विज्ञान अनात्म है।

आवुस ! जैसे, कोई पुरुष हीर का चाहने वाला, हीर की खोज में घूमते हुये तेज कुठार लेकर वन में पैठे। वह वहाँ एक बड़े केले के पेड़ को देखे—सीधा, नया, कोमल। उसे वह जड़से काट दे। जड़ से काट कर आगे काटे। आगे काट कर छिलका-छिलका उखाड़ दे। वह वहाँ कच्ची लकड़ी भी नहीं पावे, हीर की तो बात ही क्या ?

आवुस ! वैसे ही, भिक्षु इन छः स्पर्शायतनों में न आत्मा और न आत्मीय देखता है। उपादान नहीं करने से उसे त्रास नहीं होता है। त्रास नहीं होने से अपने भीतर ही भीतर परिनिर्वाण पा लेता है। जाति क्षीण हुई···जान लेता लेता है।

§ ८. आदित्त सुत्त (३४. ४. ३. ८)

इन्द्रिय-संयम

भिक्षुओ ! आदीप्त वाली बात का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···। भिक्षुओ ! आदीप्त वाली बात क्या है ?

भिक्षुओ ! लहलहा कर जलती हुई लाल लोहे की सलाई से चक्षु-इन्द्रिय को दाह देना अच्छा है, किंतु चक्षुविज्ञेय रूपों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं।

भिक्षुओ ! जिस समय लालच करता या स्वाद देखता रहता है उस समय मर जाने से किसी की दो ही गतियाँ होती हैं—या तो नरक में पड़ता है, या तिरश्चीन (= पशु) योनि में पैदा होता है।

भिक्षुओ ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ। भिक्षुओ ! लहलहा कर जलती हुई, तेज लोहे की अँकुसी से श्रोत्र-इन्द्रिय को जला नष्ट कर देना अच्छा है, किंतु श्रोत्रविज्ञेय शब्दों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं।···या तिरश्चीन योनि में पैदा होता है।

भिक्षुओ ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ। भिक्षुओ ! लहलहा कर जलती हुई, तेज लोहे की नरहन्नि से घ्राण-इन्द्रिय को जला नष्ट कर देना अच्छा है, किंतु घ्राणविज्ञेय गन्धों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं।···या तिरश्चीन योनि में पैदा होता है।

भिक्षुओ ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ। भिक्षुओ ! लहलहा कर जलती हुई, तेज लोहे की छुरी से जिह्वा-इन्द्रिय काट डालना अच्छा है, किंतु जिह्वाविज्ञेय रसों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं।···या तिरश्चीन योनि में पैदा होता है।

भिक्षुओ ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ। भिक्षुओ ! लहलहा कर जलते हुये तेज लोहे के भाले से काया-इन्द्रिय को छेद डालना अच्छा है, किंतु कायविज्ञेय स्पर्शों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं।···या तिरश्चीन योनि में पैदा होता है।

भिक्षुओ ! इसी बुराई को देख कर मैं ऐसा कहता हूँ। भिक्षुओ ! सोया रहना अच्छा है। भिक्षुओ ! सोये हुये को मैं बाँझ जीवित कहता हूँ, निष्फल जीवित कहता हूँ, मोह में पड़ा जीवन कहता हूँ, मनमें वैसे वितर्क मत लावे जिससे संघ में फूट कर दे।···

भिक्षुओ ! वहाँ पण्डित आर्यश्रावक ऐसा चिन्तन करता है।

लहलहा कर जलती हुई लाल लोहे की सलाई से चक्षु-इन्द्रिय को दाह देने से क्या मतलब ? मैं ऐसा मन में लाता हूँ—चक्षु अनित्य है। रूप-अनित्य है। चक्षुविज्ञान···। चक्षुसंस्पर्श···।···वेदना···।

श्रोत्र अनित्य है, शब्द अनित्य हैं··।···। मन अनित्य है। धर्म अनित्य हैं। मनोविज्ञान···। मनःसंस्पर्श···।···वेदना···।

भिक्षुओ ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक···जाति क्षीण हुई···जान लेता है।

भिक्षुओ ! आदीप्त वाली यही बात है।

§ ९. पठम हत्थपादुपम सुत्त (३४. ४. ३. ९)

हाथ-पैर की उपमा

भिक्षुओ ! हाथ के होने से लेना-देना समझा जाता है। पैर के होने से आना-जाना समझा जाता है। जोड़ के होने से समेटना पसारना समझा जाता हैं। पेट के होने से भूख-प्यास समझी जाती है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, चक्षु के होने से चक्षुसंस्पर्श के प्रत्ययसे आध्यात्मिक सुख-दुःख होते हैं···।···मनके होने से मनःसंस्पर्श के प्रत्ययसे आध्यात्मिक सुख-दुःख होते हैं।

भिक्षुओ ! हाथ के नहीं होने से लेना-देना नहीं समझा जाता है। पैर के नहीं होने से आना-जाना नहीं समझा जाता है। जोड़ के नहीं होने से समेटना-पसारना नहीं समझा जाता है। पेट के नहीं होने से भूख-प्यास नहीं समझी जाती है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, चक्षु के नहीं होने से चक्षुसंस्पर्श के प्रत्यय से आध्यात्मिक सुख-दुःख नहीं होता है।···। मन के नहीं होने से मनःसंस्पर्श के प्रत्यय से आध्यात्मिक सुख-दुःख नहीं होता है।

§ १०. दुतिय हत्थपादुपम सुत्त (३४. ४. ३. १०)

हाथ-पैर की उपमा

भिक्षुओ ! हाथ के होने से लेना-देना होता है···।
['समझा जाता है' के बदले 'होता है' करके शेष ऊपर जैसा ही]

समुद्रवर्ग समाप्त

चौथा भाग

आशीविष वर्ग

§ १. आसीविस सुत्त (३४. ४. ४. १)

चार महाभूत आशीविष के समान हैं

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया "भिक्षुओ !"

"भदन्त" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! जैसे, चार बड़े विषैले उग्र तेजवाले सर्प हों। तब, कोई पुरुष आवे जो जीना चाहता हो, मरना नहीं, सुख पाना चाहता हो, दुःख से बचना चाहता हो। उसे कोई कहे, "हे पुरुष ! यह चार बड़े विषैले उग्र तेजवाले सर्प हैं। इन्हें तुम समय-समय पर उठाया करो, समय-समय पर नहाया करो, समय-समय पर खिलाया करो, समय-समय पर भीतर कर दिया करो। हे पुरुष ! यदि इन चार सर्पों में कोई क्रोध में आवेगा तो तुम्हारा मरना होगा या मरने के समान दुःख भोगोगे। हे पुरुष ! तुम्हें अब जो इच्छा हो करो।"

तब, वह पुरुष उन सर्पों से डरकर जिधर-तिधर भाग जाय। उसे फिर कोई कहे, "हे पुरुष ! तुम्हारे पीछे-पीछे पाँच बधक आ रहे हैं। जहाँ तुम्हें पावेंगे वहीं मार देंगे। हे पुरुष ! तुम्हारी अब जो इच्छा हो करो।"

तब, वह पुरुष उन चार सर्पों से और पाँच पीछे-पीछे आनेवाले बधकों से डरकर जिधर-तिधर भाग जाय। उसे फिर कोई कहे, "हे पुरुष ! यह तुम्हारा छठाँ गुप्त बधक तलवार उठाये तुम्हारे पीछे-पीछे लगा है, जहाँ तुम्हें पायेगा वहीं काटकर शिर गिरा देगा। हे पुरुष ! तुम्हारी अब जो इच्छा हो करो।"

तब, वह पुरुष उन चार सर्पों से, पाँच पीछे-पीछे आनेवाले बधकों से, और उस छठे गुप्त बधक से डर कर जिधर-तिधर भाग जाय। वह कोई एक सूना गाँव देखे। जिस-जिस घर में पैठे उसे खाली ही पावे, तुच्छ और शून्य पावे। जिस-जिस भाजन को छूये उसे तुच्छ और शून्य ही पावे। उसे फिर कोई कहे, "हे पुरुष ! चोर-डाकू आकर इस शून्य गाँव में मार-काट करेंगे। हे पुरुष ! तुम्हारी अब जो इच्छा करो।"

तब, वह पुरुष उन चार सर्पों से, पाँच पीछे-पीछे आनेवाले बधकों से, और उस छठे गुप्त बधक से, और चोर-डाकू से डर कर जिधर तिधर भाग जाय। तब, वह एक बड़ा पानी का झील देखे जिसका इस पार शंका और भय से युक्त हो, किन्तु उस पार शंका से रहित निर्भय सुख हो। किन्तु, उस पार जाने के लिए न तो कोई ऊपर में पुल हो, और न कोई किनारे में नाव लगी हो।

भिक्षुओ ! तब, उस पुरुष के मन में ऐसा होवे—अरे ! यह पानी का बड़ा झील है···किन्तु, उस पार जाने के लिए न तो कोई ऊपर में पुल है, और न कोई किनारे में नाव लगी है। तो, क्यों न मैं वृक्ष के डाल-पात को बाँधकर एक बेड़ा तैयार करूँ और उसी के सहारे हाथ-पैर चलाकर कुशलता से पार चला जाऊँ।

भिक्षुओ ! तब वह पुरुष वृक्ष के डाल-पात को बाँध कर एक बेड़ा तैयार करे और उसी के सहारे हाथ-पैर चलाकर कुशलता से पार चला जाय। पार आकर निष्पाप स्थल पर खड़ा होता है।

भिक्षुओ ! मैंने कुछ बात समझाने के लिए ही यह उपमा कही है। वह बात यह है।

भिक्षुओ ! उन चार विषैले उग्र तेजवाले सर्पों से चार महाभूतों का अभिप्राय है। पृथ्वी-धातु, आपो धातु, तेजो धातु और वायु-धातु।

भिक्षुओ ! पाँच पीछे पीछे आने वाले बधकों से पाँच उपादान-स्कन्धों का अभिप्राय है। जैसे, रूप-उपादानस्कन्ध, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···; विज्ञान-उपादानस्कन्ध।

भिक्षुओ ! छठे गुप्त बधक से तृष्णा-राग का अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! शून्य ग्राम से छः आध्यात्मिक आयतनों का अभिप्राय है। भिक्षुओ ! पण्डित=व्यक्त=मेधावी चक्षु की परीक्षा करता है तो उसे यह रिक्त पाता है, तुच्छ पाता है, शून्य पाता है।···श्रोत्र की परीक्षा···। ।···मनकी परीक्षा···।

भिक्षुओ ! चोर-डाकू से छः बाह्य आयतनों का अभिप्राय है। भिक्षुओ ! प्रिय-अप्रिय रूपों से चक्षु टकराता है। प्रिय-अप्रिय शब्दों से श्रोत्र टकराता है।···। प्रिय अप्रिय धर्मों से मन टकराता है।

भिक्षुओ ! पानी के बने झील से चार बाढ़ों का (= ओघ) अभिप्राय है। काम की बाढ़, भव···, दृष्टि···, अविद्या···।

भिक्षुओ ! इस पार आशंका और भय से युक्त है, इससे सत्काय का अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! उस पार शंका से रहित निर्भय सुख है, इससे निर्वाण का अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! बेड़े से आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभिप्राय है। जो सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि।

भिक्षुओ ! हाथ पैर चलाने से वीर्य करने का अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! पार आकर निष्पाप स्थल पर खड़ा होता है, इससे अर्हत् का अभिप्राय है।

§ २. रत सुत्त (३४. ४. ४. २)

तीन धर्मों से सुख की प्राप्ति

भिक्षुओ ! तीन धर्मों से युक्त हो भिक्षु अपने देखते ही देखते बड़े सुख और सौमनस्य से विहार करता है, और उसके आश्रव क्षय होने लगते हैं।

किन तीन धर्मों से युक्त हो ?

(१) इन्द्रियों में संयत होता है, (२) भोजन में मात्रा का जानने वाला होता है, और (३) जागरणशील होता है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु इन्द्रियों में संयत होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षु से रूप देख, न ललचता है, न उसमें स्वाद देखता है। असंयत चक्षु इन्द्रिय से विहार करनेवाले में लोभ, द्वेष, पापमय अकुशल धर्म पैठ जाते हैं, उनके संयम के लिए वह उत्साहशील होता है, चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करता है।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन···।

भिक्षुओ ! जैसे, किसी अच्छे बराबर चौराहे पर पुष्ट घोड़ों से जुता एक रथ लगा हो, जिसमें चाबुक लटकी हो। उसे कोई होशियार कोचवान चढ़, बायें हाथ से लगाम पकड़, दाहिने हाथ में चाबुक ले, जैसी मरजी चाहे आगे हाँके या पीछे ले जाय।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु इन छ इन्द्रियों की रक्षा के लिए सीखता है, संयम के लिए सीखता है, दमन करने के लिए सीखता है, शान्त करने के लिए सीखता है।

भिक्षुओ ! इस तरह, भिक्षु इन्द्रियों में संयत होता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे भोजन में मात्रा का जाननेवाला होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु अच्छी तरह मनन करके भोजन करता है—"इस तरह, पुरानी वेदनाओं को

क्षय करता हूँ, नई वेदना उत्पन्न नहीं करूँगा। मेरा जीवन कट जायगा, निर्दोष और सुख से विहार करते।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष घाव पर मलहम लगाता है, घाव को अच्छा करने ही के लिए। जैसे, धुरे को बचाता है, भार पार करने ही के लिए। भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु अच्छी तरह मनन करके भोजन करता है—···निर्दोष और सुख से विहार करते।

भिक्षुओ ! इसी तरह, भिक्षु भोजन में मात्रा का जाननेवाला होता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे जागरणशील होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु दिन में चंक्रमण कर और बैठ कर आवरण में डालनेवाले धर्मों से अपने चित्त को शुद्ध करता है। रात के प्रथम याम में चंक्रमण कर और बैठकर आवरण में डालनेवाले धर्मों से अपने चित्त को शुद्ध करता है। रात के मध्यम याम में दाहिनी करवट सिंह-शय्या लगा, पैर पर पैर रख, स्मृतिमान्, संप्रज्ञ और उपस्थित संज्ञा वाला होता है। रात के पश्चिम याम में उठ, चंक्रमण कर और बैठ कर आवरण में डालनेवाले धर्मों से अपने चित्त को शुद्ध करता है।

भिक्षुओ ! इसी तरह, भिक्षु जागरणशील होता है।

भिक्षुओ ! इन्हीं तीन धर्मों से युक्त हो भिक्षु अपने देखते ही देखते बड़े सुख और सौमनस्य से विहार करता है, और उसके आश्रव क्षय होने लगते हैं।

§ ३. कुम्म सुत्त (३४. ४. ४. ३)

कछुये के समान इन्द्रिय-रक्षा करो

भिक्षुओ ! बहुत पहले, किसी दिन एक कछुआ संध्या समय नदी के तीर पर आहार की खोज में निकला हुआ था। एक सियार भी उसी समय नदी के तीर पर आहार की खोज में आया हुआ था।

भिक्षुओ ! कछुये ने दूर ही से सियार को आहार की खोज में आये देखा। देखते ही, अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में समेट कर निस्तब्ध हो रहा।

भिक्षुओ ! सियार ने भी दूर ही से कछुये को देखा। देख कर जहाँ कछुआ था वहाँ गया। जाकर कछुये पर दाँव लगाये खड़ा रहा—जैसे ही यह कछुआ अपने किसी अंग को निकालेगा वैसे ही मैं एक झपट्टे में चीर कर फाड़ कर खा जाऊँगा।

भिक्षुओ ! क्योंकि कछुये ने अपने किसी अंग को नहीं निकाला, इसलिये सियार अपना दाँव चूक उदास चला गया।

भिक्षुओ ! वैसे ही, मार तुम पर सदा सभी ओर दाँव लगाये रहता है—कैसे इन्हें चक्षु की दाँव से पकड़ूँ···कैसे मन की दाँव से पकड़ूँ !

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम अपनी इन्द्रियों को समेट कर रक्खो।

चक्षु से रूप देख कर मत ललचो, मत उसमें स्वाद देखो। असंयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करने से लोभ, द्वेष अकुशल धर्म चित्त में पैठ जाते हैं। इसलिए, उनका संयम करो। चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करो।

श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा ···। काया···।

मनसे धर्मों को जान मत ललचो···मन-इन्द्रिय की रक्षा करो।

भिक्षुओ ! यदि तुम भी अपनी इन्द्रियों को समेट कर रक्खोगे, तो पापी मार उसी सियार की तरह दाँव चूक तुम्हारी ओर से उदास हो कर हट जायगा।

> जैसे कछुआ अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में,
> अपने वितर्कों को भिक्षु दबाते हुए,

क्लेशरहित हो, दूसरे को न सताते हुए,
परिनिर्वृत, किसी की भी शिकायत नहीं करता ॥

§ ४. पठम दारुक्खन्ध सुत्त (३४. ४. ४. ४)

सम्यक दृष्टि निर्वाण तक जाती है

एक समय, भगवान् कौशाम्बी में गंगानदी के तीर पर विहार करते थे ।

भगवान् ने गंगानदी की धारा में बहते हुए एक बड़े लकड़ी के कुन्दे को देखा । देखकर, भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! गंगानदी की धारा में बहते हुए इस बड़े लकड़ी के कुन्दे को देखते हो ?

हाँ भन्ते !

भिक्षुओ ! यदि यह लकड़ी का कुन्दा न इस पार लगे, न उस पार लगे, न बीच में डूब जाय, न जमीन पर चढ़ जाय, न किसी मनुष्य या अमनुष्य से छान लिया जाय, न किसी भँवर में पड़ जाय, और न कहीं बीच ही में रुक जाय, तो यह समुद्र ही में जाकर गिरेगा…। सो क्यों ?

भिक्षुओ ! क्योंकि गंगानदी की धारा समुद्र ही तक बहती है, समुद्र ही में गिरती है, समुद्र ही में जा लगती है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, यदि तुम भी न इस पार लगो, न उस पार लगो, न बीच में डूब जाओ, न जमीन पर चढ़ जाओ न किसी मनुष्य या अमनुष्य से छान लिये जाओ, न किसी भँवर में पड़ जाओ, और न कहीं बीच में ही सड़ जाओ, तो तुम भी निर्वाण में ही जा लगोगे । सो क्यों ?

भिक्षुओ ! क्योंकि सम्यक् दृष्टि निर्वाण तक ही जाती है, निर्वाण ही में जा लगती है ।

यह कहने पर, कोई भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! इस पार क्या है, उस पार क्या है, बीच में डूब जाना क्या है, जमीन पर चढ़ जाना क्या है, किसी मनुष्य या अमनुष्य से छान लिया जाना क्या है, और बीच में सड़ जाना क्या है ?

भिक्षुओ ! इस पार से छः आध्यात्मिक आयतनों का अभिप्राय है ।

भिक्षुओ ! उस पार से छः बाह्य आयतनों का अभिप्राय है ।

भिक्षुओ ! बीच में डूब जानेसे तृष्णा-राग का अभिप्राय है ।

भिक्षुओ ! जमीन पर चढ़ जाने से अस्मि-मान का अभिप्राय है ।

भिक्षुओ ! मनुष्य से छान लिया जाना क्या है ? कोई भिक्षु गृहस्थों के संसर्ग में बहुत रहता है । उनके आनन्द में आनन्द मनाता है, उनके शोक में शोक करता है, उनके सुखी होने पर सुखी होता है, उनके दुःखित होने पर दुःखित होता है, उनके इधर-उधर के काम आ पड़ने पर स्वयं भी लग जाता है । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं मनुष्य से छान लिया जाना ।

भिक्षुओ ! अमनुष्य से छान लिया जाना क्या है ? कोई भिक्षु अमुक न अमुक देवलोक में उत्पन्न होने के लिए ब्रह्मचर्य-वास करता है । मैं इस शील से, व्रत से, तप से, या ब्रह्मचर्य से कोई देव हो जाऊँगा । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं अमनुष्य से छान लिया जाना ।

भिक्षुओ ! भँवर से पाँच काम-गुणों का अभिप्राय है ।

भिक्षुओ ! बीच ही में सड़ जाना क्या है ? कोई भिक्षु दुःशील होता है—पापमय धर्मोंवाला, अपवित्र, बुरे आचार का, भीतर-भीतर बुरा काम करनेवाला, अश्रमण, अब्रह्मचारी, झूठ में श्रमण या ब्रह्मचारी का ढोंग रचनेवाला, भीतर क्लेश से भरा हुआ । भिक्षुओ ! इसी को बीच में सड़ जाना कहते हैं ।

उस समय, नन्द ग्वाला भगवान् पास ही खड़ा था ।

तब, नन्द ग्वाला भगवान् से बोला, भन्ते ! जिसमें मैं न इस पार लगूँ, न उस पार लगूँ···और न बीच ही में सड़ जाऊँ, भगवान् मुझे अपने पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा देवें।

नन्द ! तो, तुम अपने मालिक की गौयें लौटा आओ।

भन्ते ! अपने बच्चे के प्रेम में गौयें लौट जायेंगी।

नन्द ! तुम अपने मालिक की गौयें लौटाकर ही आओ।

तब, नन्द ग्वाला अपने मालिक की गौयें लौटाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और बोला, "भन्ते ! मैं अपने मालिक की गौयें लौटा आया। भगवान् मुझे अपने पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा देवें।

नन्द ग्वाले ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई और उपसम्पदा भी पाई।···

आयुष्मान् नन्द अर्हतों में एक हुए।

§ ५. दुतिय दारुक्खन्ध-सुत्त (३४. ४. ४. ५)

सम्यक् दृष्टि निर्वाण तक जाती है

ऐसे मैंने सुना।

एक समय भगवान् किम्बिला में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे।

···[ऊपर जैसा ही]

ऐसा कहने पर आयुष्मान् किम्बिल भगवान् से बोले—भन्ते ! इस पार क्या है, उस पार क्या है···?

[ऊपर जैसा ही]

किम्बिल ! इसी को कहते हैं बीच में सड़ जाना।

§ ६. अवस्सुत सुत्त (३४. ४. ४. ६.)

अनासक्ति-योग

एक समय, भगवान् शाक्य (जनपद) में कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे।

उस समय, कपिलवस्तु में शाक्यों का नया संस्थागार बन कर तैयार हुआ था, जिसमें अभी तक किसी श्रमण, ब्राह्मण या मनुष्य ने वास नहीं किया था।

तब, कपिलवस्तु वाले शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, कपिलवस्तु के शाक्य भगवान् से बोले, "भन्ते ! यह कपिलवस्तु में शाक्यों का नया संस्थागार बनकर तैयार हुआ है, जिसमें अभी तक किसी श्रमण, ब्राह्मण, या मनुष्य ने वास नहीं किया है। भन्ते ! अतः, भगवान् ही पहले पहल उसका भोग करें। पीछे, कपिलवस्तु के शाक्य उसको प्रयोग में लावेंगे। वह कपिलवस्तु के शाक्यों के लिये दीर्घकाल तक हित और सुख के लिये होगा।

भगवान् ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

तब, कपिलवस्तु के शाक्य भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर, जहाँ नया संस्थागार था वहाँ आये। आ कर, सारे संस्थागार को लीप-पोत, आसन लगा, पानी की मटकी रख, तेलप्रदीप जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये और बोले, "भन्ते ! सारा संस्थागार लीप-पोत दिया गया, आसन लगा दिये गये, पानी की मटकी रख दी गई, और तेलप्रदीप जला दिया गया। अब, भगवान् जैसा उचित समझें।'

तब, भगवान् पहन और पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ जहाँ नया संथागार था वहाँ आये।

आकर पैर पखार, संस्थागार में पैठ बिचले खम्भे के सहारे सामने मुँह किये बैठ गये। भिक्षु-संघ भी पैर पखार, संस्थागार में पैठ पीछे वाली भीत के सहारे भगवान् को आगे कर सामने मुँह किये बैठ गये। कपिलवस्तु के शाक्य भी पैर पखार संस्थागार में पैठ सामने वाली भीत के सहारे भगवान् के सम्मुख बैठ गये।

भगवान् बहुत रात तक कपिलवस्तु के शाक्यों को धर्मोपदेश करते रहे। हे गौतम ! रात चढ़ गई, अब आप जैसी इच्छा करें।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, कपिलवस्तु के शाक्य भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब, कपिलवस्तु के शाक्यों के चले जाने के बाद ही, भगवान् ने आयुष्मान् महामोग्गल्लान को आमन्त्रित कियाः—मोग्गल्लान ! भिक्षुसंघ को कोई आलस्य नहीं। मोग्गल्लान ! तुम भिक्षुओं को धर्मोपदेश करो। मेरी पीठ अगिया रही है, मैं लेटता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब, भगवान् चौपेती संघाटी को बिछा, दाहिनी करवट लेट, सिंहशय्या लगा लिये —पैर पर पैर रख, स्मृतिमान्, संप्रज्ञ और सचेत हो।

तब, आयुष्मान् महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "आवुस भिक्षुओ !"

"आवुस !" कह, उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान को उत्तर दिया।

आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान बोले—आवुस ! मैं अवश्रुत और अनवश्रुत की बात का उपदेश करूँगा। उसे सुने...।

आवुस ! कैसे अवश्रुत होता है ?

आवुस ! भिक्षु संसार में चक्षु से प्रिय रूपों को देख कर मूर्च्छित हो जाता है, अप्रिय रूपों को देख खिन्न हो जाता है। वह बिना आत्म-चिन्तन किये चंचल चित्त से विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जानता है। जो उसके पापमय अकुशल धर्म हैं बिल्कुल विरुद्ध नहीं हो जाते हैं। श्रोत्र···मन···।

आवुस ! वह भिक्षु चक्षुविज्ञेय रूपों में अवश्रुत कहा जाता है..मनोविज्ञेय धर्मों में अवश्रुत कहा जाता है।

आवुस ! ऐसे भिक्षु पर यदि मार चक्षु की राहसे भी आता है, तो वह जीत लेता है।···मन की राहसे भी आता है तो वह जीत लेता है।

आवुस ! जैसे, सरकी या तृण की बनी कोई सूखी जर्जर झोपड़ी हो। उसे पूरब, पश्चिम उत्तर, दक्खिन किसी भी दिशा से कोई पुरुष आकर यदि घास की जलती लुआरी लगा दे, तो आग तुरत उसे जला देगी।

आवुस ! वैसे ही, ऐसे भिक्षु पर यदि मार चक्षु की राह से भी आता है तो वह जीत लेता है।···मन की राह से भी आता है तो वह जीत लेता है।

आवुस ! ऐसे भिक्षु को रूप हरा देते हैं, वह रूपों को नहीं हराता। ऐसे भिक्षु को शब्द हरा देते हैं, वह शब्दों को नहीं हराता। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। धर्म···। आवुस ! ऐसा भिक्षु रूप से हारा···। धर्म से हारा कहा जाता है। बार बार जन्म में डालने वाले, भयपूर्ण, दुःखद फलवाले, भविष्य में जरामरणवाले, संक्लेश पापमय अकुशल धर्मों ने उसे हरा दिया है।

आवुस ! इस तरह अवश्रुत होता है।

आवुस ! और अनवश्रुत कैसे होता है ?

आवुस ! भिक्षु संसार में चक्षु से प्रिय रूपों को देखकर मूर्च्छित नहीं होता है, अप्रिय रूपों को

देख खिन्न नहीं होता है। वह आत्मचिन्तन करते अप्रमत्त चित्त से विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। जो उसके पापमय अकुशल धर्म हैं बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। श्रोत्र···। मन···।

आवुस ! वह भिक्षु चक्षुविज्ञेय रूपों में अनवश्रुत कहा जाता है···मनोविज्ञेय धर्मों में अनवश्रुत कहा जाता है।

आवुस ! ऐसे भिक्षु पर यदि मार चक्षु की राह से भी आता है, तो वह जीत नहीं सकता। ···मनकी राह से भी आता है तो वह जीत नहीं सकता है।

आवुस ! जैसे, मिट्टी का बना गीला लेपवाला कूटागार या कूटागारशाला। उसे पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन किसी भी दिशासे कोई पुरुष आकर यदि घास की जलती लुआरी लगा दे, तो आग उसे पकड़ नहीं सकेगी।

आवुस ! वैसे ही, ऐसे भिक्षुपर यदि मार चक्षु की राह से भी आता है तो वह जीत नहीं सकता।···मन की राह से भी आता है तो वह जीत नहीं सकता।

आवुस ! ऐसे भिक्षु रूप को हरा देते हैं, रूप उन्हें नहीं हराता। गन्ध···। रस···। स्पर्श···। आवुस ! ऐसा भिक्षु रूप को जीता···धर्म को जीता कहा जाता है। बार बार जन्म में डालने वाले, भयपूर्ण, दुःखद फलवाले, भविष्य में जरामरण देने वाले संक्लेश पापमय अकुशल धर्मों को उसने जीत लिया है।

आवुस ! इस तरह अनवश्रुत होता है।

तब, भगवान् ने उठकर महा-मोग्गलान को आमन्त्रित किया:—वाह मोग्गल्लान ! तुमने भिक्षुओं को अवश्रुत और अनवश्रुत की बात का अच्छा उपदेश दिया !

आयुष्मान् मोग्गल्लान यह बोले। बुद्ध प्रसन्न हुये। संतुष्ट हो, भिक्षुओं ने आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान के कहे का अभिनन्दन किया।

§ ७. दुक्खधम्म सुत्त (३४. ४. ४. ७)

संयम और असंयम

भिक्षुओ ! जब भिक्षु सभी दुःख-धर्मों के समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जान लेता है तो कामों के प्रति उसकी ऐसी दृष्टि होती है कि कामों को देखने से उनके प्रति उसके चित्त में कोई छन्द=स्नेह=मूर्च्छा=परिलाह नहीं होने पाता। उसका ऐसा आचार-विचार होता है जिससे लोभ, दौर्मनस्य इत्यादि पापमय अकुशल धर्म उसमें नहीं पैठ सकते।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे सभी दुःख-धर्मों के समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता है ?

यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूपका अस्त हो जाना है। यह वेदना···। यह संज्ञा···। यह संस्कार···। यह विज्ञान···। भिक्षुओ ! इसी तरह, भिक्षु सभी दुःख-धर्मों के समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु को कामों के प्रति ऐसी दृष्टि होती है कि कामों को देखने से उनके प्रति उसके चित्त में कोई छन्द=स्नेह=मूर्च्छा=परिलाह नहीं होता ?

भिक्षुओ ! जैसे, एक पोरसे भी अधिक पूरी सुलगती और लहरती आग की ढेर हो। तब, कोई पुरुष आवे जो जीना चाहता हो, मरना नहीं, सुख चाहता हो, दुख से बचना चाहता हो। तब, दो बलवान् पुरुष उसे दोनों बाँह पकड़ कर आग में ले जायँ। वह जैसे तैसे अपने शरीर को सिकोड़े। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वह जानता है कि मैं इस आग में गिरना चाहता हूँ, जिससे मर जाऊँगा या मरने के समान दुःख भोगूँगा।

भिक्षुओ ! इसी तरह, भिक्षु को आग की ढेर जैसा कामों के प्रति दृष्टि होती है जिससे कामों को देख उसे उनमें छन्द = स्नेह = मूर्च्छा = परिलाह नहीं होता है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु का ऐसा आचार-विचार होता है जिससे लोभ, दौर्मनस्य इत्यादि पापमय अकुशल धर्म उसमें नहीं पैठ सकते ? भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष एक कण्टकमय वन में पैठे। उसके आगे-पीछे, दाँये-बाये, ऊपर-नीचे काँटे ही काँटे हों। वह हिले-डोले भी नहीं—कहीं मुझे काँटा न चुभे।

भिक्षुओ ! इसी तरह, संसार के जो प्यारे और लुभावने रूप हैं आर्यविनय में कण्टक कहे जाते हैं।

इसे जान, संयम और असंयम जानने चाहियें।

भिक्षुओ ! कैसे असंयत होता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षु से प्रिय रूप देख उसके प्रति मूर्च्छित हो जाता है। अप्रिय रूप देख खिन्न होता है। आत्मचिन्तन न करते हुए चंचल चित्त से विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जानता है, जिससे उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। श्रोत्र से शब्द सुन···मन से धर्मों को जान···। भिक्षुओ ! इस तरह असंयत होता है।

भिक्षुओ ! कैसे संयत होता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षु से प्रिय रूप देख उनके प्रति मूर्च्छित नहीं होता है। अप्रिय रूप देख खिन्न नहीं होता है। आत्म-चिन्तन करते हुए अप्रमत्त चित्त से विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है जिससे उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। श्रोत्र··· मन···। भिक्षुओ ! इस तरह, संयत होता है।

भिक्षुओ ! इस प्रकार रहते हुए, कभी कहीं असावधानी से बन्धन में डालनेवाले, चंचल संकल्प वाले, पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, तो वह शीघ्र ही उन्हें निकाल देता है, मिटा देता है।

भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष दिन भर तपाये हुए लोहे के कड़ाह में दो या तीन पानी के छींटे दे दे। भिक्षुओ ! कड़ाह में छींटे पड़ते ही सूखकर उड़ जायँ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कभी कहीं असावधानी से बन्धन में डालनेवाले, चंचल संकल्पवाले, पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं, तो वह शीघ्र ही उन्हें··· मिटा देता है।

भिक्षुओ ! ऐसा ही भिक्षु का आचार-विचार होता है जिससे लोभ, दौर्मनस्य इत्यादि पापमय अकुशल धर्म उसमें नहीं पैठ सकते हैं। भिक्षुओ ! यदि इस प्रकार विहार करने वाले भिक्षु को राजा, मन्त्री, मित्र, सलाहकार या सम्बन्धी सांसारिक लोभ देकर बुलावें—अरे ! पीले कपड़े में क्या रक्खा है, माथा मुड़ा कर फिरने से क्या !! आओ, गृहस्थ बन संसार का भोग करो और पुण्य कमाओ—तो वह शिक्षा को छोड़ गृहस्थ बन जायगा—ऐसा सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! जैसे, गंगा नदी पूरब की ओर बहती है। तब, कोई एक बड़ा जन-समुदाय कुदाल और टोकरी लेकर आवे कि—हम गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा देंगे। भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, वे गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा सकेंगे ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, उसे पच्छिम की ओर बहाना आसान नहीं। उस जन-समुदाय का परिश्रम व्यर्थ जायगा, उन्हें निराश होना पड़ेगा।

भिक्षुओ ! वैसे ही यदि इस प्रकार विहार करने वाले भिक्षु को राजा, मन्त्री, सलाहकार या सम्बन्धी सांसारिक भोगों का लोभ देकर बुलावें—अरे ! पीले कपड़े में क्या रक्खा है, माथा मुड़ा कर फिरने से क्या !! आओ गृहस्थ बन संसार का भोग करो और पुण्य कमाओ—तो वह शिक्षा को छोड़

गृहस्थ बन जायगा—ऐसा सम्भव नहीं। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि उसका चित्त दीर्घकाल से विवेक की ओर लगा, विवेक की ओर झुका रहा है। वह भिक्षुभाव छोड़ गृहस्थ बन जायगा ऐसा सम्भव नहीं। -

§ ८. किंसुक सुत्त (३४. ४. ४. ८)

दर्शन की शुद्धि

तब, एक भिक्षु जहाँ दूसरा भिक्षु था वहाँ आया और बोला, "आवुस! किसी भिक्षु का दर्शन (= परमार्थ की समझ) कैसे शुद्ध होता है?"

आवुस! यदि भिक्षु छः स्पर्शायतनोंके समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता हो तो उतने से उसका दर्शन शुद्ध होता है।

तब, वह भिक्षु उस भिक्षु के उत्तर से असंतुष्ट हो जहाँ दूसरा भिक्षु था वहाँ गया, और बोला, 'आवुस! किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है?'

आवुस! यदि भिक्षु पाँच उपादान स्कन्धों के समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता हो, तो उतने से उसका दर्शन शुद्ध होता है।

तब, वह भिक्षु उस भिक्षु के उत्तर से भी असंतुष्ट हो जहाँ दूसरा भिक्षु था वहाँ गया, और बोला, "आवुस! किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है?"

आवुस! यदि भिक्षु चार महाभूतों के समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता हो ''।

तब, वह भिक्षु ''"आवुस! किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है?

आवुस! यदि भिक्षु जानता हो 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (= समुदय धर्मा) है सभी लय होनेवाला (निरोध धर्मा) है' तो उतने से उसका दर्शन शुद्ध होता है।

तब, वह भिक्षु उस भिक्षु के उत्तर से भी असंतुष्ट हो जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते! मैं जहाँ दूसरा भिक्षु था वहाँ गया और बोला—आवुस! किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है? भन्ते! इस पर, वह भिक्षु मुझसे बोला—आवुस! यदि भिक्षु छः स्पर्शायतनोंके समुदय और अस्त होने को यथार्थतः जानता हो, तो उतने से उसका दर्शन शुद्ध होता है।''' आवुस! यदि भिक्षु जानता हो 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला है सभी लय होनेवाला है' तो उतने से उसका दर्शन शुद्ध होता है। भन्ते! सो मैं उसके उत्तर से भी असंतुष्ट हो भगवान् के पास आया हूँ। भन्ते! किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है?

भिक्षु! जैसे, किंसुक (फूल) को किसी मनुष्य ने देखा नहीं हो। वह किसी दूसरे मनुष्य के पास जाय जिसने किंसुक फूल को देखा है। जाकर उस मनुष्य से कहे, 'हे! किंसुक फूल कैसा होता है? वह ऐसा कहे, 'हे! किंसुक काला होता है, जैसे झुलसा ठूँठ' "भिक्षु! उस समय किंसुक वैसा ही होगा जैसा उसने देखा था। तब, वह मनुष्य उसके उत्तर से असंतुष्ट हो जहाँ दूसरा किंसुक को देखने वाला मनुष्य हो वहाँ जाय और पूछे, हे! किंसुक कैसा होता है?' वह ऐसा कहे, 'हे! किंसुक लाल होता है, जैसे मांस का टुकड़ा।' '''तब वह मनुष्य उसके उत्तर से भी असंतुष्ट हो जहाँ दूसरा किंसुक को देखने वाला हो वहाँ जाय और पूछे, 'हे! किंसुक कैसा होता है? वह ऐसा कहे, 'हे किंसुक खिलकर फरा लटका होता है।' भिक्षु! उस समय किंसुक वैसा ही होगा जिसे उसने देखा था। तब, वह मनुष्य उसके उत्तर से भी असंतुष्ट हो''। वह ऐसा कहे, 'हे! किंसुक डाल-पात से बड़ा घना होता है, जैसे बड़ का वृक्ष।' भिक्षु! उस समय किंसुक वैसा ही होगा जिसे उसने देखा था।

भिक्षु! इसी तरह, उन सत्पुरुषों की जैसी जैसी अपनी पहुँच थी वैसा ही होगा जिसे उसने देखा था।

भिक्षु ! इसी तरह, उन सत्पुरुषों की जैसी जैसी अपनी पहुँच थी वैसा ही दर्शन का शुद्ध होना बतलाया।

भिक्षु ! जैसे राजा का सीमा पर का नगर छः दरवाजों वाला, सुदृढ़ आकार और तोरण वाला हो। उसका दौवारिक बड़ा चतुर और समझदार हो। अनजान लोगों को भीतर आने से रोक देता हो, और जाने लोगों को भीतर आने देता हो। तब, पूरब दिशा से कोई राजकीय दो दूत आकर दौवारिक से कहें, 'हे पुरुष ! इस नगर के स्वामी कहाँ हैं ?' वह ऐसा उत्तर दे, "वे बिचली चौक पर बैठे हैं।" तब, वे दूत नगर-स्वामी के सच्चे समाचार को जान जिधर से आये थे उधर ही लौट जायँ। पश्चिम दिशा···उत्तर दिशा···।

भिक्षु ! मैंने कुछ बात समझाने के लिये यह उपमा कही है। भिक्षु ! बात यह है।

भिक्षु ! नगर से चार महाभूतों से बने इस शरीर का अभिप्राय है—माता-पिता से उत्पन्न हुआ, भात-दाल से पला-पोसा, अनित्य जिसे नहाते धोते और मलते हैं, और नष्ट हो जाना जिसका धर्म है।

भिक्षु ! छः दरवाजों से छः आध्यात्मिक आयतनों का अभिप्राय है।

भिक्षु ! दौवारिक से स्मृति का अभिप्राय है।

भिक्षु ! दो दूतों से समथ और विदर्शना का अभिप्राय है।

भिक्षु ! नगर-स्वामी से विज्ञान का अभिप्राय है।

भिक्षु ! बिचली चौक से चार महाभूतों का अभिप्राय है। पृथ्वी; जल, तेज और वायु।

भिक्षु ! सच्ची बात से निर्वाण का अभिप्राय है।

भिक्षु ! जिधर से आये थे, इससे आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभिप्राय है। सम्यक् दृष्टि····· सम्यक् समाधि।

§ ९. वीणा सुत्त (३४. ४. ४. ९)

रूपादि की खोज निरर्थक, वीणा की उपमा

भिक्षुओ ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी को चक्षुविज्ञेय रूपों में छन्द, राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या उत्पन्न होती हों उनसे चित्त को रोकना चाहिये। यह मार्ग भयवाला है, कण्टकवाला है बड़ा गहन है, उखड़ा-खबड़ा है, कुमार्ग है, और खतरावाला है। यह मार्ग बुरे लोगों से सेवित है, अच्छे लोगों से नहीं। यह मार्ग तुम्हारे योग्य नहीं है। उन चक्षुविज्ञेय रूपों से अपने चित्त को रोको।

श्रोत्रविज्ञेय शब्दों में···मनोविज्ञेय धर्मों में···।

भिक्षुओ ! जैसे किसी लगे खेत का रखवाला आलसी हो तब कोई परका बैल छूट कर एक खेत से दूसरे खेत में धान खाय। भिक्षुओ ! इसी तरह कोई अज्ञ पृथक् जन छः स्पर्शायतनों में असंयत पाँच कामगुणों में छूट कर मतवाला हो जाय।

भिक्षुओ ! जैसे, किसी लगे खेत का रखवाला सावधान हो। तब कोई परका बैल धान खाने के लिए खेत में उतरे। खेत का रखवाला उसके नथ को पकड़कर उसे ऊपर ले आवे और अच्छी तरह लाठी से पीटकर छोड़ दे।

भिक्षुओ ! दूसरी बार भी···।

भिक्षुओ ! तीसरी बार भी···। ···लाठी से पीटकर छोड़ दे।

भिक्षुओ ! तब वह, बैल गाँव में या जंगल में चरा करे या बैठा रहे, किन्तु उस लगे खेत में कभी न पैठे। उसे लाठी की पीट बराबर याद रहे।

भिक्षुओ ! इसी तरह, जब भिक्षु का चित्त छः स्पर्शायतनों में सीधा हो जाता है, तो वह आध्यात्म में ही रहता या बैठता है। उसका चित्त एकाग्र समाधि के योग्य होता है।

भिक्षुओ ! जैसे, किसी राजा या मन्त्री ने पहले वीणा कभी नहीं सुनी हो। वह वीणा की आवाज सुने। वह ऐसा कहे—अरे ! यह कैसी आवाज है, इतनी अच्छी, इतनी सुन्दर, इतना मतवाला बना देने वाली, इतना मूर्च्छित कर देने वाली, इतना चित्त को खींच लेने वाली ?

उसे लोग कहें—भन्ते ! यह वीणा की आवाज है जो···इतना चित्त को खींच लेने वाली है।

वह ऐसा कहे—जाओ, उस वीणा को ले आओ।

लोग उसे वीणा ला कर दें और कहें—भन्ते ! वह यही वीणा है जिसकी आवाज···इतना चित्त को खींच लेने वाली है।

वह ऐसा कहे—मुझे उस वीणा से दरकार नहीं, मुझे यह आवाज ला दो।

लोग उसे कहें—भन्ते ! वीणा के अनेक सम्भार हैं। अनेक सम्भारों के जुटने पर वीणा से आवाज निकलती है। जैसे द्रोणी, चर्म, दण्ड, उपवेण, तार और बजाने वाले पुरुष के व्यायाम के प्रत्यय से वीणा बजती है।

वह उस वीणा को दस या सौ टुकड़ों में फाड़ दे। फाड़ कर उसे छोटे छोटे टुकड़े कर दे। छोटे छोटे टुकड़े करके आग में जला दे। जला कर उसे राख बना दे। राख बना कर उसे हवा में उड़ा दे या नदी की धारा में बहा दे।

वह ऐसा कहे—अरे ! वीणा रद्दी चीज है। लोग इसके पीछे व्यर्थ में इतना मुग्ध हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु रूप की खोज करता है। जब तक रूप की गति है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···। इस प्रकार, उसके अहंकार, ममंकार और अस्मिता नहीं रह पाती हैं।

§ १०. छपाण सुत्त (३४. ४. ४. १०)

संयम और असंयम, छः जीवों की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई घाव से भरा पके शरीर वाला पुरुष सरकी के जंगल में पैठे। उसके पैर में कुश-काँटे गड़ जायँ, घाव से पका शरीर छिल जाय। भिक्षुओ ! इस तरह, उसे बहुत कष्ट सहना पड़े।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कोई भिक्षु गाँव में या आरण्य में कहीं भी किसी न किसी से बात सुनता ही है—इसने ऐसा किया है, इसकी ऐसी चाल-चलन है, यह नीच गाँव का मानो काँटा है। इसे देख, उसके संयम का, असंयम का पता लगा लेना चाहिये।

भिक्षुओ ! कैसे असंयत होता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षु से रूप देख प्रिय रूपों के प्रति मूर्च्छित हो जाता है···[देखो ३४ ४. ४. ७] वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जानता है, जिससे उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष छः प्राणियों को ले भिन्न भिन्न स्थान पर रस्सी से कस कर बाँध दे। साँप को पकड़ रस्सी से कसकर बाँध दे। सुंसुमार (= मगर) को पकड़ रस्सी से कसकर बाँध दे। पक्षी को···। कुत्ता को···। सियार को···। बानर को···।

रस्सी से कसकर बाँध बीच में गाँठ देकर छोड़ दे। भिक्षुओ ! तब, वे छः प्राणी अपने अपने स्थान पर भाग जाना चाहें। साँप बल्मीक में घुस जाना चाहे, सुंसुमार पानी में पैठ जाना चाहे, पक्षी आकाश में उड़ जाना चाहे, कुत्ता गाँव में भाग जाना चाहे, सियार श्मशान में भागना चाहे, बानर जंगल में भाग जाना चाहे।

भिक्षुओ ! जब सभी इस तरह थक जायँ, तो शेष उसी के पीछे चलें जो सभी में बलवाला हो—उसी के वश में हो जायँ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिसकी कायगता-स्मृति सुभावित, = अभ्यस्त नहीं होती है, उसे चक्षु प्रिय

रूपों की ओर ले जाता है और अप्रिय रूपों से हटाता है।···। मन प्रिय धर्मों की ओर ले जाता है और अप्रिय धर्मों से हटाता है।

भिक्षुओ ! इसी तरह असंयत होता है।

भिक्षुओ ! कैसे संयत होता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षु से रूप देख प्रिय रूपों के प्रति मूर्च्छित नहीं होता है···[देखो ३४. ४. ४. ७] वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है, जिससे उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे [छः प्राणियों की उपमा ऊपर जैसी ही]

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिसकी कायगता-स्मृति सुभावित = अभ्यस्त होती है, उसे चक्षु प्रिय रूपों की ओर नहीं ले जाता है और अप्रिय रूपों से नहीं हटाता है।···। मन प्रिय धर्मों की ओर नहीं ले जाता है और अप्रिय धर्मों से नहीं हटाता है।

भिक्षुओ ! इसी तरह संयत होता है।

भिक्षुओ ! 'दृढ़ खील में' या खम्भे में इससे कायगता स्मृतिका अभिप्राय है। भिक्षुओ ! इसलिये तुम्हें सीखना चाहिये—कायगता स्मृति की भावना करूँगा, अभ्यास करूँगा···अनुष्ठान करूँगा, परिचय करूँगा···। भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये।

§ ११. यवकलापि सुत्त (३४. ४. ४. ११)

मूर्ख यव के समान पीटा जाता है

भिक्षुओ ! जैसे, यव के बोझे* बीच चौराहे में पड़े हों। तब छः पुरुष हाथ में डण्डा† लिये आवें। वे छः डण्डों से यव के बोझों को पीटें। भिक्षुओ ! इस प्रकार, यव के बोझे छः डण्डों से खूब पीट जायँ। तब, एक सातवाँ पुरुष भी हाथ में डण्डा लिये आवे वह उस यव के बोझे को सातवें डण्डे से पीटे। भिक्षुओ ! इस प्रकार, यव का बोझा सातवें डण्डे से और भी अच्छी तरह पीट जाय।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ पृथक् जन प्रिय-अप्रिय रूपों से चक्षु में पीटा जाता है।···प्रिय-अप्रिय धर्मों से मन में पीटा जाता है ; भिक्षुओ ! यदि वह अज्ञ पृथक् जन इस पर भी भविष्य में बने रहने की इच्छा करता है, तो इस तरह वह मूर्ख और भी पीटा जाता है, जैसे यव का बोझा उस सातवें डण्डे से।

भिक्षुओ ! पूर्व काल में देवासुर-संग्राम छिड़ा था। तब, वेपचित्ति असुरेन्द्र ने असुरों को आमन्त्रित किया—हे असुरो ! यदि इस संग्राम में देवों की हार हो और असुर जीत जावें, तो तुम में जो सके देवेन्द्र शक्र को गले में पाँचवीं फाँस लगाकर असुर-पुर पकड़ ले आवे। भिक्षुओ ! देवेन्द्र शक्र ने भी देवों को आमन्त्रित किया—हे देवो ! यदि इस संग्राम में असुरों की हार हो और देव जीत जावें, तो तुममें जो सके असुरेन्द्र वेपचित्ति को गले में पाँचवीं फाँस लगाकर सुधर्मा देवसभा में ले आवे।

उस संग्राम में देवों की जीत हुई और असुर हार गये। तब त्रयस्त्रिंस देव असुरेन्द्र वेपचित्ति को गले में पाँचवीं फाँस लगा कर देवेन्द्र शक्र के पास सुधर्मा देवसभा में ले आये।

भिक्षुओ ! वहाँ, असुरेन्द्र वेपचित्ति गले में पाँचवीं फाँस से बँधा था। भिक्षुओ ! जब असुरेन्द्र वेपचित्ति के मन में यह होता था—यह असुर अधार्मिक हैं, देव धार्मिक हैं, मैं इसी देवपुर में रहूँ—तब वह अपने को गले की पाँचवीं फाँस से मुक्त पाता था। दिव्य पाँच कामगुणों का भोग करने लगता था। और जब उसके मन में ऐसा होता था—असुर धार्मिक हैं, देव अधार्मिक हैं, मैं असुरपुर चल चलूँ—तब वह अपने को गले की पाँचवीं फाँस से बँधा पाता था। वह दिव्य पाँच कामगुणों से गिर जाता था।

---

* व्याभङ्गिहत्था=बँहगी हाथ में लिये हुए—अट्ठकथा।

† काट कर रखा यव का ढेर—अट्ठकथा।

भिक्षुओ ! वेपचित्ति की फाँस इतनी सूक्ष्म थी। किंतु, मार की फाँस उससे कहीं अधिक सूक्ष्म है। केवल कुछ मान लेने से ही मार की फाँस में पड़ जाता है, और केवल कुछ नहीं मानने से ही उसकी फाँस से छूट जाता है। भिक्षुओ ! 'मैं हूँ' ऐसा मान लेने से, "यह मैं हूँ" ऐसा मान लेने से, "यह हूँगा" ऐसा मान लेने से, "यह नहीं हूँगा" ऐसा मान लेने से, "रूप वाला हूँगा" ऐसा मान लेनेसे, "बिना रूप वाला हूँगा" ऐसा मान लेने से, "संज्ञावाला···, बिना संज्ञा वाला···, न संज्ञा वाला और न बिना संज्ञा वाला···"···भिक्षुओ ! इसलिये, बिना मनमें ऐसा कुछ माने विहार करो।

भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये—"मैं हूँ, यह मैं हूँ···न संज्ञा वाला और न बिना संज्ञा वाला हूँ" यह सब केवल मनकी चंचलता मात्र हैं। भिक्षुओ ! तुम्हें चंचलता वाले मनसे विहार करना नहीं चाहिये। भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये :—"···न संज्ञा वाला और न बिना संज्ञा वाला हूँ" यह सब झूठा फंदा है। भिक्षुओ ! तुम्हें फंदा में पड़े चित्त से विहार करना नहीं चाहिये।···यह सब झूठा प्रपञ्च है। भिक्षुओ ! तुम्हें प्रपञ्च में पड़े चित्त से विहार करना नहीं चाहिये।·· यह सब झूठा अभिमान है। भिक्षुओ ! तुम्हें अभिमान में पड़े चित्त से विहार करना नहीं चाहिये।

भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

आशीविष वर्ग समाप्त

चतुर्थ पण्णासक समाप्त।

दूसरा परिच्छेद

३४. वेदना-संयुत्त

पहला भाग

सगाथा वर्ग

§ १. समाधि सुत्त (३४. ५. १. १)

तीन प्रकार की वेदना

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं। कौन सी तीन ? सुख देनेवाली वेदना, दुःख देनेवाली वेदना, न दुःख न सुख देनेवाली (= अदुःख–सुख) वेदना। भिक्षुओ ! यही तीन वेदना हैं।

समाहित, संप्रज्ञ, स्मृतिमान् बुद्ध का श्रावक,
वेदना को जानता है, और वेदना की उत्पत्ति को ॥१॥
जहाँ ये निरुद्ध होती हैं उसे, और क्षयगामी मार्ग को,
वेदनाओं के क्षय होने से, भिक्षु वितृष्ण हो परिनिर्वाण पा लेता है ॥२॥

§ २. सुखाय सुत्त (३४. ५. १. २)

तीन प्रकार की वेदना

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं···।

सुख, या यदि दुःख, या अदुःख-सुख वाली,
आध्यात्म, या बाह्य, जो कुछ भी वेदना है ॥१॥
सभी को दुःख ही जान, विनाश होनेवाले, उखड़ जाने वाले,
इसे अनुभव कर करके उससे विरक्त होता है ॥२॥

§ ३. पहाण सुत्त (३४. ५. १. ३)

तीन प्रकार की वेदना

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं···

भिक्षुओ ! सुख देनेवाली वेदना के राग का प्रहाण करना चाहिये। दुःख देनेवाली वेदना की खिन्नता (= प्रतिघ) का प्रहाण करना चाहिये। अदुःख-सुख वेदना की अविद्या का प्रहाण करना चाहिये।

भिक्षुओ ! जब भिक्षु···इस प्रकार प्रहाण कर देता है तो वह प्रहीण-रागानुशय, ठीक ठीक देखनेवाला, और तृष्णा को काट देनेवाला कहा जाता है। उसने (दस प्रकार के) संयोजनों को निर्मूल कर दिया। अच्छी तरह मान को पहचान दुःख का अन्त कर दिया।

सुख वेदना का अनुभव करने वाले, वेदना को नहीं जानने वाले,
तथा मोक्ष को नहीं देखने वाले का वह रागानुशय होता है ॥१॥

दुःख वेदना का अनुभव करने वाले, वेदना को नहीं जानने वाले,
तथा मोक्ष को नहीं देखने वाले का वह प्रतिघानुशय (=द्वेष=खिन्नता) होता है ॥२॥
अदुःख-सुख, शान्त, महाज्ञानी (बुद्ध) से उपदेश किया गया,
उसका भी जो अभिनन्दन करता है, वह दुःख से नहीं छूटता ॥३॥
जब, भिक्षु क्लेशों को तपाने वाला, संप्रज्ञ-भाव को नहीं छोड़ता है,
तब वह पण्डित सभी वेदना को जान लेता है ॥४॥
वह वेदनाओं को जान, अपने देखते ही देखते अनाश्रव हो,
धर्मात्मा पण्डित मरने के बाद, फिर राग, द्वेष या मोह में नहीं पड़ता ॥५॥

§ ४. पाताल सुत्त (३४. ५. १. ४)

पाताल क्या है ?

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक् जन ऐसा कहा करते हैं—"महासमुद्र में पाताल (=जिसका तल नहीं हो) है।" भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक्जन का ऐसा कहना झूठ है। यथार्थतः महासमुद्र में पाताल कोई चीज नहीं।

भिक्षुओ ! पाताल से शारीरिक दुःख वेदना का ही अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक्जन शारीरिक दुःख वेदना से पीड़ित हो शोक करता है, परेशान होता है, रोता-पीटता है, छाती पीट-पीट कर रोता है, सम्मोहन को प्राप्त होता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि अज्ञ=पृथक्जन पाताल में जा लगा, उसे थाह नहीं मिला।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक शारीरिक दुःखवेदना से पीड़ित हो शोक नहीं करता है···सम्मोह को नहीं प्राप्त होता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि पण्डित आर्यश्रावक पाताल में जा लगा और उसने थाह पा लिया।

जो उत्पन्न इन दुःख वेदनाओं को नहीं सह लेता है,
शारीरिक, प्राण हरनेवाली, जिनसे पीड़ित हो काँपता है।
अधीर दुर्बल रोता है और काँदता है,
वह पाताल में लग थाह नहीं पाता है ॥१॥
जो उत्पन्न इन दुःख वेदनाओं को सह लेता है,
शारीरिक, प्राण हरनेवाली, जिनसे पीड़ित हो नहीं काँपता है।
वह पाताल में लग थाह पा लेता है ॥२॥

§ ५. दट्ठब्ब सुत्त (३४. ५. १. ५)

तीन प्रकार की वेदना

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं। कौन सी तीन ? सुख वेदना, दुःख वेदना, अदुःख-सुख वेदना। भिक्षुओ ! सुख वेदना को दुःख के तौर पर समझना चाहिये। दुःख वेदना को घाव के तौर पर समझना चाहिये। अदुःख-सुख वेदना को अनित्य के तौर पर समझना चाहिये।

भिक्षुओ !···इस प्रकार समझने से वह भिक्षु ठीक ठीक देखनेवाला कहा जाता है—उसने तृष्णा को काट दिया, संयोजनों को हटा दिया, मान को पूरा पूरा जान दुःख का अन्त कर दिया।

जिसने सुख को दुःख कर के जाना, और दुःख को घाव कर के जाना,
शान्त अदुःख-सुख को अनित्य कर के देखा,
वही भिक्षु ठीक ठीक देखनेवाला है, वेदनाओं को पहचानता है,

वह वेदनाओं को जान, अपने देखते देखते अनाश्रव हो,
ज्ञानी, धर्मात्मा, मरने के बाद राग, द्वेष, और मोह में नहीं पड़ता ॥

§ ६. सल्लत्त सुत्त (३४. ५. १. ६)

पण्डित और मूर्ख का अन्तर

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक् जन सुख वेदना का अनुभव करता है। दुःख वेदना का अनुभव करता है, अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक भी सुख वेदना का अनुभव करता है, दुःख वेदना का अनुभव करता है, अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! तो, पण्डित आर्यश्रावक और अज्ञ पृथक् जन में क्या भेद हुआ ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! अज्ञ पृथक् जन दुःख वेदना से पीड़ित होकर शोक करता है···सम्मोह को प्राप्त होता है। (इस तरह,) वह दो वेदनाओं का अनुभव करता है—शारीरिक और मानसिक।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष भाला से छिद जाय। उसे कोई दूसरा भाला भी मार दे। भिक्षुओ ! इसी तरह वह दो दुःखद वेदनाओं का अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, अज्ञ पृथक् जन दुःख वेदना से पीड़ित होकर शोक करता है···सम्मोह को प्राप्त होता है। इस तरह, वह दो वेदनाओं का अनुभव करता है—शारीरिक और मानसिक। उसी दुःख वेदना से पीड़ित होकर खिन्न होता है। वह दुःख वेदना से पीड़ित हो काम-सुख पाना चाहता है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि अज्ञ पृथक् जन काम-सुख को छोड़ दूसरा दुःख से छूटने का उपाय नहीं जानता है। काम-सुख चाहते हुये उसे सुख वेदना में राग पैदा हो जाता है। वह उन वेदनाओं के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है। इस तरह, उसे अदुःख-सुख की जो अविद्या है वह होती है। वह दुःख, सुख या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव आसक्त हो कर करता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि अज्ञ पृथक्जन जाति, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास से संयुक्त है।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक दुःख वेदना से पीड़ित हो शोक नहीं करता···सम्मोह को नहीं प्राप्त होता। वह एक ही वेदना का अनुभव करता है—शारीरिक का, मानसिक का नहीं।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष भाला से छिद जाय। उसे कोई दूसरा भी भाला न मारे। इस तरह, वह एक ही दुःखद वेदना का अनुभव करता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, पण्डित आर्यश्रावक दुःख वेदना से पीड़ित हो शोक नहीं करता···सम्मोह को नहीं प्राप्त होता। वह एक ही वेदना का अनुभव करता है—शारीरिक का, मानसिक का नहीं। वह दुःख वेदना से पीड़ित हो कर खिन्न नहीं होता है। वह दुःख वेदना से पीड़ित हो काम-सुख पाना नहीं चाहता है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, पण्डित आर्यश्रावक काम-सुख को छोड़ दूसरा दुःख से छूटने का उपाय जानता है। काम-सुख नहीं चाहते हुये उसे सुख वेदना में राग पैदा नहीं होता। वह उन वेदनाओं के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है। इस तरह, उसे अदुःख-सुख की जो अविद्या है वह नहीं होती। वह दुःख, सुख, या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव अनासक्त होकर करता है। भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि अज्ञ पृथक् जन जाति···उपायास से असंयुक्त है।

भिक्षुओ ! पण्डित आर्यश्रावक और पृथक् जन में यही भेद है।

प्रज्ञावान् बहुश्रुत सुख या दुःख वेदना के अनुभव में नहीं पड़ता,
धीर पुरुष और पृथक् जन में यही एक बड़ा भेद है ॥

पण्डित, जिसने धर्म को जान लिया है,
लोक की और इसके पार की बात को देख लिया है,
उसके चित्त को अभीष्ट धर्म विचलित नहीं करते,
अनिष्ट धर्मों से भी वह खिन्न नहीं होता ॥
उसके अनुरोध से अथवा विरोध से,
उसके परमार्थ भरे नहीं हैं,
निर्मल, शोकरहित पद को जान,
वह संसार के पार को अच्छी तरह जान लेता है ॥

§ ७. पठम गेलञ्ञ सुत्त (३४. ५. १. ७)

समय की प्रतीक्षा करे

एक समय, भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे ।

तब, भगवान् संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ ग्लानशाला (=रोगियों के रखने का घर) थी वहाँ गये । जाकर, बिछे आसन पर बैठ गये । बैठकर, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! भिक्षु स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो अपने समय की प्रतीक्षा करे । यही मेरी शिक्षा है ।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुदर्शी होकर विहार करता है—अपने क्लेशों को तपानेवाला, संप्रज्ञ, स्मृतिमान्, संसार के लोभ और दौर्मनस्य को दबाकर । वेदना में वेदनानुदर्शी… चित्त में…धर्म में धर्मानुदर्शी…। भिक्षुओ ! इसी तरह भिक्षु स्मृतिमान् होता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे संप्रज्ञ होता है !

भिक्षुओ ! भिक्षु जाने-आने में सचेत रहता है, देखने भालने में सचेत रहता है । समेटने-पसारने में सचेत रहता है । संघाटी, पात्र और चीवर धारण करने में सचेत रहता है । पखाना-पेशाब करने में सचेत रहता है । जाते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, कहते, चुप रहते सचेत रहता है । भिक्षुओ ! इस तरह भिक्षु संप्रज्ञ होता है ।

भिक्षुओ ! भिक्षु स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो अपने समय की प्रतीक्षा करे । यही मेरी शिक्षा है ।

भिक्षुओ !…इस प्रकार विहार करनेवाले भिक्षु को सुख वेदनायें उत्पन्न होती हैं । वह जानता है—मुझे यह सुख वेदना उत्पन्न हो रही है । वह किसी प्रत्यय (= कारण) से ही, बिना प्रत्यय के नहीं । किसके प्रत्यय से ? इसी काया के प्रत्यय से । यह काया अनित्य, संस्कृत, (= बना हुआ) किसी प्रत्यय से ही उत्पन्न हुआ है । अनित्य और संस्कृत काया के प्रत्यय से उत्पन्न हुई सुख-वेदना कैसे नित्य होगी ? अतः वह काया में और सुख-वेदना में अनित्य-बुद्धि रखता है, वे नष्ट हो जानेवाली हैं—ऐसा समझता है । उनके प्रति राग-रहित होता है । वे निरुद्ध हो जानेवाली हैं—ऐसा समझता है । इस प्रकार विहार करने से उसको काया और सुख वेदना में जो राग है वह प्रहीण हो जाता है ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार विहार करने वाले भिक्षुको दुःख-वेदनायें उत्पन्न होती हैं । वह जानता है—मुझे यह दुःख वेदना उत्पन्न हो रही है । वह किसी प्रत्यय से ही… । अतः वह काया से और दुःख वेदना में अनित्य-बुद्धि रखता है ।…इस प्रकार विहार करने से उसको काया और दुःखवेदना में जो खिन्नता है वह प्रहीण हो जाती है ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार विहार करनेवाले भिक्षु को अदुःख-सुख वेदनायें उत्पन्न होती हैं ।…अतः वह काया में और अदुःख-सुख वेदना में अनित्य-बुद्धि रखता है ।…इस प्रकार विहार करने से उसको काया और अदुःख-सुख वेदना में जो अविद्या है वह प्रहीण हो जाती है ।

यदि वह सुख वेदना का अनुभव करता है तो जानता है कि यह अनित्य है। इसमें नहीं लगना चाहिये—यह जानता है। इसका अभिनन्दन नहीं करना चाहिये—यह जानता है।

यदि वह दुःख वेदना का अनुभव करता है तो जानता है···।

यदि वह अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है तो जानता है···।

यदि वह सुख, दुःख या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है तो अनासक्त होकर।

वह शरीर भर की वेदना का अनुभव करते जानता है कि मैं शरीर भर की वेदना का अनुभव कर रहा हूँ। जीवित पर्यन्त वेदना का अनुभव करते जानता है कि मैं जीवित पर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ। मरने के बाद यहीं सभी वेदनायें ठंढी होकर रह जायँगी—यह जानता है।

भिक्षुओ! जैसे, तेल और बत्ती के प्रत्यय से तेल-प्रदीप जलता है। उसी तेल और बत्ती के नहीं जुटने से प्रदीप बुझ जायगा।

भिक्षुओ! वैसे ही, भिक्षु शरीर भर की वेदना का अनुभव करते जानता है कि मैं शरीर भर की वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।···मरने के बाद यहीं सभी वेदनायें ठंढी होकर रह जायँगी—यह जानता है।

§ ८. दुतिय गेलञ्ञ सुत्त (३४. ५. १. ८)

समय की प्रतीक्षा करे

['काया' के बदले "स्पर्श" करके ऊपर जैसा ही]

§ ९. अनिच्च सुत्त (३४. ५. १. ९)

तीन प्रकार की वेदना

भिक्षुओ! यह तीन वेदनायें अनित्य, संस्कृत, कारण से उत्पन्न (=प्रतीत्य समुत्पन्न), क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, विरागधर्मा और निरोध-धर्मा हैं।

कौन-सी तीन? सुखवेदना, दुःखवेदना, अदुःख-सुख वेदना।

भिक्षुओ! यह तीन वेदनायें अनित्य···।

§ १०. फस्समूलक सुत्त (३४. ५. १. १०)

स्पर्श से उत्पन्न वेदनायें

भिक्षुओ! यह तीन वेदनायें स्पर्श से उत्पन्न होती हैं, स्पर्श ही इनका मूल है, स्पर्श ही इनका निदान = प्रत्यय है।···

भिक्षुओ! सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुखवेदना उत्पन्न होती है। उसी सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से उससे उत्पन्न होनेवाली सुखवेदना निरुद्ध हो जाती है। वह शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ! दुःखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःखवेदना उत्पन्न होती है। उसी दुःखवेदनीय स्पर्श के निरोध से उससे उत्पन्न होनेवाली दुःखवेदना निरुद्ध हो जाती है। वह शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ! अदुःख-सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से अदुःखसुख वेदना उत्पन्न होती है। उसी अदुःख-सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध से उससे उत्पन्न होनेवाली अदुःख-सुख वेदना निरुद्ध हो जाती है। वह शान्त हो जाती है।

भिक्षुओ! इस तरह, यह तीन वेदनायें स्पर्श से उत्पन्न होती हैं···। उस-उस स्पर्श के प्रत्यय से वह-वह वेदना उत्पन्न होती है। उस-उस स्पर्श के निरोध से उस-उस से उत्पन्न होनेवाली वेदना निरुद्ध हो जाती है।

सगाथा वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

रहोगत वर्ग

§ १. रहोगतक सुत्त (३४. ५. २. १)

संस्कारों का निरोध क्रमशः

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! एकान्त में बैठ ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा—भगवान् ने तीन वेदनाओं का उपदेश किया है, सुखवेदना, दुःखवेदना, और अदुःख-सुख वेदना। भगवान् ने साथ-साथ यह भी कहा है, जितनी वेदनायें हैं सभी को दुःख ही समझना चाहिये। सो, भगवान् ने यह किस मतलब से कहा है कि जितनी वेदनायें हैं सभी को दुःख ही समझना चाहिये ?"

भिक्षु ! ठीक है, मैंने ऐसा कहा है। भिक्षु ! यह मैंने संस्कारों की अनित्यता को लक्ष्य में रख कर कहा है कि जितनी वेदनायें हैं सभी को दुःख ही समझना चाहिये। भिक्षु ! मैंने यह संस्कारों के क्षय-स्वभाव, व्यय-स्वभाव, विराग-स्वभाव, निरोध-स्वभाव, और विपरिणाम-स्वभाव को लक्ष्य में रख कर कहा है कि जितनी वेदनायें हैं सभी को दुःख ही समझना चाहिये।

भिक्षु ! मैंने सिलसिले से संस्कारों का निरोध बताया है। प्रथम ध्यान पाये हुये की वाणी निरुद्ध हो जाती है। द्वितीय ध्यान पाये हुये के वितर्क और विचार निरुद्ध हो जाते हैं। तृतीय ध्यान पाये हुये की प्रीति निरुद्ध हो जाती है। चतुर्थ ध्यान पाये हुये के आश्वास-प्रश्वास निरुद्ध हो जाते हैं। आकाशानन्त्यायतन पाये हुये की रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है। विज्ञानानन्त्यायतन पाये हुये की आकाशानन्त्यायन-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। आकिञ्चन्यायतन पाये हुये की विज्ञानानन्त्यायतन-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। नैवसंज्ञानासंज्ञा पाये हुये की आकिञ्चन्यायतन-संज्ञा निरुद्ध हो जाती है। संज्ञावेदयित निरोध पाये हुये की संज्ञा और वेदना निरुद्ध हो जाती है। क्षीणाश्रव भिक्षु का राग निरुद्ध हो जाता है, द्वेष निरुद्ध हो जाता है, मोह निरुद्ध हो जाता है।

भिक्षु ! मैंने सिलसिले से संस्कारों का इस तरह व्युपशम बताया है। प्रथम ध्यान पाये हुये की वाणी व्युपशान्त हो जाती है।…। क्षीणश्रव भिक्षु का राग व्युपशान्त हो जाता है, द्वेष व्युपशान्त हो जाता है, मोह व्युपशान्त हो जाता है।

भिक्षु ! प्रश्रब्धियाँ छः हैं। प्रथम ध्यान पाये हुये की वाणी प्रश्रब्ध हो जाती है। द्वितीय ध्यान पाये हुये के वितर्क और विचार प्रश्रब्ध हो जाते हैं। तृतीय ध्यान पाये हुये की प्रीति प्रश्रब्ध हो जाती है। चतुर्थ ध्यान पाये हुये के आश्वास-प्रश्वास प्रश्रब्ध हो जाते है। संज्ञावेदयित निरोध पाये हुये की संज्ञा और वेदना प्रश्रब्ध हो जाती हैं। क्षीणाश्रव भिक्षु का राग प्रश्रब्ध हो जाता है, द्वेष प्रश्रब्ध हो जाता है, मोह प्रश्रब्ध हो जाता है।

§ २. पठम आकास सुत्त (३४. ५. २. २)

विविध-वायु की भाँति वेदनायें

भिक्षुओ ! जैसे, आकाश में विविध वायु बहती हैं। पूरब की वायु बहती है। पश्चिम की…।

उत्तर की···। दक्षिण की···। धूल से भरी वायु भी बहती है। धूल से रहित वायु भी बहती है। शीत वायु भी···। गर्म वायु भी···। धीमी वायु भी···। तेज वायु भी···।

भिक्षुओ! वैसे ही, इस शरीर में विविध वेदनायें उत्पन्न होती हैं। सुखवेदना भी उत्पन्न होती है। दुःखवेदना भी उत्पन्न होती है अदुःख-सुख वेदना भी उत्पन्न होती है।

जैसे आकाश में वायु नाना प्रकार की बहती है,
पूरब वाली, पच्छिम वाली, उत्तर वाली और दक्षिण वाली ॥१॥
सरज और अरज भी, कभी कभी शीत और उष्ण,
तेज और धीमी, तरह तरह की वायु बहती हैं ॥२॥
उसी प्रकार इस शरीर में भी, वेदना उत्पन्न होती हैं,
दुःखवाली, सुखवाली, और न दुःख न सुखवाली ॥३॥
जब, क्लेश को तपाने वाला भिक्षु, संप्रज्ञ, उपाधि-रहित होता है।
तब वह पण्डित सभी वेदनाओं को जान लेता है ॥४॥
वेदनाओं को जान, अपने देखते ही देखते अनाश्रव हो,
धर्मात्मा, अपने मरने के बाद रागादि को नहीं प्राप्त होता है ॥५॥

§ ३. दुतिय आकास सुत्त (३४. ५. २. ३)

विविध वायु की भाँति वेदनायें

भिक्षुओ! जैसे, आकाश में विविध वायु बहती हैं। पूरब की वायु बहती है···

भिक्षुओ! वैसे ही, इस शरीर में विविध वेदनायें उत्पन्न होती हैं। दुःख···। अदुःख-सुख वेदना भी उत्पन्न होती है।

§ ४. आगार सुत्त (३४. ५. २. ४)

नाना प्रकार की वेदनायें

भिक्षुओ! जैसे, खुली धर्मशाला। वहाँ पूरब दिशा से आकर लोग वास करते हैं। पश्चिम···। उत्तर···। दक्षिण···। क्षत्रिय भी आकर वास करते हैं। ब्राह्मण···भी···। वैश्य भी···। शूद्र भी···।

भिक्षुओ! वैसे ही, इस शरीर में विविध वेदनायें उत्पन्न होती हैं। सुख वेदना भी उत्पन्न होती है। दुःख वेदना भी उत्पन्न होती है। अदुःख-सुख वेदना भी उत्पन्न होती है।

सकाम (=सामिस) सुख वेदना भी उत्पन्न होती है। सकाम अदुःख-सुख वेदना भी उत्पन्न होती है।

निष्काम (=निरामिस) सुख वेदना भी उत्पन्न होती है। निष्काम दुःख वेदना भी उत्पन्न होती है। निष्काम अदुःख-सुख वेदना भी उत्पन्न होती है।

§ ५. पठम सन्तक सुत्त (३४. ५. २. ५)

संस्कारों का निरोध क्रमशः

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते! वेदना क्या है? वेदना का समुदय क्या है? वेदना का निरोध क्या है? वेदना निरोध-गामी मार्ग क्या है? वेदना का अस्वाद क्या है? वेदना का दोष क्या है? वेदना का मोक्ष क्या है?

आनन्द! वेदना तीन है। सुख, दुःख, अदुःख-सुख। आनन्द! यही वेदना कहलाती है। स्पर्श के समुदय से वेदना का समुदय होता है; स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है। यह आर्य

अष्टांगिक मार्ग ही वेदना-निरोध-गामी मार्ग है। जो, सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि। जो वेदना के प्रत्यय से सुख-सौमनस्य होता है, यह वेदना का आस्वाद है। वेदना अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है, यह वेदना का दोष है। जो वेदना के छन्द-राग का प्रहाण है वह वेदना का मोक्ष है।

आनन्द ! मैंने सिलसिले से संस्कारों का निरोध बताया है।···[देखो ३४. ५. २. १]

क्षीणाश्रव भिक्षुका राग प्रश्रब्ध होता है, द्वेष प्रश्रब्ध होता है, मोह प्रश्रब्ध होता है।

§ ६. दुतिय सन्तक सुत्त (३४. ५. २. ६)

संस्कारों का निरोध क्रमशः

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, आनन्द ! वेदना क्या है ? वेदना का समुदय क्या है ? वेदना का निरोध क्या है ? वेदना का निरोध-गामी मार्ग क्या है ? वेदना का आस्वाद क्या है ? वेदना का दोष क्या है ? वेदना का मोक्ष क्या है ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही हैं; धर्म के नायक भगवान् ही हैं; धर्म के शरण भगवान् ही हैं। अच्छा होता कि भगवान् ही इस बात को समझाते। भगवान् से सुनकर वैसा भिक्षु धारण करेंगे।

आनन्द ! तो, सुनो। अच्छी तरह मन लगाओ। मैं कहूँगा।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—

आनन्द ! वेदना तीन हैं। सुख, दुःख, अदुःख-सुख। आनन्द ! यही वेदना कहलाती है।···

[ऊपर जैसा ही]

§ ७. पठम अट्ठक सुत्त (३४. ५. २. ७)

संस्कारों का निरोध क्रमशः

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये ···।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! वेदना क्या है ?···वेदना का मोक्ष क्या है ?

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं। सुख, दुःख, अदुःख-सुख। भिक्षुओ ! यही वेदना कहलाती है।···

[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! मैंने सिलसिले से संस्कारों का निरोध बताया है। प्रथम ध्यान पाये हुये की वाणी निरुद्ध हो जाती है।···[देखो ३४. ५. २. १]

क्षीणाश्रव भिक्षु का राग प्रश्रब्ध होता है, द्वेष प्रश्रब्ध होता है, मोह प्रश्रब्ध होता है।

§ ८. दुतिय अट्ठक सुत्त (३४. ५. २. ८)

संस्कारों का निरोध क्रमशः

···एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् बोले, भिक्षुओ ! वेदना क्या है ?···वेदना का मोक्ष क्या है ?

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं।···[देखो ३४. ५. २. १]

§ ९. पञ्चकङ्ग सुत्त (३४. ५. २. ९)

तीन प्रकार की वेदनायें

तब*, पञ्चकाङ्ग कारीगर (थपति†) जहाँ आयुष्मान् उदायी थे वहाँ आया और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, पञ्चकांग कारीगर आयुष्मान् उदायी से बोला, "भन्ते ! भगवान् ने कितनी वेदनायें बतलायी हैं ?

कारीगर जी ! भगवान् ने तीन वेदनायें बतलाई हैं। सुख वेदना, दुःख वेदना, और अदुःख-सुख वेदना।

इस पर पञ्चकांगिक कारीगर आयुष्मान् उदायी से बोला, 'भन्ते ! भगवान् ने तीन वेदनायें नहीं बतलाई हैं। भगवान् ने दो ही वेदनायें बतलाई हैं—सुख और दुःख। भन्ते ! जो यह अदुःख-सुख वेदना है उसे भी शान्त और प्रणीत होने से भगवान् ने सुख ही बताया है।

दूसरी बार भी आयुष्मान् उदायी पञ्चकांगिक कारीकर से बोले, "नहीं कारीगर जी ! भगवान् ने दो वेदनायें नहीं बतलाई हैं। भगवान् ने तीन वेदनायें बतलाई हैं—सुख, दुःख और अदुःख-सुख। भगवान् ने यह तीन वेदनायें बतलाई हैं।"

दूसरी बार भी पञ्चकांगिक कारीगर आयुष्मान् उदायी से बोला, "भन्ते !" भगवान् ने तीन वेदनायें नहीं बतलाई हैं। भगवान् ने दो ही वेदनायें बतलाई हैं…।

तीसरी बार भी…।

आयुष्मान् उदायी पञ्चकांगिक कारीगर को नहीं समझा सके, और न पञ्चकांगिक कारीगर आयुष्मान् उदायी को समझा सका।

आयुष्मान् आनन्द ने पञ्चकांगिक कारीगर के साथ आयुष्मान् उदायी के कथा-संलाप को सुना।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द ने पञ्चकांगिक कारीगर के साथ जो आयुष्मान् उदायी का कथा-संलाप हुआ था सभी भगवान् से कह सुनाया।

आनन्द ! अपना खास दृष्टि-कोण रहने से ही पञ्चकांगिक कारीगर ने आयुष्मान् उदायी की बात नहीं मानी, और अपना खास दृष्टि-कोण रहने से ही आयुष्मान् उदायी ने पञ्चकांगिक कारीगर की बात नहीं मानी।

आनन्द ! एक दृष्टि-कोण से मैंने दो वेदनायें भी बतलाई हैं। एक दृष्टि-कोण से मैंने तीन वेदनायें भी बतलाई है। एक दृष्टि-कोण से मैंने छः भी, अट्ठारह भी, छत्तीस भी, और एक सौ आठ भी वेदनायें बतलाई हैं। आनन्द ! इस तरह, मैं खास-खास दृष्टि-कोण से धर्म का उपदेश करता हूँ।

आनन्द ! इस तरह, मेरे खास दृष्टि-कोण से उपदेश किये गये धर्म में जो लोग परस्पर की अच्छी कही हुई बात को भी नहीं समझेंगे वे आपस में लड़ झगड़ कर गाली-गलौज करेंगे।……

आनन्द ! पाँच काम-गुण हैं। कौन से पाँच ? चक्षु-विज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने, प्रिय, काम में डालने वाले, राग पैदा कर देने वाले। श्रोत्रविज्ञेय शब्द…घ्राण विज्ञेय गन्ध…। जिह्वाविज्ञेय रस…। कायाविज्ञेय स्पर्श…। आनन्द ! इन पाँच काम गुणों के प्रत्यय से जो सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है उसे 'काम-सुख' कहते हैं।

आनन्द ! जो कोई कहे कि यह प्राणी परम सुख-सौमनस्य पाते हैं तो उसे मैं नहीं मानता।

---

*देखो, यही सुत्त मज्झिम निकाय २. १. ९।

†थपति = स्थपति = थवई = कारीगर।

सो क्यों ? आनन्द ! क्योंकि उस सुख से दूसरा सुख कहीं अच्छा और बढ़ा चढ़ा है। आनन्द ! इस सुख से दूसरा अच्छा और बढ़ा चढ़ा सुख क्या है ?

आनन्द ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मों से हट, वितर्क और विचार वाले, तथा विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उस सुख से कहीं अच्छा और बढ़ा चढ़ा है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है, तो मैं नहीं मानता।...

आनन्द ! भिक्षु वितर्क और विचार के शब्द हो जाने से, अध्यात्म प्रसाद वाला, चित्त की एकाग्रता वाला, वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख वाला द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उस सुख से कहीं अच्छा और बढ़ा चढ़ा है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है, तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु प्रीति से हट उपेक्षा-पूर्वक विहार करता है—स्मृतिमान् और संप्रज्ञ, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। जिसे पण्डित लोग कहते हैं—यह स्मृतिमान् उपेक्षा-पूर्वक सुख से विहार करता है। ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उस सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, अदुःख-सुख, उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़ कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि, 'बस' यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सभी तरह से रूप-संज्ञा को पार कर, प्रतिघ-संज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्म-संज्ञा को मन में न लाने से 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़ कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सभी तरह से आकाशानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़ कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सभी तरह से विज्ञानानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़ कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सभी तरह से आकिञ्चन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ चढ़ कर है।

आनन्द ! यदि कोई कहे कि 'बस, यही परम सुख है' तो मैं नहीं मानता...।

आनन्द ! भिक्षु सभी तरह से नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त हो विहार करता है। आनन्द ! इसका सुख उसके सुख से कहीं अच्छा और बढ़ कर है।

आनन्द ! यह सम्भव है कि दूसरे मत वाले साधु कहें:—श्रमण गौतम संज्ञावेदयित-निरोध बताते हैं, और कहते हैं कि वह सुख है। भला ! वह क्या है, वह कैसा है ?

आनन्द ! यह कहने वाले दूसरे मत के साधुओं को यह कहना चाहिये:—आवुस ! भगवान् ने

'सुख-वेदना' के विचार से वह सुख नहीं बताया है। आवुस ! जहाँ जहाँ और जिस जिस में सुख मिलता है, उसे बुद्ध सुख ही बताते हैं।*

§ १०. भिक्खु सुत्त (३४. ५. २. १०)

विभिन्न दृष्टिकोण से वेदनाओं का उपदेश

भिक्षुओ ! एक दृष्टि-कोण से मैंने दो वेदनायें भी बतलाई हैं। एक दृष्टि-कोण से मैंने तीन वेदनायें भी बतलाई हैं।...पाँच वेदनायें भी बतलाई हैं।...छः वेदनायें भी बतलाई हैं।...अट्ठारह वेदनायें भी बतलाई हैं।...छत्तीस वेदनायें भी बतलाई हैं।...एक सौ आठ वेदनायें भी बतलाई हैं।

भिक्षुओ ! इस तरह मैंने खास-खास दृष्टि-कोण से उपदेश किये गये धर्म में जो लोग परस्पर की अच्छी कही हुई बात को भी नहीं समझेंगे वे आपस में लड़-झगड़ कर गाली-गलौज करेंगे।

भिक्षुओ ! इस तरह, मेरे इस खास दृष्टि-कोण से उपदेश किये गये धर्म में जो लोग परस्पर की अच्छी कही हुई बात को समझेंगे, उसका अभिनन्दन और अनुमोदन करेंगे, वे आपस में मेल से दूध-पानी होकर प्रेम-पूर्वक रहेंगे।

भिक्षुओ ! यह पाँच काम गुण हैं...

[ऊपर जैसा ही]

आनन्द ! यह कहने वाले दूसरे मत के साधुओं को यह कहना चाहिये :—आवुस ! भगवान्‌ने 'सुख-वेदना के' विचार से वह सुख नहीं बताया है। आवुस ! जहाँ जहाँ और जिस जिस में सुख मिलता है, उसे बुद्ध सुख ही बताते हैं।

रहोगत वर्ग समाप्त

---

* "जिस जिस स्थान में वेदयित सुख या अवेदयित सुख मिलते हैं उन सभी को 'निर्दुःख' होने से सुख ही बताया जाता है।"

—अट्ठकथा।

तीसरा भाग

अट्ठसत परियाय वर्ग

§ १. सीवक सुत्त (३४. ५. ३. १)

सभी वेदनायें पूर्वकृत कर्म के कारण नहीं

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे ।

तब, मोलिय-सीवक परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, मोलिय-सीवक परिव्राजक भगवान् से बोला, "गौतम ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण यह सिद्धान्त मानने वाले हैं—पुरुष जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है सभी अपने किये कर्म के कारण ही । इस पर आप गौतम का क्या कहना है ?

सीवक ! यहाँ पित्त के प्रकोप से भी कुछ वेदनायें उत्पन्न होती है । सीवक ! इसे तो तुम स्वयं भी जान सकते हो । सीवक ! लोक भी यह मानता है कि पित्त के प्रकोप से कुछ वेदनायें उत्पन्न होती हैं ।

सीवक ! तो, जो श्रमण और ब्राह्मण यह सिद्धान्त मानने वाले हैं—पुरुष जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है सभी अपने किये कर्म के कारण ही—वे अपने निज के अनुभव के विरुद्ध जाते हैं, और लोक जिस जिस बात को मानता है उसके भी विरुद्ध जाते हैं । इसलिये, मैं कहता हूँ कि उन श्रमण ब्राह्मणों का वैसा समझना गलत है ।

सीवक ! कफ के प्रकोप से भी···। वायु के प्रकोप से भी···। सन्निपात के कारण भी···। ऋतु के बदलने से भी···। उलटा-पलटा खा लेने से भी···। और भी उपक्रम से···।

सीवक ! कर्म के विपाक से भी कुछ वेदनायें होती हैं । सीवक ! इसे तुम स्वयं भी जान सकते हो, और संसार भी इसे मानता है ।

सीवक ! तो, जो श्रमण और ब्राह्मण यह सिद्धान्त माननेवाले हैं— पुरुष जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख-सुख वेदना का अनुभव करता है सभी अपने किये कर्म के कारण ही—वे अपने निज के अनुभव के विरुद्ध जाते हैं, और संसार जिस बात को मानता है उसके भी विरुद्ध जाते हैं । इसलिये, मैं कहता हूँ कि उन श्रमण ब्राह्मणों का वैसा समझना गलत है ।

इस पर, मोलिय-सीवक परिव्राजक भगवान् से बोला:—"हे गौतम ! मुझे आज से जन्म भर के लिये अपनी शरण में आये अपना उपासक स्वीकार करें ।

पित्त, कफ, और वायु,
सन्निपात और ऋतु,
उलटी-पलटी, उपक्रम,
और, आठवें कर्म विपाक से ॥

§ २. अट्ठसत सुत्त (३४. ५. ३. २)

एक सौ आठ वेदनायें

भिक्षुओ ! एक सौ आठ बात का धर्मोपदेश करूँगा । उसे सुनो ।···

भिक्षुओ ! एक सौ आठ बात का धर्मोपदेश क्या है ? एक दृष्टिकोण से मैंने दो वेदनायें भी बतलाई हैं ।···तीन वेदनायें भी···।···पाँच वेदनायें भी···।···छः वेदनायें भी···।···अट्ठारह वेदनायें भी···।···छत्तीस वेदनायें भी···।···एक सौ आठ (=अष्टशत) वेदनायें भी···।

भिक्षुओ ! दो वेदनायें कौन हैं ? (१) शारीरिक, और (२) मानसिक । भिक्षुओ ! यही दो वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! तीन वेदनायें कौन हैं ? (१) सुख वेदना, (२) दुःख वेदना, और (३) अदुःख-सुख वेदना । भिक्षुओ ! यही तीन वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! पाँच वेदनायें कौन हैं ? (१) सुखेन्द्रिय, (२) दुःखेन्द्रिय, (३) सौमनस्येन्द्रिय, (४) दौर्मनस्येन्द्रिय, और (५) उपेक्षेन्द्रिय । भिक्षुओ ! यही पाँच वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! छः वेदना कौन हैं ? (१) चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, (२) श्रोत्र···, (३) घ्राण···, (४) जिह्वा···, (५) काया···, (६) मनःसंस्पर्शजा वेदना । भिक्षुओ ! यही छः वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! अट्ठारह वेदना कौन हैं ? छः सौमनस्य के विचार से, छः दौर्मनस्य के विचार से, और छः उपेक्षा के विचार से । भिक्षुओ ! यही अट्ठारह वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! छत्तीस वेदना कौन हैं ? छः गृहसम्बन्धी सौमनस्य, छः नैष्कर्म (=त्याग) सम्बन्धी सौमनस्य, छः गृहसम्बन्धी दौर्मनस्य, छः नैष्कर्म-सम्बन्धी दौर्मनस्य, छः गृहसम्बन्धी उपेक्षा, छः नैष्कर्म-सम्बन्धी उपेक्षा । भिक्षुओ ! यही छत्तीस वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! एक सौ आठ वेदना कौन हैं ? अतीत छत्तीस वेदना, अनागत छत्तीस वेदना, वर्तमान छत्तीस वेदना । भिक्षुओ ! यही एक सौ आठ वेदनायें हैं ।

भिक्षुओ ! यही है अष्टशत बात का धर्मोपदेश ।

§ ३. भिक्खु सुत्त (३४. ५. ३. ३)

तीन प्रकार की वेदनायें

···एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! वेदना क्या है ? वेदना का समुदय क्या है ? वेदना का समुदय-गामी मार्ग क्या है ? वेदना का निरोध क्या है ? वेदना का निरोध-गामी मार्ग क्या है ? वेदना का आस्वाद क्या है ? वेदना का दोष क्या है ? वेदना का मोक्ष क्या है ?

भिक्षु ! वेदना तीन हैं । सुख, दुःख, और अदुःख-सुख । भिक्षु ! यही तीन वेदना हैं ।

स्पर्श के समुदय से वेदना का समुदय होता है । तृष्णा ही वेदना का समुदय-गामी [मार्ग है । स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है । यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही वेदना का निरोध-गामी मार्ग है । जो, सम्यक् दृष्टि···सम्यक समाधि ।

जो वेदना के प्रत्यय से सुख-सौमनस्य उत्पन्न होते हैं यही वेदना का आस्वाद है । वेदना जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है यही वेदना का दोष है । जो वेदना के छन्द-राग का प्रहाण है यही वेदना का मोक्ष है ।

§ ४. पुब्बेञान सुत्त (३४. ५. ३. ४)

वेदना की उत्पत्ति और निरोध

भिक्षुओ ! बुद्धत्व लाभ करने के पहले, बोधिसत्व रहते ही मेरे मन में यह हुआ—वेदना क्या है ? वेदना का समुदय क्या है ? वेदना का समुदय-गामी मार्ग क्या है ? वेदना का निरोध क्या है ? वेदना का निरोध-गामी मार्ग क्या है ? वेदना का आस्वाद क्या है ? वेदना का दोष क्या है ? वेदना का मोक्ष क्या है ?

भिक्षुओ ! सो, मेरे मनमें यह हुआ—वेदना तीन हैं···जो वेदना के छन्द-राग का प्रहरण है वह वेदना का मोक्ष है ।

भिक्षुओ ! यह वेदना हैं—ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ ।

भिक्षुओ ! यह वेदना का समुदय है—ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ ।

भिक्षुओ ! यह वेदना का समुदय-गामी मार्ग···।

भिक्षुओ ! यह वेदना का निरोध है···।

भिक्षुओ ! यह वेदना का निरोधगामी मार्ग है··।

भिक्षुओ ! यह वेदना का आस्वाद है···।

भिक्षुओ ! यह वेदना का दोष है···।

भिक्षुओ ! यह वेदना का मोक्ष है—ऐसा पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ ।

§ ५. भिक्खु सुत्त (३४. ५. ३. ५)

तीन प्रकार की वेदनायें

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! वेदना क्या है ? वेदना का समुदय क्या है ?···वेदना का मोक्ष क्या है ?

भिक्षुओ ! वेदना तीन है । सुख, दुःख और अदुःख-सुख···जो वेदना के छन्द-राग का प्रहाण है वही वेदना का मोक्ष है ।

§ ६. पठम समणब्राह्मण सुत्त (३४. ५. ३. ६)

वेदनाओं के ज्ञान से ही श्रमण या ब्राह्मण

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं । कौन से तीन ? सुख वेदना, दुःख वेदना, अदुःख-सुख वेदना ।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन तीन वेदनाओं के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं, वह श्रमण या ब्राह्मण सच में अपने नाम के अधिकारी नहीं हैं । न तो वे आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को अपने सामने जान कर, साक्षात् कर, या प्राप्त कर विहार करते हैं··।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन तीन वेदनाओं के समुदय···और मोक्ष को यथार्थतः जानते हैं, वह श्रमण या ब्राह्मण सच में अपने नाम के अधिकारी हैं । वे आयुष्मान् श्रमण-भाव या ब्राह्मण-भाव को···प्राप्त कर विहार करते हैं ।

§ ७. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (३४. ५. ३. ७)

वेदनाओं के ज्ञान से ही श्रमण या ब्राह्मण

भिक्षुओ ! वेदना तीन है।···

[ऊपर जैसा ही]

§ ८. ततिय समणब्राह्मण सुत्त (३४. ५. ३. ८)

वेदनाओं के ज्ञान से ही श्रमण या ब्राह्मण

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण वेदना को नहीं जानते हैं, वेदना के समुदय को नहीं जानते हैं··· प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ९. सुद्धिक निरामिस सुत्त (३४. ५. ३. ९)

तीन प्रकार की वेदनायें

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं···।

भिक्षुओ ! सामिष (= सकाम) प्रीति होती है। निरामिष (= निष्काम) प्रीति होती है। निरामिष से निरामिषतर प्रीति होती है। सामिष सुख होता है। निरामिष सुख होता है। निरामिष से निरामिषतर सुख होता है। सामिष उपेक्षा होती है। निरामिष उपेक्षा होती है। निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा होती है। सामिष विमोक्ष होता है। निरामिष विमोक्ष होता है। निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष होता है।

भिक्षुओ ! सामिष प्रीति क्या है ? भिक्षुओ ! यह पाँच काम-गुण हैं। कौन से पाँच ? चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट, सुन्दर, लुभावने, प्रिय, काम में डालनेवाले, राग पैदा करनेवाले। श्रोत्रविज्ञेय शब्द···। घ्राणविज्ञेय गन्ध···। जिह्वाविज्ञेय रस···। कायाविज्ञेय स्पर्श···। भिक्षुओ ! यह पञ्च कामगुण हैं।

भिक्षुओ ! इन पाँच काम-गुणों के प्रत्यय से प्रीति उत्पन्न होती है। भिक्षुओ ! इसे सामिष प्रीति कहते हैं।

भिक्षुओ ! निरामिष प्रीति क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु···विवेक से उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। भिक्षु···समाधि से उत्पन्न प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। भिक्षुओ ! इसे निरामिष प्रीति कहते हैं।

भिक्षुओ ! निरामिष से निरामिषतर प्रीति क्या है ? भिक्षुओ ! जो क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन कर राग से विमुक्त हो गया है, द्वेष से विमुक्त हो गया है, मोह से विमुक्त हो गया है, उसे प्रीति उत्पन्न होती है। भिक्षुओ ! इसी को निरामिष से निरामिषतर प्रीति कहते हैं।

भिक्षुओ ! सामिष सुख क्या है ?

भिक्षुओ ! पाँच काम-गुण हैं।···इन पाँच काम-गुणों के प्रत्यय से जो सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है उसे सामिष सुख कहते हैं।

भिक्षुओ ! निरामिष सुख क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु···विवेक से उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है।··· समाधि से उत्पन्न प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है।···जिसे पण्डित लोग कहते हैं, स्मृतिमान् उपेक्षा-पूर्वक सुख से विहार करता है—ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। भिक्षुओ ! इसे 'निरामिष सुख' कहते हैं।

भिक्षुओ ! निरामिष से निरामिषतर सुख क्या है ? भिक्षुओ ! जो क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्म-चिन्तन कर राग से विमुक्त हो गया है, द्वेष से विमुक्त हो गया है, मोह से विमुक्त हो गया है, उसे सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है । भिक्षुओ ! इसी को निरामिष से निरामिषतर प्रीति कहते हैं ।

भिक्षुओ ! सामिष उपेक्षा क्या है ?

भिक्षुओ ! पाँच काम गुण हैं ।···इन पाँच काम गुणों के प्रत्यय से जो उपेक्षा उत्पन्न होती है, उसे सामिष उपेक्षा कहते हैं ।

भिक्षुओ ! निरामिष उपेक्षा क्या है ? भिक्षु···उपेक्षा और स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है । भिक्षुओ ! इसे निरामिष उपेक्षा कहते हैं ।

भिक्षुओ ! निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा क्या है ? भिक्षुओ ! जो क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन कर राग से विमुक्त हो गया है, द्वेष से विमुक्त हो गया है, मोह से विमुक्त हो गया है, उसे उपेक्षा उत्पन्न होती है । भिक्षुओ ! इसी को निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा कहते हैं ।

भिक्षुओ ! सामिष विमोक्ष क्या है ? रूप में लगा हुआ विमोक्ष सामिष होता है ।···। अरूप में लगा हुआ विमोक्ष निरामिष होता है ।

भिक्षुओ ! निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष क्या है ? भिक्षुओ ! जो क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त आत्मचिन्तन कर राग से विमुक्त हो गया है, द्वेष से विमुक्त हो गया है, मोह से विमुक्त हो गया है । उसे विमोक्ष उत्पन्न होता है । भिक्षुओ ! इसी को निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष कहते हैं ।

अट्ठसतपरियाय वर्ग समाप्त

वेदना संयुत्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

३५. मातुगाम संयुत्त

पहला भाग

पेय्याल वर्ग

§ १. मनापामनाप सुत्त (३५. १. १)

पुरुष को लुभाने वाली स्त्री

भिक्षुओ ! पाँच अंगों से युक्त होने से स्त्री पुरुष को बिल्कुल लुभाने वाली नहीं होती है। किन पाँच से ? (१) रूप वाली नहीं होती है, (२) धन वाली नहीं होती है, (३) शील वाली नहीं होती है, (४) आलसी होती है, (५) गर्भ धारण नहीं करती है। भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच अंगोंसे युक्त होने से स्त्री पुरुष को बिल्कुल लुभाने वाली नहीं होती है।

भिक्षुओ ! पाँच अंगों से युक्त होने से स्त्री पुरुष को अत्यन्त लुभाने वाली होती है। किन पाँच से ? (१) रूप वाली होती है, (२) धन वाली होती है, (३) शील वाली होती है, (४) दक्ष होती है, (५) गर्भ धारण करती है। भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच अंगों से युक्त होने से स्त्री पुरुष को बिल्कुल लुभाने वाली होती है।

§ २. मनापामनाप सुत्त (३५. १. २)

स्त्री को लुभाने वाला पुरुष

भिक्षुओ ! पाँच अंगों से युक्त होने से पुरुष स्त्री को बिल्कुल लुभाने वाला नहीं होता है। किन पाँच से ? (१) रूप वाला नहीं होता है, (२) धन वाला नहीं होता है, (३) शील वाला नहीं होता है, (४) आलसी होता है, (५) गर्भ देने में समर्थ नहीं होता है। भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच अंगों से युक्त होने से पुरुष स्त्री को बिल्कुल लुभाने वाला नहीं होता है।

भिक्षुओ ! पाँच अंगों से युक्त होने से पुरुष स्त्री को अत्यन्त लुभाने वाला होता है। किन पाँच से ? (१) रूप वाला होता है, (२) धन वाला होता है, (३) शील वाला होता है, (४) दक्ष होता है, (५) गर्भ देने में समर्थ होता है। भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच अंगों से युक्त होने से पुरुष स्त्री को बिल्कुल लुभाने वाला होता है।

§ ३. आवेणिक सुत्त (३५. १. ३)

स्त्रियों के अपने पाँच दुःख

भिक्षुओ ! स्त्री के अपने पाँच दुःख हैं, जिन्हें केवल स्त्री ही अनुभव करती है, पुरुष नहीं। कौन से पाँच ?

भिक्षुओ ! स्त्री अपनी छोटी ही आयु में पति-कुल चली जाती है; बन्धुओं को छोड़ देना होता है भिक्षुओ ! स्त्री का अपना यह पहला दुःख है, जिसे केवल स्त्री ही अनुभव करती है, पुरुष नहीं।

भिक्षुओ ! फिर, स्त्री ऋतुनी होती है।...यह दूसरा दुःख...।

भिक्षुओ ! फिर, स्त्री गर्भिणी होती है।...यह तीसरा दुःख...।

भिक्षुओ ! फिर, स्त्री बच्चा जनती है।...यह चौथा दुःख...।

भिक्षुओ ! फिर, स्त्री को अपने पुरुष की सेवा करनी होती है।...यह पाँचवाँ दुःख...।

भिक्षुओ ! यही स्त्री के अपने पाँच दुःख हैं, जिन्हें केवल स्त्री ही अनुभव करती है, पुरुष नहीं

§ ४. तीहि सुत्त (३५. १. ४)

तीन बातों से स्त्रियों की दुर्गति

भिक्षुओ ! तीन धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है। किन तीन से ?

भिक्षुओ ! स्त्री पूर्वाह्न समय कृपणता से मलिन चित्तवाली होकर घर में रहती है। मध्याह्न समय ईर्ष्या से युक्त चित्तवाली होकर घर में रहती है। सायह्न समय काम-राग से युक्त चित्तवाली होकर घर में रहती है।

भिक्षुओ ! इन्हीं तीन धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ५. कोधन सुत्त (३५. १. ५)

पाँच बातों से स्त्रियों की दुर्गति

तब, आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् अनुरुद्ध भगवान् से बोले, भन्ते ! मैं अपने दिव्य, विशुद्ध अमानुषिक चक्षु से स्त्री को मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती देखा है। भन्ते ! किन धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है ?

अनुरुद्ध ! पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है। किन पाँच से ?

श्रद्धा-रहित होती है। निर्लज्ज होती है। निर्भय (=पाप करने में निर्भय) होती है। क्रोधी होती है। मूर्खा होती है।

अनुरुद्ध ! इन पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ६. उपनाही सुत्त (३५. १. ६)

निर्लज्ज

अनुरुद्ध !...श्रद्धा-रहित होती है। निर्लज्ज होती है। निर्भय होती है। जलनेवाली होती है। मूर्खा होती है।...दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ७. इस्सुकी सुत्त (३५. १. ७)

ईर्ष्यालु

अनुरुद्ध !...श्रद्धा-रहित होती है।...ईर्ष्यालु होती है। मूर्खा होती है।...दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ८. मच्छरी सुत्त (३५. १. ८)

कृपण

अनुरुद्ध !···श्रद्धा-रहित होती है। निर्लज्ज होती है। निर्भय होती है। कृपण होती है। मूर्खा होती है।

अनुरुद्ध ! इन पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ९. अतिचारी सुत्त (३५. १. ९)

कुलटा

अनुरुद्ध !···श्रद्धा-रहित होती है।···कुलटा होती है। मूर्खा होती है।···दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ १०. दुस्सील सुत्त (३५. १. १०)

दुराचारिणी

अनुरुद्ध !···दुःशील होती है। मूर्खा होती है।···दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ ११. अप्पस्सुत सुत्त (३५. १. ११)

अल्पश्रुत

अनुरुद्ध !···अल्पश्रुत होती है। मूर्खा होती है।···दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ १२. कुसीत सुत्त (३५. १. १२)

आलसी

अनुरुद्ध !···कुसीत (=उत्साह-हीन) होती है। मूर्खा होती है।···दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ १३. मुट्ठस्सति सुत्त (३५. १. १३)

भोंदी

अनुरुद्ध !···मूढ़ स्मृति (=भोंदी) होती है। मूर्खा होती है।···दुर्गति को प्राप्त होती है।

§ १४. पञ्चवेर सुत्त (३५. १. १४)

पाँच अधर्मों से युक्त की दुर्गति

अनुरुद्ध ! पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है। किन पाँच से ?

जीव-हिंसा करने वाली होती है। चोरी करने वाली होती है। व्यभिचार करने वाली होती है। झूठ बोलने वाली होती है। सुरा इत्यादि नशीली वस्तुओं का सेवन करने वाली होती है।

अनुरुद्ध ! इन पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद नरक में गिर दुर्गति को प्राप्त होती है।

दूसरा भाग

पेय्याल वर्ग

§ १. अक्कोधन सुत्त (३५. २. १)

पाँच बातों से स्त्रियों की सुगति

तब, आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् अनुरुद्ध भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं अपने दिव्य, विशुद्ध अमानुषिक चक्षु से स्त्री को मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती देखा है। भन्ते ! किन धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है।

अनुरुद्ध ! पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है। किन पाँच से ?

श्रद्धा-सम्पन्न होती है। लज्जा-सम्पन्न होती है। भय-सम्पन्न होती है। क्रोध-रहित होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।

अनुरुद्ध ! इन पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है।

§ २. अनुपनाही सुत्त (३५. २. २)

न जलनी

···दूसरों को देख नहीं जलती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ३. अनिस्सुकी सुत्त (३५. २. ३)

ईर्ष्या-रहित

···ईर्ष्या-रहित होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ४. अमच्छरी सुत्त (३५. २. ४)

कृपणता-रहित

···मात्सर्य-रहित होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ५. अनतिचारी सुत्त (३५. २. ५)

पतिव्रता

···कुलटा नहीं होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ६. सीलवा सुत्त (३५. २. ६)

सदाचारिणी

···शीलवती होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ७. बहुस्सुत सुत्त (३५. २. ७)

बहुश्रुत

···बहुश्रुत होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ८. विरिय सुत्त (३५. २. ८)

परिश्रमी

···उत्साह-शील होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ ९. सति सुत्त (३५. २. ९)

तीव्र-बुद्धि

···तेज होती है। प्रज्ञा-सम्पन्न होती है।···

§ १०. पञ्चसील सुत्त (३५. २. १०)

पञ्चशील-युक्त

···जीव-हिंसा से विरत रहती है। चोरी करने से विरत रहती है। व्यभिचार से विरत रहती है। झूठ बोलने से विरत रहती है। सुरा इत्यादि नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत रहती है।

अनुरुद्ध ! इन पाँच धर्मों से युक्त होने से स्त्री मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है।

पेय्याल वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

बल वर्ग

§ १. विसारद सुत्त (३५. ३. १)

स्त्री को पाँच बलों से प्रसन्नता

भिक्षुओ ! स्त्री के पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच ?

रूप-बल, धन-बल, ज्ञाति-बल, पुत्र-बल, और शील-बल। भिक्षुओ ! स्त्री के यह पाँच बल होते हैं।

भिक्षुओ ! इन पाँच बलों से युक्त स्त्री प्रसन्नता-पूर्वक घर में रहती है।

§ २. पसय्ह सुत्त (३५. ३. २)

स्वामी को वश में करना

...भिक्षुओ ! इन पाँच बलों से युक्त स्त्री अपने स्वामी को वश में रखकर घर में रहती है।

§ ३. अभिभुय्य सुत्त (३५. ३. ३)

स्वामी को दबा कर रखना

...भिक्षुओ ! इन पाँच बलों से युक्त स्त्री अपने स्वामी को दबा कर घर में रहती है।

§ ४. एक सुत्त (३५. ३. ४.)

स्त्री को दबाकर रखना

भिक्षुओ ! एक बल से युक्त होने से पुरुष स्त्री को दबा कर रहता है। किस एक बल से ? ऐश्वर्य बल से।

भिक्षुओ ! ऐश्वर्य-बल से दबाई गई स्त्री को न तो रूप-बल कुछ काम देता है, न धन-बल, न पुत्र-बल और न शील-बल।

§ ५. अङ्ग सुत्त (३५. ३. ५)

स्त्री के पाँच बल

भिक्षुओ ! स्त्री के पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच ? रूप-बल, धन-बल, ज्ञाति-बल, पुत्र-बल और शील-बल।

भिक्षुओ ! यदि स्त्री रूप-बल से सम्पन्न हो, किन्तु धन-बल से नहीं, तो वह उस अंग से पूरी नहीं होती। यदि स्त्री रूप-बल से सम्पन्न हो और धन-बल से भी, तो वह उस अंग से पूरी होती है।

भिक्षुओ ! यदि स्त्री रूप-बल से और धन-बल से सम्पन्न हो, किन्तु ज्ञाति-बल से नहीं, तो वह

उस अंग से पूरी नहीं होती। यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से और ज्ञाति-बल से भी सम्पन्न हो, तो वह उस अंग से पूरी होती है।

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से और ज्ञाति-बल से सम्पन्न हो, किन्तु पुत्र-बल से नहीं, तो वह स्त्री उस अंग से पूरी नहीं होती। यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से, ज्ञाति-बल से और पुत्र-बल से भी सम्पन्न हो, तो वह उस अंग से पूरी होती है।

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से, और ज्ञाति-बल से और पुत्र-बल से सम्पन्न हो, किन्तु शील-बल से नहीं, तो वह उस अंग से पूरी नहीं होती। यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से, ज्ञाति-बल से, पुत्र-बल से और शील-बल से भी सम्पन्न हो, तो वह उस अंग से पूरी होती है।

भिक्षुओ! स्त्री के यही पाँच बल हैं।

§ ६. नासेति सुत्त (३५. ३. ६)

स्त्री को कुल से हटा देना

भिक्षुओ! स्त्री के पाँच बल होते हैं।...

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से सम्पन्न हो, किन्तु शील-बल से नहीं, तो उसे कुल से लोग हटा देते हैं, बुलाते नहीं हैं।

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से और धन-बल से सम्पन्न हो, किन्तु शील-बल से नहीं, तो उसे कुल से लोग हटा देते हैं, बुलाते नहीं हैं।

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से, और ज्ञाति-बल से सम्पन्न हो, किन्तु शील-बल से नहीं, तो उसे कुल से लोग हटा देते हैं, बुलाते नहीं हैं।

भिक्षुओ! यदि स्त्री रूप-बल से, धन-बल से, ज्ञाति-बल से और पुत्र-बल से सम्पन्न हो, किन्तु शील-बल से नहीं, तो उसे कुल से लोग हटा देते हैं, बुलाते नहीं हैं।

भिक्षुओ! यदि स्त्री शील-बल से सम्पन्न हो, रूप-बल से नहीं, धन-बल से नहीं, ज्ञाति-बल से नहीं, पुत्र-बल से नहीं, तो उसे कुल में लोग बुलाते ही हैं, हटाते नहीं।

भिक्षुओ! स्त्री के यही पाँच बल हैं।

§ ७. हेतु सुत्त (३५. ३. ७)

स्त्री-बल से स्वर्ग-प्राप्ति

भिक्षुओ! स्त्री के पाँच बल हैं।...

भिक्षुओ! स्त्री न रूप-बल से, न धन-बल से, न ज्ञाति-बल से और न पुत्र-बल से मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है।

भिक्षुओ! शील-बल से ही स्त्री मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होती है।

भिक्षुओ! स्त्री के यही पाँच बल हैं।

§ ८. ठान सुत्त (३५. ३. ८)

स्त्री की पाँच दुर्लभ बातें

भिक्षुओ! उस स्त्री के पाँच स्थान दुर्लभ होते हैं जिसने पुण्य नहीं किया है। कौन से पाँच?

अच्छे कुल में उत्पन्न हो: उस स्त्री का यह प्रथम स्थान दुर्लभ होता है जिसने पुण्य नहीं किया है।

अच्छे कुल में उत्पन्न हो कर भी अच्छे कुल में जाय। उस स्त्री का यह दूसरा स्थान दुर्लभ होता है...।

अच्छे कुल में उत्पन्न हो कर और अच्छे कुल में जाकर भी बिना सौत के घर में रहे। उस स्त्री का यह तीसरा स्थान दुर्लभ...।

अच्छे कुल में उत्पन्न हो, अच्छे कुल में जा, और बिना सौत के रह, और पुत्रवती होवे, उस स्त्री का यह चौथा स्थान दुर्लभ होता है...।

अच्छे कुल में उत्पन्न हो, अच्छे कुल में जा, बिना सौत के रह, और पुत्रवती भी, अपने स्वामी को वश में रक्खे; उस स्त्री का यह पाँचवाँ स्थान दुर्लभ होता है जिसने पुण्य नहीं किया है।

भिक्षुओ ! उस स्त्री के यह पाँच स्थान दुर्लभ होते हैं, जिसने पुण्य नहीं किया है।

भिक्षुओ ! उस स्त्री के पाँच स्थान सुलभ होते हैं, जिसने पुण्य किया है ! कौन से पाँच ?

[ऊपर के ही कहे पाँच स्थान]

§ ९. विसारद सुत्त (३५. ३. ९)

विशारद स्त्री

भिक्षुओ ! पाँच धर्मों से युक्त हो स्त्री विशारद हो कर घर में रहती है। किन पाँच से ?

जीव-हिंसा से विरत रहती है, चोरी करने से विरत रहती है, व्यभिचार से विरत रहती है, झूठ बोलने से विरत रहती है, सुरा इत्यादि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करती है।

भिक्षुओ ! इन पाँच धर्मों से युक्त हो स्त्री विशारद हो कर घर में रहती है।

§ १०. वड्ढि सुत्त (३५. ३. १०)

पाँच बातों से वृद्धि

भिक्षुओ ! पाँच वृद्धियों से बढ़ती हुई आर्यश्राविका खूब बढ़ती है, प्रसन्न और स्वस्थ रहती है। किन पाँच से ?

श्रद्धा से, शील से, विद्या से, त्याग से, और प्रज्ञा से।

भिक्षुओ ! इन पाँच वृद्धियों से बढ़ती हुई आर्यश्राविका खूब बढ़ती है, प्रसन्न और स्वस्थ रहती है।

मातुगाम संयुत्त समाप्त

चौथा परिच्छेद

३६. जम्बुखादक संयुत्त

§ १. निब्बान सुत्त (३६. १)

निर्वाण क्या है ?

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगध में नालकग्राम में विहार करते थे।

तब, जम्बुखादक परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आया और कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, जम्बुखादक परिव्राजक आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला, "आवुस सरिपुत्र ! लोग 'निर्वाण, निर्वाण' कहा करते हैं। आवुस ! निर्वाण क्या है ?

आवुस ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय और मोह-क्षय है, यही निर्वाण कहा जाता है।

आवुस सारिपुत्र ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये क्या मार्ग है ?

हाँ आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये मार्ग है।

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये कौन सा मार्ग है ?

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है। जो, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कमान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है।

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये सच में यह बड़ा सुन्दर मार्ग है। आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ २. अरहत्त सुत्त (३६. २)

अर्हत्व क्या है ?

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'अर्हत्व, अर्हत्व' कहा करते हैं। आवुस ! अर्हत्व क्या है ?

आवुस ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है यही अर्हत्व कहा जाता है।

आवुस ! अर्हत्व के साक्षात्कार करने के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ३. धम्मवादी सुत्त (३६. ३)

धर्मवाद कौन हैं ?

आवुस सारिपुत्र ! संसार में धर्मवादी कौन हैं, संसार में सुप्रतिपन्न (=अच्छे मार्ग पर आरूढ़) कोन हैं, संसार में सुगत (=अच्छी गति की प्राप्त) कौन हैं ?

आवुस ! जो राग के प्रहाण के लिये, द्वेष के प्रहाण के लिये, और मोह के प्रहाण के लिये धर्मोपदेश करते हैं, वे संसार में धर्मवादी हैं।

आवुस ! जो राग के प्रहाण के लिये, द्वेष के प्रहाण के लिये, और मोह के प्रहाण के लिये लगे हैं वे संसार में सुप्रतिपन्न हैं।

आवुस ! जिनके राग, द्वेष और मोह प्रहीण हो गये हैं, उच्छिन्न-मूल, शिर कटे ताड़ के पेड़ जैसा, मिटा दिये गये हैं, भविष्य में कभी उत्पन्न नहीं होनेवाले कर दिये गये हैं, वे संसार में सुगत हैं।

आवुस ! उस राग, द्वेष और मोह के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ४. किमत्थि सुत्त (३६. ४)

दुःख की पहचान के लिए ब्रह्मचर्य-पालन

आवुस सारिपुत्र ! श्रमण-गौतम के शासन में किस लिये ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है ?

आवुस ! दुःख की पहचान के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य-पालन किया जाता है।

आवुस ! उस दुःख की पहचान के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ५. अस्सास सुत्त (३६. ५)

आश्वासन-प्राप्ति का मार्ग

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'आश्वासन पाया हुआ, आश्वासन पाया हुआ' कहते हैं। आवुस ! आश्वासन पाया हुआ कैसे होता है ?

आवुस ! जो भिक्षु छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है, वह आश्वासन पाया हुआ होता है।

आवुस ! आश्वासन के साक्षात्कार के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ६. परमस्सास सुत्त (३६. ६)

परम आश्वासन-प्राप्ति का मार्ग

['आश्वासन' के बदले 'परम-आश्वासन' करके ठीक ऊपर जैसा ही]

§ ७. वेदना सुत्त (३६. ७)

वेदना क्या है ?

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'वेदना, वेदना' कहा करते हैं। आवुस ! वेदना क्या है ?

आवुस ! वेदना तीन है। सुख, दुःख, अदुःख-सुख वेदना। आवुस ! यही वेदना है।

आवुस ! इस वेदना की पहचान के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ८. आसव सुत्त (३६. ८)

आश्रव क्या है ?

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'आश्रव, आश्रव' कहा करते हैं। आवुस ! आश्रव क्या है ?

आवुस ! आश्रव तीन हैं। काम-आश्रव, भव-आश्रव और अविद्या-आश्रव। आवुस ! यही तीन आश्रव हैं।

आवुस ! इन आश्रवों के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये...।

§ ९. अविज्जा सुत्त (३६. ९)

अविद्या क्या है ?

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। आवुस ! अविद्या क्या है ?

आवुस ! जो दुःख का अज्ञान, दुःख-समुदय का अज्ञान, दुःखनिरोध का अज्ञान, दुःख का निरोधगामी मार्ग का अज्ञान ! आवुस ! इसी को कहते हैं 'अविद्या'।

आवुस ! उस अविद्या के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

.. आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १०. तण्हा सुत्त (३६. १०)

तीन तृष्णा

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'तृष्णा, तृष्णा' कहा करते हैं। आवुस ! तृष्णा क्या है ?

आवुस ! तृष्णा तीन हैं। काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा। आवुस ! यही तीन तृष्णा हैं।

आवुस ! उस तृष्णा के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग...।

...आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ ११. ओघ सुत्त (३६. ११)

चार बाढ़

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'बाढ़, बाढ़'[*] कहा करते हैं। आवुस ! बाढ़ क्या है ?

आवुस ! बाढ़ चार हैं। काम-बाढ़, भव-बाढ़, दृष्टि-बाढ़, अविद्या-बाढ़। आवुस यही चार बाढ़ हैं।

आवुस ! इन बाढ़ के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

...आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है...।

.. आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १२. उपादान सुत्त (३६. १२)

चार उपादान

आवुस ! लोग 'उपादान, उपादान' कहा करते हैं। आवुस ! उपादान क्या है ?

आवुस ! उपादान चार हैं। काम-उपादान, दृष्टि-उपादान, शीलव्रत-उपादान, आत्मवाद-उपादान आवुस ! यही चार उपादान हैं।

आवुस ! इन उपादानों के प्रहाणका क्या मार्ग है ?

---

* देखो पृष्ठ १, चार बाढ़ों की व्याख्या।

…आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग…।

…आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १३. भव सुत्त (३६. १३)

तीन भव

आवुस सारिपुत्र ! लोग, 'भव, भव' कहा करते हैं। आवुस ! भव क्या है ?

आवुस ! भव तीन हैं। काम-भव, रूप-भव, अरूप-भव। आवुस ! यही तीन भव हैं।

आवुस ! इन भव के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

…आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग…।

…आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १४. दुक्ख सुत्त (३६. १४)

तीन दुःख

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'दुःख, दुःख' कहा करते हैं। आवुस ! दुःख क्या है ?

आवुस ! दुःख तीन हैं। दुःख-दुःखता, संस्कार-दुःखता, विपरिणाम दुःखता।

आवुस ! इन दुःखों के प्रहाण के लिये क्या मार्ग है ?

…आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग…।

…आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १५. सक्काय सुत्त (३६. १५)

सत्काय क्या है ?

आवुस सारिपुत्र ! लोग 'सत्काय, सत्काय' कहा करते हैं। आवुस ! सत्काय क्या है ?

आवुस ! भगवान् ने इन पाँच उपादान-स्कन्धों को सत्काय बताया है। जैसे, रूप-उपादानस्कन्ध वेदना,…संज्ञा…, संस्कार…, विज्ञान-उपादान-स्कन्ध।

आवुस ! इस सत्काय की पहचान के लिये क्या मार्ग है ?

…आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग…।

…आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ १६. दुक्कर सुत्त (३६. १६)

बुद्धधर्म में क्या दुष्कर है ?

आवुस सारिपुत्र ! इस धर्म-विनय में क्या दुष्कर है ?

आवुस ! इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या दुष्कर है।

आवुस ! प्रव्रजित हो जाने से क्या दुष्कर है ?

आवुस ! प्रव्रजित हो जाने से उस जीवन में मन लगाते रहना दुष्कर है।

आवुस ! मन लगते रहने से क्या दुष्कर है ?

आवुस ! मन लगते रहने से धर्मानुकूल आचरण दुष्कर है।

आवुस ! धर्मानुकूल आचरण करने से अर्हत् होने में कितनी देर लगती है ?

आवुस ! कुछ देर नहीं।

जम्बुखादक संयुत्त समाप्त

पाँचवाँ परिच्छेद

३७. सामण्डक संयुत्त

§ १. निब्बान सुत्त (३७. १)

निर्वाण क्या है ?

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र वज्जी (जनपद) के उक्काचेल में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे।

तब, सामण्डक परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, सामण्डक परिव्राजक आयुष्मान् सारिपुत्र से बोला, "आवुस ! लोग 'निर्वाण, निर्वाण' कहा करते हैं। आवुस ! निर्वाण क्या है ?

आवुस ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है, यही निर्वाण कहा जाता है।

आवुस सारिपुत्र ! क्या निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये मार्ग है ?

हाँ आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये मार्ग है।

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये कौन सा मार्ग है ?

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये यह आर्य आष्टांगिक मार्ग है। जो, सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक् समाधि। आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये यही आर्य आष्टांगिक मार्ग है।

आवुस ! निर्वाण के साक्षात्कार करने के लिये सच में यह बड़ा सुन्दर मार्ग है। आवुस ! प्रमाद नहीं करना चाहिये।

§ २-१६. सब्बे सुत्तन्ता (३७. २-१६)

[शेष जम्बुखादक संयुत्त के ऐसा ही]

सामण्डक संयुत्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

३८. मोग्गल्लान संयुत्त

§ १. सवितक्क सुत्त (३८. १)

प्रथम ध्यान

एक समय, आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।···

आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान बोले "आवुस! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा, लोग 'प्रथम ध्यान, प्रथम ध्यान' कहा करते हैं, सो वह प्रथम ध्यान क्या है?"

आवुस! तब मेरे मन में यह हुआ :—भिक्षु काम और अकुशल धर्मों से हट, वितर्क और विचार वाले, विवेक से उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं।

आवुस! सो मैं···प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस! इस प्रकार विहार करते मेरे मन में काम-सहगत संज्ञा उठती हैं।

आवुस! तब, ऋद्धि से भगवान् मेरे पास आ कर बोले, "मोग्गल्लान! मोग्गल्लान! निष्पाप, प्रथम ध्यान में प्रमाद मत करो, प्रथम ध्यान में चित्त स्थिर करो, प्रथम ध्यान में चित्त एकाग्र करो, प्रथम ध्यान में चित्त को समाहित करो।

आवुस! तब, मैं काम और अकुशल धर्मों से हट, वितर्क और विचार वाले, विवेक से उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करने लगा।

आवुस! जो, मुझे ठीक से कहने वाला कह सकता है—बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ २. अवितक्क सुत्त (३८. २)

द्वितीय ध्यान

···लोग 'द्वितीय ध्यान, द्वितीय ध्यान' कहा करते हैं। वह द्वितीय ध्यान क्या है?

आवुस! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से, आध्यात्म प्रसाद वाले, चित्त की एकाग्रता वाले, वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। इसे 'द्वितीय ध्यान' कहते हैं।

आवुस! सो मैं···द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें वितर्क-सहगत संज्ञा उठती हैं।

आवुस! तब, ऋद्धि से भगवान् मेरे पास आ कर बोले, "मोग्गल्लान! मोग्गल्लान!! निष्पाप, द्वितीय ध्यान में प्रमाद मत करो···द्वितीय ध्यान में चित्त को समाहित करो।

आवुस! तब, मैं···द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करने लगा।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ३. सुख सुत्त (३८. ३)

तृतीय ध्यान

···तृतीय ध्यान क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु प्रीति से विरक्त हो उपेक्षा-पूर्वक विहार करता है, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो शरीर से सुख का अनुभव करता है, जिसे पण्डित लोग कहते हैं—स्मृतिमान् हो उपेक्षा-पूर्वक सुखसे विहार करता है। ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। इसे तृतीय ध्यान कहते हैं।

आवुस ! सो मैं···तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस ! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें प्रीति-सहगत संज्ञा उत्पन्न होती हैं।

···मोग्गल्लान ! ···तृतीय ध्यान में चित्त को समाहित करो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ४. उपेक्खक सुत्त (३८. ४)

चतुर्थ ध्यान

···चतुर्थ ध्यान क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सुख और दुःख के प्रहाण हो जाने से, पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, सुख और दुःख से रहित, उपेक्षा और स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। इसे कहते हैं चतुर्थ ध्यान।

आवुस ! सो मैं···चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस ! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें सुख-सहगत संज्ञा उठती हैं।

···मोग्गल्लान !···चतुर्थ ध्यान में चित्त को समाहित करो।···

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ५. आकास सुत्त (३८. ५)

आकाशानन्त्यायतन

···आकाशानन्त्यायतन क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सभी तरह से रूप-संज्ञा का अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा (=निरोध-संज्ञा) के अस्त हो जाने से, नानात्व-संज्ञा के मनमें न लानेसे 'आकाश अनन्त है' ऐसा आकाशानन्त्यायन को प्राप्त हो विहार करता है। यही आकाशानन्त्यायन कहा जाता है।

आवुस ! सो मैं···आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस ! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें रूप-सहगत संज्ञा उठती हैं।

···मोग्गल्लान ! ···आकाशानन्त्यायतन में चित्त को समाहित करो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ६. विञ्ञान सुत्त (३८. ६)

विज्ञानानन्त्यायतन

···विज्ञानानन्त्यायतन क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सभी तरह से आकाशानन्त्यायतन का अतिक्रमण

कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसा विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। यही विज्ञानानन्त्यायतन है।

आवुस ! सो मैं···विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस ! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें आकाशानन्त्यायतन सहगत संज्ञा उठती हैं।

···मोग्गल्लान !···विज्ञानानन्त्यायतन में चित्त को समाहित करो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ७. आकिञ्चञ्ञ सुत्त (३८. ७)

आकिञ्चन्यायतन

···आकिञ्चन्यायतन क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सभी प्रकार से विज्ञानानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। इसीको कहते हैं आकिञ्चन्यायतन।

आवुस ! सो मैं···आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार करता हूँ। आवुस ! इस प्रकार विहार करते मेरे मनमें विज्ञानानन्त्यायतन-सहगत संज्ञा उठती हैं।

···मोग्गल्लान !···आकिञ्चन्यायतन में चित्त को समाहित करो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ८. नेवसञ्ञ सुत्त (३८. ८)

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन

···नैवसंज्ञानासंज्ञायतन क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सभी तरह आकिञ्चन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार करता है। इसी को नैवसंज्ञानासंज्ञायतन कहते हैं।

आवुस ! सो मैं···नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहार करता हूँ। इस तरह विहार करते मेरे मनमें आकिञ्चन्यायतन-सहगत संज्ञा उठती हैं।

···मोग्गल्लान !···नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में चित्त को समाहित करो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ ९. अनिमित्त सुत्त (३८. ९)

अनिमित्त-समाधि

···अनिमित्त चित्त की समाधि क्या है ?

आवुस ! तब, मेरे मनमें यह हुआ :—भिक्षु सभी निमित्त को मनमें न ला अनिमित्त चित्त की समाधि को प्राप्त हो विहार करता है। इसी को अनिमित्त चित्त की-समाधि कहते हैं

आवुस ! सो मैं···अनिमित्त चित्त की समाधि को प्राप्त कर विहार करता हूँ। इस प्रकार विहार करते मुझे निमित्तानुसारी विज्ञान होता है।

···मोग्गल्लान !···अनिमित्त चित की समाधि में लगो।

···बुद्ध से सीखा हुआ श्रावक बड़े ज्ञान को प्राप्त करता है।

§ १०. सक्क सुत्त (३८. १०)

बुद्ध, धर्म, संघ में दृढ़ श्रद्धा से सुगति

एक समय आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे जेतवन में अन्तर्धान हो त्रयस्त्रिंस देवों के बीच प्रगट हुये।

(क)

तब, देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ जहाँ आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान थे वहाँ आया और आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े देवेन्द्र से आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान बोले, "देवेन्द्र ! बुद्ध की शरण में जाना बड़ा अच्छा है। देवेन्द्र ! बुद्ध की शरण में जाने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करते हैं। धर्म की शरण में···। संघ की शरण में···।

मारिष मोग्गल्लान ! सच है, बुद्ध की शरण में जाना बड़ा अच्छा है। बुद्ध की शरण में जाने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करते हैं। धर्म की शरण में···। संघ की शरण में···।

तब, देवेन्द्र शक्र छः सौ देवताओं के साथ···

··· सात सौ देवताओं के साथ···।

··· आठ सौ देवताओं के साथ···।

··· अस्सी सौ देवताओं के साथ···।

मारिष मोग्गल्लान ! सच है, बुद्ध की शरण में जाना बड़ा अच्छा है। बुद्ध की शरण में जाने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करते हैं। धर्म की शरण में···। संघ की शरण में···।

(ख)

तब देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ जहाँ आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान थे वहाँ आया, और आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े देवेन्द्र से आयुष्मान् महा-मोग्गलान बोले:—देवेन्द्र ! बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है कि, "ऐसे वे भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या और चरण से सम्पन्न, अच्छी गति को प्राप्त, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु बुद्ध भगवान्"। देवेन्द्र ! बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा के होने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

देवेन्द्र ! धर्म में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है कि, "भगवान् ने धर्म बड़ा अच्छा बताया है, जिसका फल देखते ही देखते मिलता है, जो बिना देर किये सफल होता है, जिसे लोगों को बुला-बुलाकर दिखाया जा सकता है, जो निर्वाण की ओर ले जानेवाला है, जिसे विज्ञ लोग अपने भीतर ही भीतर जान सकते हैं।" देवेन्द्र ! धर्म में दृढ़ श्रद्धा के होने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

देवेन्द्र ! संघ में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है कि, "भगवान् का श्रावक-संघ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है, सीधे मार्ग पर आरूढ़ है, ज्ञान के मार्ग पर आरूढ़ है, कुशलता के मार्ग पर आरूढ़ है। जो चार पुरुषों के जोड़े आठ श्रेष्ठ पुरुष हैं, यही भगवान् का श्रावक-संघ है। ये आह्वान करने के योग्य हैं, ये अतिशय-सत्कार करने के योग्य हैं, ये दक्षिणा देने के योग्य हैं, प्रणाम् करने के योग्य हैं, ये संसार के अलौकिक पुण्य-क्षेत्र हैं। देवेन्द्र ! संघ में दृढ़ श्रद्धा के होने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

देवेन्द्र ! दृढ़ता-पूर्वक शीलों से युक्त होना अच्छा है, जो शील अखण्ड, अछिद्र, शुद्ध, निर्मल, निष्कल्मष, सेवनीय, विज्ञों से प्रशंसित, अनिन्दित, समाधि के साधक। देवेन्द्र ! इन श्रेष्ठ शील से युक्त होने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

मारिष मोग्गल्लान ! सच है, बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा का होना···।···सुगति को प्राप्त होते हैं।

तब, देवेन्द्र शक्र छः सौ देवताओं के साथ···।

························सात सौ देवताओं के साथ···।

························आठ सौ देवताओं के साथ···।

························अस्सी सौ देवताओं के साथ···।

(ग)

तब, देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ जहाँ आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान थे वहाँ आया, और आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े देवेन्द्र से आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान बोले:—देवेन्द्र ! बुद्ध की शरण में आना अच्छा है। देवेन्द्र ! बुद्ध की शरण में आने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। वे दूसरे देवों से दस बात में बढ़ जाते हैं—दिव्य आयु से, वर्ण से, सुख से, यश से, आधिपत्य से, रूप से, शब्द से, गन्ध से, रस से, और दिव्य स्पर्श से। धर्म की शरण में आना अच्छा है···। संघ की शरण में आना अच्छा है···।

मारिष मोग्गल्लान ! सच है, बुद्ध की शरण में···। धर्म की शरण में···। संघ की शरण में···।

तब, देवेन्द्र शक्र छः सौ देवताओं के साथ···।

························सात सौ देवताओं के साथ···।

························आठ सौ देवताओं के साथ···।

························अस्सी सौ देवताओं के साथ···।

(घ)

तब, देवेन्द्र शक्र पाँच सौ देवताओं के साथ जहाँ आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान थे वहाँ आया और आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़े देवेन्द्र से आयुष्मान् महा-मोग्गल्लान बोले :—देवेन्द्र ! बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है कि···देवताओं और मनुष्यों के गुरु बुद्ध भगवान्। देवेन्द्र ! बुद्ध में दृढ़ श्रद्धा के होने से कितने लोग मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। वहाँ, वे दूसरे देवों से दस बात में बढ़ जाते हैं···।

देवेन्द्र ! धर्म में दृढ़ श्रद्धा का होना···। वहाँ वे दूसरे देवों से दस बात में बढ़ जाते हैं···।

देवेन्द्र ! संघ में दृढ़ श्रद्धा का होना···। वहाँ वे दूसरे देवों से दस बात में बढ़ जाते हैं···।

मारिष मोग्गल्लान ! सच है···।

तब, देवेन्द्र शक्र छः सौ देवताओं के साथ···।

··· सात सौ देवताओं के साथ···।

··· आठ सौ देवताओं के साथ···।

··· अस्सी सौ देवताओं के साथ···।

§ ११. चन्दन सुत्त (३८. ११)

त्रिरत्न में श्रद्धा से सुगति

तब, देवपुत्र चन्दन···[देवेन्द्र शक्र की तरह विस्तार कर लेना चाहिये]

तब, देवपुत्र सुयाम···।

तब, देवपुत्र संतुसित···।

तब, देवपुत्र सुनिर्मित···।

तब, देवपुत्र वशवर्ती···।

मोग्गल्लान-संयुत्त समाप्त

सातवाँ परिच्छेद

३९. चित्त-संयुत्त

§ १. सञ्ञोजन सुत्त (३९. १)

छन्दराग ही बन्धन है

एक समय कुछ स्थविर भिक्षु मच्छिकासण्ड में अम्बाटक-वन में विहार करते थे।

उस समय, भिक्षाटन से लौट भोजन करने के उपरान्त सभा-गृह में एकत्रित हो बैठे हुये उन स्थविर भिक्षुओं के बीच यह बात चली—आवुस ! 'संयोजन' और 'संयोजनीय-धर्म' भिन्न भिन्न अर्थ वाले और भिन्न भिन्न अक्षर वाले हैं, अथवा एक ही अर्थ को बताने वाले दो शब्द हैं ?

वहाँ, कुछ स्थविर भिक्षु ऐसा कहते थे—आवुस ! 'संयोजन' और 'संयोजनीय-धर्म' भिन्न-भिन्न अर्थ वाले और भिन्न भिन्न अक्षर वाले हैं।

वहाँ, कुछ स्थविर भिक्षु ऐसा कहते थे—आवुस ! 'संयोजन' और 'संयोजनीय-धर्म' एक ही अर्थ को बताने वाले दो शब्द हैं।

उस समय, गृहपति चित्र किसी काम से मृगपथक[1] आया हुआ था।

गृहपति चित्र ने सुना—भिक्षाटन से लौट भोजन करने के उपरान्त सभागृह में···अथवा एक ही अर्थ को बतानेवाले दो शब्द हैं ? वहाँ कुछ स्थविर भिक्षु ऐसा कहते थे···।

तब, गृहपति चित्र जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ आया, और उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र उन स्थविर भिक्षुओं से बोला—भन्ते ! मैंने सुना है कि भिक्षाटन से लौट भोजन करने के उपरान्त सभागृह में···अथवा एक ही अर्थ को बतानेवाले दो शब्द हैं ? वहाँ, कुछ स्थविर भिक्षु ऐसा कहते थे···।

हाँ गृहपति ! ठीक बात है।

भन्ते ! 'संयोजन' और 'संयोजनीय-धर्म' भिन्न-भिन्न अर्थवाले और भिन्न-भिन्न अक्षर वाले हैं। भन्ते ! मैं एक उपमा कहता हूँ। उपमा से भी कितने विज्ञ लोग कहने के अर्थ को समझ लेते हैं।

भन्ते ! जैसे, कोई काला बैल किसी उजले बैल के साथ एक रस्सी से बाँध दिया गया हो। तब, यदि कोई कहे कि काला बैल उजले बैल का बन्धन है, या उजला बैल काले बैल का बन्धन है तो क्या वह ठीक समझा जायगा ?

नहीं गृहपति ! न तो काला बैल उजले बैल का बन्धन है और न उजला बैल काले बैल का बन्धन है, किन्तु जो दोनों एक रस्सी से बँधे हैं वही वहाँ बन्धन है।

भन्ते ! वैसे ही, न चक्षु रूपों का बन्धन है, और न रूप चक्षु के बन्धन हैं, किन्तु वहाँ जो दोनों के प्रत्यय से छन्द-राग उत्पन्न होता है वही वहाँ बन्धन है। न श्रोत्र शब्दों का···। न घ्राण···। न जिह्वा···। न काया···। न मन धर्मों का बन्धन है, और न मन धर्म के बन्धन हैं, किन्तु वहाँ जो दोनों के प्रत्यय से छन्द-राग उत्पन्न होता है वही वहाँ बन्धन है।

---

१. मृगपथक—गृहपति चित्र का अपना गाँव, जो अम्बाटक वन के पीछे ही था—अट्ठकथा।

गृहपति ! तुम बड़े भाग्यवान् हो, कि बुद्ध के इतने गम्भीर धर्म में तुम्हारा प्रज्ञा-चक्षु पैठता है।

§ २. पठम इसिदत्त सुत्त (३९. २)

धातु की विभिन्नता

एक समय, कुछ स्थविर भिक्षु **मच्छिकासण्ड** में **अम्बाटकवन** में विहार करते थे।

तब, गृहपति चित्र जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ आया, और उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र उन स्थविर भिक्षुओं से बोला—"भन्ते कल मेरे यहाँ भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करें।

स्थविर भिक्षुओं ने चुप रह कर स्वीकार किया।

तब, चित्र गृहपति उनकी स्वीकृति को जान, आसन से उठ उनको प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब, उस रात के बीत जाने पर दूसरे दिन पूर्वाह्न में वे स्थविर भिक्षु पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ गृहपति चित्र का घर था वहाँ गये। जा कर बिछे आसन पर बैठ गये।

तब, गृहपति चित्र जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ गया और उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र आयुष्मान् स्थविर से बोला—भन्ते ! लोग 'धातु-नानात्व, धातु-नानात्व' कहा करते हैं। भन्ते ! भगवान् ने धातु-नानात्व क्या बताया है ?

ऐसा कहने पर आयुष्मान् चुप रहे।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···चुप रहे।

उस समय, आयुष्मान् ऋषिदत्त उन भिक्षुओं में सबसे नये थे।

तब, आयुष्मान् ऋषिदत्त उन स्थविर आयुष्मान् से बोले —भन्ते ! यदि आज्ञा हो तो मैं गृहपति चित्र के प्रश्न का उत्तर दूँ।

हाँ ऋषिदत्त ! आप गृहपति चित्र के प्रश्न का उत्तर दें।

गृहपति ! तुम्हारा यही न पूछना है कि—भन्ते ! लोग 'धातु-नानात्व, धातु-नानात्व' कहा करते हैं। भन्ते ! भगवान् ने धातु-नानात्व क्या बताया है ?

हाँ भन्ते !

गृहपति ! भगवान् ने धातु-नानात्व यह बताया है—चक्षु-धातु, रूप-धातु, चक्षुविज्ञान-धातु··· मनो-धातु, धर्म-धातु, मनोविज्ञान-धातु। गृहपति ! भगवान् ने यही धातु-नानात्व बताया है।

तब, गृहपति चित्र ने आयुष्मान् ऋषिदत्त के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, स्थविर भिक्षुओं को अपने हाथ से परोस-परोस कर अच्छे-अच्छे भोजन खिलाये।

तब, वे स्थविर भिक्षु यथेष्ट भोजन कर लेने के बाद आसन से उठ चले गये।

तब, आयुष्मान् स्थविर आयुष्मान् ऋषिदत्त से बोले—आवुस ऋषिदत्त ! अच्छा हुआ कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझ गया, मुझे तो नहीं सूझा था। आवुस ऋषिदत्त ! अच्छा हो कि भविष्य में भी ऐसे प्रश्न पूछे जाने पर आप ही उत्तर दिया करें

§ ३. दुतिय इसिदत्त सुत्त (३९. ३)

सत्काय से ही मिथ्या दृष्टियाँ

·· [ऊपर जैसा ही]

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र आयुष्मान् स्थविर से बोला—भन्ते स्थविर ! जो संसार में नाना

मिथ्या दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं कि, लोक शाश्वत है, लोक अशाश्वत है, लोक सान्त है, लोक अनन्त है, जो जीव है वही शरीर है, जीव दूसरा है और शरीर दूसरा है, तथागत (=जीव) मरने के बाद रहता है, नहीं रहता है, न रहता है और न नहीं रहता है, और जो ब्रह्मजाल सूत्र में बासठ मिथ्या-दृष्टियाँ कही गई हैं" वह किसके होने से होती हैं और किसके नहीं होने से नहीं होती हैं ?

यह कहने पर आयुष्मान् स्थविर चुप रहे।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···चुप रहे।

उस समय आयुष्मान् ऋषिदत्त उन भिक्षुओं में सबसे नये थे।

तब, आयुष्मान् ऋषिदत्त उन स्थविर आयुष्मान् से बोले—भन्ते ! यदि आज्ञा हो तो मैं गृहपति चित्र के प्रश्न का उत्तर दूँ।

हाँ ऋषिदत्त ! आप गृहपति चित्र के प्रश्न का उत्तर दें।

गृहपति ! तुम्हारा यही न पूछना है कि—भन्ते ! जो संसार में नाना मिथ्या दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं···वह किसके होने से होती हैं और किसके नहीं होने से नहीं होती हैं ?

हाँ भन्ते !

गृहपति ! जो संसार में नाना मिथ्या दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं···वह सत्काय-दृष्टि के होने से होती हैं, और सत्काय-दृष्टि के नहीं होने से नहीं होती हैं।

भन्ते ! सत्काय-दृष्टि कैसे होती है ?

गृहपति ! अज्ञ पृथक् जन······रूप को आत्मा करके जानता है, आत्मा को रूपवान्, आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा जानता है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान को आत्मा करके जानता है, आत्मा को विज्ञानवान्, आत्मा में विज्ञान, या विज्ञान में आत्मा जानता है। गृहपति ! इस तरह, सत्काय-दृष्टि होती है।

भन्ते ! कैसे सत्काय-दृष्टि नहीं होती है ?

गृहपति ! पण्डित आर्य-श्रावक······न रूप को आत्मा करके जानता है, न आत्मा को रूपवान्, न आत्मा में रूप, न रूप में आत्मा जानता है। वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···। गृहपति ! इस तरह, सत्काय-दृष्टि नहीं होती है।

भन्ते ! आर्य ऋषिदत्त कहाँ से आते हैं ?

गृहपति ! मैं अवन्ती से आता हूँ।

भन्ते ! अवन्ती में ऋषिदत्त नाम का कुलपुत्र एक हम लोगों का मित्र रहता है, जिसे हमने कभी नहीं देखा है और जो आजकल प्रव्रजित हो गया है। आयुष्मान् ने उसे देखा है ?

हाँ गृहपति ! देखा है।

भन्ते ! वे आयुष्मान् इस समय कहाँ विहार करते हैं ?

इस पर, आयुष्मान् ऋषिदत्त चुप रहे।

भन्ते ! क्या आर्य ही ऋषिदत्त हैं ?

हाँ गृहपति !

भन्ते ! आर्य ऋषिदत्त मच्छिकासण्ड में सुख से विहार करें। अम्बाटकवन बड़ा रमणीय है। मैं आर्य ऋषिदत्त की सेवा चीवरादि से करूँगा।

गृहपति ! ठीक कहा है।

तब, गृहपति चित्र ने आयुष्मान् ऋषिदत्त के कहने का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, स्थविर भिक्षुओं को अपने हाथ से परोस-परोस कर अच्छे भोजन खिलाये।

तब, स्थविर भिक्षु यथेष्ट भोजन कर आसन से उठ चले गये।

तब, आयुष्मान् स्थविर आयुष्मान् ऋषिदत्त से बोले—आवुस ऋषिदत्त ! अच्छा हुआ कि इस प्रश्न का उत्तर आपको सूझ गया, मुझे तो नहीं सूझा था। आवुस ऋषिदत्त ! अच्छा हो कि भविष्य में भी ऐसे प्रश्न पूछे जाने पर आप ही उत्तर दिया करें।

तब आयुष्मान् ऋषिदत्त अपनी बिछावन उठा पात्र और चीवर ले मच्छिकासण्ड से चले गये, वहाँ फिर लौट कर नहीं आये।

§ ४. महक सुत्त (३९. ४)

महक द्वारा ऋद्धि-प्रदर्शन

एक समय, कुछ स्थविर भिक्षु मच्छिकासण्ड में अम्बाटकवन में विहार करते थे।

···एक ओर बैठ, गृहपति चित्र उन स्थविर भिक्षुओं से बोला—भन्ते ! कल मेरी गौशाला में भोजन के लिये निमन्त्रण स्वीकार करें।

स्थविर भिक्षुओं ने चुप रह कर स्वीकार कर लिया।

···तब, स्थविर भिक्षु यथेष्ट भोजन कर आसन से उठ चले गये।

गृहपति चित्र 'बचे खुचे को बाँट दो' कह, स्थविर भिक्षुओं के पीछे पीछे हो लिया।

उस समय बड़ी जलती हुई गर्मी पड़ रही थी। वे स्थविर भिक्षु बड़े कष्ट से आगे जा रहे थे।

उस समय आयुष्मान् महक उन भिक्षुओं में सबसे नये थे। तब, आयुष्मान् महक आयुष्मान् स्थविर से बोले—भन्ते स्थविर ! अच्छा होता कि ठंढी वायु बहती, मेघ छा जाता और कुछ कुछ फूही पड़ने लगती।

आवुस महक ! हाँ, अच्छा होता कि···कुछ कुछ फूही पड़ने लगती।

तब, आयुष्मान् महक ने वैसी ऋद्धि लगाई कि ठंढी वायु बहने लगी, मेघ छा गया, और कुछ कुछ फूही पड़ने लगी।

तब, गृहपति चित्र के मन में यह हुआ—इन भिक्षुओं में जो सब से नया है उसी का यह ऋद्धि-अनुभाव है।

तब, आराम पहुँच आयुष्मान् महक आयुष्मान् स्थविर से बोले—भन्ते स्थविर ! इतना ही बस रहे।

हाँ आवुस महक ! इतना ही रहे। इतने से काम हो गया।

तब, स्थविर भिक्षु अपने-अपने स्थान पर चले गये, और आयुष्मान् महक भी अपने स्थान पर चले गये।

तब, गृहपति चित्त जहाँ आयुष्मान् महक थे वहाँ गया, और उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र आयुष्मान् महक से बोला—भन्ते ! आर्य महक कुछ अपनी अलौकिक ऋद्धि दिखावें।

गृहपति ! तो, आलिन्द में चादर बिछा कर उसपर घास-फूस बिखेर दो।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, गृहपति चित्र ने आयुष्मान् महक को उत्तर दे आलिन्द में चादर बिछा कर उस पर घास-फूस बिखेर दिया।

तब, आयुष्मान् महक ने विहार में पैठ किवाड़ लगा वैसी ऋद्धि लगाई कि एक बड़ी आग की लहर उठी जिसने घास-फूस को जला दिया किंतु चादर ज्यों की त्यों रही।

तब, गृहपति चित्र अपनी चादर को झाड़, आश्चर्य से चकित हुये एक ओर खड़ा हो गया।

तब, आयुष्मान् महक विहार से निकल गृहपति चित्र से बोले, "गृहपति ! अब बस रहे ।"

हाँ भन्ते महक ! अब बस रहे, इतना काफी है । भन्ते ! आर्य महक मच्छिकासण्ड में सुख से रहें । अम्बाटकवन बड़ा रमणीय है । मैं आर्य महक की सेवा चीवरादि से करूँगा ।

गृहपति ! ठीक कहते हो ।

तब, आयुष्मान् महक अपनी बिछावन समेट, पात्र-चीवर ले मच्छिकासण्ड से चले गये, फिर कभी लौट कर नहीं आये ।

§ ५. पठम कामभू सुत्त (३९. ५)

विस्तृत उपदेश

एक समय आयुष्मान् कामभू मच्छिकासण्ड में अम्बाटकवन में विहार करते थे ।

तब, गृहपति चित्र जहाँ आयुष्मान् कामभू थे वहाँ आया···।

एक ओर बैठे गृहपति चित्र को आयुष्मान् कामभू बोलेः—गृहपति ! कहा गया है:—

निर्दोष, श्वेत आच्छादन वाला,
एक अरावाला चलता रथ है ।
दुःख-रहित उसको आते देखो,
जिसका स्रोत रुक गया है, और जो बन्धन से मुक्त है ॥

गृहपति ! इस संक्षेप से कहे गये का विस्तार से कैसे अर्थ समझना चाहिये ?

भन्ते ! क्या भगवान् ने ऐसा कहा है ?

हाँ गृहपति !

भन्ते ! तो थोड़ा ठहरें, मैं इस पर कुछ विचार कर लूँ ।

तब, गृहपति चित्र कुछ समय तक चुप रह आयुष्मान् कामभू से बोला—

भन्ते ! 'निर्दोष से' शील का अभिप्राय है ।

भन्ते ! 'श्वेत आच्छादन से' विमुक्ति का अभिप्राय है ।

भन्ते ! 'एक अरा से' स्मृति का अभिप्राय है ।

भन्ते ! 'चलता से' आगे बढ़ना और पीछे हटने का अभिप्राय है ।

भन्ते ! 'रथ से' यह चार महाभूतों के बने हुये शरीर से अभिप्राय है, जो माता-पिता से उत्पन्न हुआ है, भात-दाल से पला-पोसा है, अनित्य, धोने मलनेवाला, और नष्ट होना जिसका स्वभाव है ।

भन्ते ! राग दुःख है, द्वेष दुःख है, मोह दुःख है । वे क्षीणाश्रव भिक्षु के प्रहीण हो जाते हैं,···। इसलिये, क्षीणाश्रव भिक्षु दुःख-रहित होता है ।

भन्ते ! 'आते' से अर्हत् का अभिप्राय है ।

भन्ते ! 'स्रोत' से तृष्णा का अभिप्राय है । वह क्षीणाश्रव भिक्षु की प्रहीण होती है···। इसलिये, क्षीणाश्रव भिक्षु 'छिन्न-स्रोत' कहा जाता है ।

भन्ते ! राग बन्धन है, द्वेष बन्धन है, मोह बन्धन है । वे क्षीणाश्रव भिक्षु के प्रहीण हो जाते हैं···। इसलिये, क्षीणाश्रव भिक्षु 'अबन्धन' कहे जाते हैं ।

भन्ते ! इसीलिये भगवान् ने कहा है—

निर्दोष, श्वेत आच्छादन वाला,
एक अरा वाला चलता रथ है ।
दुःख-रहित उसको आते देखो,
जिसका स्रोत रुक गया है, और जो बन्धन से मुक्त है ॥

भन्ते ! भगवान् के इस संक्षेप से कहे गये का विस्तार से ऐसे ही अर्थ समझना चाहिये।

गृहपति ! तुम बड़े भाग्यवान् हो, जो भगवान् के इतने गम्भीर धर्म में तुम्हारा प्रज्ञा-चक्षु जाता है।

§ ६. दुतिय कामभू सुत्त (३९. ६)

तीन प्रकार के संस्कार

…एक ओर बैठ, गृहपति चित्र आयुष्मान् कामभू से बोला—भन्ते ! संस्कार कितने हैं ?

गृहपति ! संस्कार तीन हैं। (१) काय-संस्कार, (२) वाक्-संस्कार, और (३) चित्त-संस्कार

साधुकार दे, गृहपति चित्र ने आयुष्मान् कामभू के कहे गये का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! कितने काय-संस्कार, कितने वाक्-संस्कार और कितने चित्त-संस्कार हैं ?

गृहपति ! आश्वास-प्रश्वास काय-संस्कार हैं। वितर्क-विचार वाक्-संस्कार हैं। संज्ञा और वेदना चित्त-संस्कार हैं।

साधुकार दे…आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! आश्वास-प्रश्वास क्यों काय-संस्कार हैं ? वितर्क-विचार क्यों वाक्-संस्कार हैं ? संज्ञा और वेदना क्यों चित्त-संस्कार हैं ?

गृहपति ! आश्वास-प्रश्वास काया के धर्म हैं, जो काया में लगे रहते हैं। इसलिये, आश्वास-प्रश्वास काय-संस्कार हैं।

गृहपति ! पहले वितर्क और विचार करके पीछे कुछ बात बोली जाती है, इसलिये वितर्क-विचार वाक्-संस्कार हैं।

गृहपति ! संज्ञा और वेदना चित्त के धर्म हैं, इसलिये संज्ञा और वेदना चित्त के संस्कार हैं।

साधुकार दे…आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध-समापत्ति कैसे होती है ?

गृहपति ! संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त करने वाले भिक्षु को यह नहीं होता है—मैं संज्ञा-वेदयित-निरोध को प्राप्त करूँगा, या करता हूँ, या किया था। किंतु, उसका चित्त पहले ही इतना भावित रहता है जो उसे वहाँ तक ले जाता है।

साधुकार दे…आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध प्राप्त करने वाले भिक्षु के सर्व-प्रथम कौन धर्म निरुद्ध होते हैं—काय-संस्कार, या वाक्-संस्कार, या चित्त-संस्कार।

गृहपति ! संज्ञावेदयित-निरोध प्राप्त करनेवाले भिक्षु के सर्व-प्रथम वाक्-संस्कार निरुद्ध होते हैं। तब काय-संस्कार; तब चित्त-संस्कार।

साधुकार दे…आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! जो मर गया है और जो संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त हुआ है, इन दोनों में क्या भेद है ?

गृहपति ! जो मर गया है उसका काय-संस्कार निरुद्ध हो गया है, प्रश्रब्ध हो गया है; वाक्-संस्कार निरुद्ध हो गया है, प्रश्रब्ध हो गया है; चित्त-संस्कार निरुद्ध हो गया है, प्रश्रब्ध हो गया है; आयु समाप्त हो गई है, श्वास रुक गये हैं, इन्द्रियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं। गृहपति ! जो भिक्षु संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त हुआ है उसका काय-संस्कार निरुद्ध…। वाक्-संस्कार निरुद्ध…; चित्त-संस्कार निरुद्ध…; आयु समाप्त हो गई है, श्वास रुक गये हैं, किन्तु इन्द्रियाँ विप्रसन्न रहती हैं।

गृहपति ! जो मर गया है और जो संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त हुआ है, इन दोनों में यही भेद है।

साधुकार दे···आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये क्या प्रयास होता है ?

गृहपति ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु को ऐसा नहीं होता है कि—मैं संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करूँगा, या कर रहा हूँ, या किया था। किन्तु, उसका चित्त पहले ही इतना भावित रहता है जो उसे वहाँ तक ले जाता है।

साधुकार दे···आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु के सर्व-प्रथम कौन धर्म उत्पन्न होते हैं, या काय-संस्कार, या वाक्-संस्कार, या चित्त-संस्कार ?

गृहपति ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु को सर्व-प्रथम चित्त-संस्कार उत्पन्न होता है, तब काय-संस्कार, तब वाक्-संस्कार।

साधुकार दे···आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित—निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु को कितने स्पर्श अनुभव होते हैं ?

गृहपति ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु को तीन स्पर्श अनुभव होते हैं। शून्य से स्पर्श, अनिमित्तसे स्पर्श, अप्रणिहित स्पर्श।

साधुकार दे···आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु का चित्त किधर झुका होता है ?

गृहपति !···भिक्षु का चित्त विवेक की ओर झुका होता है।

साधुकार दे···आगे का प्रश्न पूछा।

भन्ते ! संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये प्रयास करते भिक्षु को कौन धर्म साधक होते हैं ?

हे गृहपति ! जो पहले पूछना चाहिये था उसे तुमने पीछे पूछा। अच्छा, उसका उत्तर देता हूँ। संज्ञावेदयित-निरोध की प्राप्ति के लिये दो धर्म अत्यन्त साधक हैं—समथ और विदर्शना।

§ ७. गोदत्त सुत्त (३९. ७)

एक अर्थ वाले विभिन्न शब्द

एक समय, आयुष्मान् गोदत्त मच्छिकासण्ड में अम्बाटकवन में विहार करते थे।

एक ओर बैठे गृहपति चित्र से आयुष्मान् गोदत्त बोले—गृहपति ! जो अप्रमाण चेतोविमुक्ति है, जो आकिञ्चन्य चेतोविमुक्ति है, जो शून्यता चेतोविमुक्ति है, और जो अनिमित्त चेतोविमुक्ति है, क्या इन धर्मों के भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न-भिन्न अक्षर हैं या एक ही अर्थ बताने वाले इतने शब्द हैं ?

भन्ते ! एक दृष्टि-कोण से ये धर्म भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न-भिन्न अक्षर वाले हैं, किन्तु दूसरे दृष्टि-कोण से ये भिन्न-भिन्न शब्द एक ही अर्थ को बताते हैं।

गृहपति ! किस दृष्टि-कोण से ये धर्म भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न-भिन्न अक्षर वाले हैं ?

भन्ते ! भिक्षु मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को पूर्ण कर विहार करता है। वैसे ही दूसरी दिशा को, तीसरी दिशा को, चौथी दिशा को, ऊपर, नीचे, टेढ़े-मेढ़े। सभी प्रकार से सारे लोक को अप्रमाण मैत्री-सहगत चित्त से···पूर्ण कर विहार करता है। करुणा-सहगत चित्त से···। मुदिता-सहगत चित्त से···। करुणा-सहगत चित्त से···। भन्ते ! इसी को कहते हैं 'अप्रमाण चित्त से विमुक्ति'।

भन्ते ! आकिञ्चन्य चेतो-विमुक्ति क्या है ? भन्ते ! भिक्षु सभी तरह विज्ञानानन्त्यायतन का

अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो विहार करता है। भन्ते ! इसी को कहते हैं 'आकिञ्चन्य-चेतोविमुक्ति'।

भन्ते ! शून्यता-चेतोविमुक्ति क्या है ? भन्ते ! भिक्षु आरण्य में, वृक्ष के नीचे, या शून्य-गृह में जा ऐसा चिन्तन करता है—यह आत्मा या आत्मीय से शून्य है। भन्ते ! इसी को कहते हैं 'शून्यता-चेतोविमुक्ति'।

भन्ते ! अनिमित्त चेतोविमुक्ति क्या है ? भन्ते ! भिक्षु सभी निमित्तों को मन में न ला अनिमित्त चित्त की समाधि को प्राप्त हो विहार करता है। भन्ते ! इसी को कहते हैं 'अनिमित्त-चेतोविमुक्ति'।

भन्ते ! यही एक दृष्टि-कोण है जिससे ये धर्म भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न अक्षर वाले हैं।

भन्ते ! किस दृष्टि-कोण से यह एक ही अर्थ को बताने वाले भिन्न-भिन्न शब्द हैं ?

भन्ते ! राग प्रमाण करनेवाला है, द्वेष···, मोह···। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न···होते हैं। भन्ते ! जितनी अप्रमाण चेतोविमुक्तियाँ हैं सभी में अर्हत्व-फल-चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। वह अर्हत्व-फल-चेतोविमुक्ति राग से शून्य है, द्वेष से शून्य, और मोह से शून्य है।

भन्ते ! राग किंचन (=कुछ) है, द्वेष···, मोह···। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न···होते हैं। भन्ते ! जितनी आकिञ्चन्य चेतोविमुक्तियाँ हैं सभी में अर्हत्व-फल-चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है।

भन्ते ! राग निमित्त-करण है, द्वेष···, मोह···। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न······होते हैं। भन्ते ! जितनी अनिमित्त चेतोविमुक्तियाँ हैं सभी में अर्हत्व-फल-चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है।···

भन्ते ! इस दृष्टि-कोण से यह एक ही अर्थ को बताने वाले भिन्न भिन्न शब्द हैं।

§ ८. निगण्ठ सुत्त (३९. ८)

ज्ञान बड़ा है या श्रद्धा ?

उस समय निगण्ठ नातपुत्र मच्छिकासण्ड में अपनी बड़ी मण्डली के साथ पहुँचा हुआ था।

गृहपति चित्र ने सुना कि निगण्ठ नातपुत्र मच्छिकासण्ड में अपनी बड़ी मण्डली के साथ पहुँचा हुआ है।

तब, गृहपति चित्र कुछ उपासकों के साथ जहाँ निगण्ठ नातपुत्र था वहाँ गया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे गृहपति चित्र से निगण्ठ नातपुत्र बोला—गृहपति ! तुम्हें क्या ऐसा विश्वास है कि श्रमण गौतम को भी अवितर्क अविचार समाधि लगती है, उसके वितर्क और विचार का क्या निरोध होता है ?

भन्ते ! मैं श्रद्धा से ऐसा नहीं मानता हूँ कि भगवान् को अवितर्क अविचार समाधि लगती है,···।

इस पर, निगण्ठ नातपुत्र अपनी मण्डली को देख कर बोला—आप लोग देखें, गृहपति ! चित्र कितना सीधा है, सच्चा है, निष्कपट है !! वितर्क और विचार का निरोध कर देना मानो हवा को जाल से बझाना है।

भन्ते ! क्या समझते हैं, ज्ञान बड़ा है या श्रद्धा ?

गृहपति ! श्रद्धा से ज्ञान ही बड़ा है।

भन्ते ! जब मेरी इच्छा होती है, मैं···प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता हूँ, द्वितीय ध्यान,···तृतीय ध्यान···, चतुर्थ ध्यान···।

भन्ते ! सो मैं स्वयं ऐसा जान और देख क्या किसी श्रमण या ब्राह्मण की श्रद्धा से ऐसा जानूँगा कि अवितर्क, अविचार समाधि होती है, तथा वितर्क और विचार का निरोध होता है !!

ऐसा कहने पर, निगण्ठ नातपुत्र अपनी मण्डली को देखकर बोला—आप लोग देखें, गृहपति चित्र कितना टेढ़ा है, शठ है, कपटी है !!

भन्ते ! अभी तुरत ही आपने कहा था—"'गृहपति चित्र कितना सीधा है'", और अभी तुरत ही आप कह रहे हैं—"'गृहपति चित्र कितना टेढ़ा है'"।

भन्ते ! यदि आपकी पहली बात सच है तो दूसरी बात झूठ, और यदि दूसरी बात सच है तो पहली बात झूठ। भन्ते ! यह दस धर्म के प्रश्न आते हैं। जब आप इनका उत्तर जानें तो मुझे और अपनी मण्डली को बतावें। (१) जिसका प्रश्न एक का हो और जिसका उत्तर भी एक का हो। (२) जिसका प्रश्न दो का हो और जिसका उत्तर भी दो का हो। (३) जिसका प्रश्न तीन का हो और जिसका उत्तर भी तीन का हो। (४) जिसका प्रश्न चार का हो और जिसका उत्तर भी चार का हो। (५) जिसका प्रश्न पाँच का…। (६) जिसका प्रश्न छः का…। (७) जिसका प्रश्न सात का…। (८) जिसका प्रश्न आठ का…। (९) जिसका प्रश्न नव का…। (१०) जिसका प्रश्न दस का हो, और जिसका उत्तर भी दस का हो।

तब, गृहपति चित्र निगण्ठ नातपुत्र से यह प्रश्न पूछ आसन से उठकर चला गया।

§ ९. अचेल सुत्त (३९. ९)

अचेल काश्यप की अर्हत्व प्राप्ति

उस समय, पहले गृहस्थ का मित्र अचेल काश्यप मच्छिकासण्ड में आया हुआ था।

…तब, गृहपति चित्र जहाँ अचेल काश्यप था वहाँ गया, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, गृहपति चित्र अचेल काश्यप से बोला:—भन्ते काश्यप ! आपको प्रव्रजित हुये कितने दिन हुये।

गृहपति ! मेरे प्रव्रजित हुये तीस वर्ष बीत गये।

भन्ते ! इस अवधि में क्या आपने किसी अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन किया है ?

गृहपति ! मैंने इस अवधि में किसी अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन नहीं किया है, केवल नंगा रहने, माथा मुड़ाने, और झाड़ू देने के।

यह कहने पर, गृहपति चित्र अचेल काश्यप से बोला—आश्चर्य है रे, अद्भुत है रे ! आपके धर्म की अच्छाई बड़ी है कि तीस वर्ष में भी आपने कोई अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन नहीं किया है, केवल नंगा रहने, माथा मुड़ाने और झाड़ू देने के !

गृहपति ! तुम्हारे उपासक रहे कितने दिन हुये ?

भन्ते ! मेरे उपासक रहे भी तीस वर्ष हो गये।

गृहपति ! इस अवधि में क्या तुमने किसी अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन किया है ?

भन्ते ! मुझे क्या नहीं हुआ !! भन्ते ! मैं जब चाहता हूँ;…प्रथम ध्यान,…द्वितीय ध्यान,…तृतीय ध्यान,…चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूँ। भन्ते ! यदि मैं भगवान् के पहले मरूँ तो यह आश्चर्य नहीं कि भगवान् कहें कि ऐसा कोई संयोजन नहीं है जिससे गृहपति चित्र युक्त हो फिर भी इस संसार में आवेगा।

यह कहने पर, अचेल काश्यप गृहपति चित्र से बोला—आश्चर्य है, अद्भुत है !! वाह रे धर्म की अच्छाई कि उजला कपड़ा पहनने वाला गृहस्थ भी इस प्रकार अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन कर लेता है !

गृहपति ! मैं भी इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा पाऊँ।

तब, गृहपति चित्र अचेल काश्यप को ले जहाँ स्थविर भिक्षु थे वहाँ गया और बोला—भन्ते ! यह अचेल काश्यप मेरा पहले गृहस्थ का मित्र है। इसे आप लोग प्रव्रज्या और उपसम्पदा दें। मैं चीवर आदि से इसकी सेवा करूँगा।

अचेल काश्यप ने इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पाने के बाद ही आयुष्मान् काश्यप ने अकेला, अलग, अप्रमत्त···रह···जाति क्षीण हुई···जान लिया।

आयुष्मान् काश्यप अर्हतों में एक हुये।

§ १०. गिलानदस्सन सुत्त (३९. १०)

चित्र गृहपति की मृत्यु

उस समय, गृहपति चित्र बड़ा बीमार पड़ा था।

तब, कुछ आराम देवता, वन देवता, वृक्ष देवता, औषधि-तृण-वनस्पति में रहनेवाले देवता गृहपति चित्र के पास आकर बोले—गृहपति ! जीवित रहें, आगे चलकर आप चक्रवर्ती राजा होंगे।

यह कहने पर, गृहपति चित्र उन देवताओं से बोला—वह भी अनित्य है, वह भी अध्रुव है, वह भी छोड़ देने के योग्य है।

यह कहने पर, गृहपति चित्र के मित्र और बन्धु बान्धव उससे बोले—आर्य ! स्मृतिमान् होवें, मत घबड़ायें।

आप लोगों से मैं क्या कहता हूँ जो मुझे कहते हैं—आर्य ! स्मृतिमान् होवें, मत घबड़ायें।

आर्य ! आप कहते हैं—वह भी अनित्य है, वह भी अध्रुव है, वह भी छोड़ देने योग्य है।

वह तो, आराम-देवता, वन-देवता···आगे चलकर आप चक्रवर्ती राजा होंगे। उन्हें ही मैंने कहा था—वह भी अनित्य है···।

आर्य ! क्या आप के पास आराम-देवता···ने आकर कहा था···आप चक्रवर्ती राजा होंगे ?

उन आराम-देवता···के मन में यह हुआ—यह गृहपति चित्र शीलवान्, धार्मिक है। यदि जीवित रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा। शीलवान् अपने विशुद्ध-भाव से चित्तका प्रणिधान कर सकता है। धार्मिक-फल का स्मरण करेगा।

वह आराम देवता···कुछ अर्थ सिद्ध होते देखकर ही बोले थे—गृहपति ! जीवित रहें, आगे चलकर आप चक्रवर्ती राजा होंगे। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—वह भी अनित्य है, वह भी अध्रुव है, वह भी छोड़ने योग्य है।

आर्य ! मुझे भी कुछ उपदेश करें।

तो, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध में मेरी दृढ़ श्रद्धा होगी—ऐसे वह भगवान् अर्हत्···। धर्म में मेरी दृढ़ श्रद्धा होगी—भगवान् ने धर्म बड़ा अच्छा बताया है···। संघ में मेरी दृढ़ श्रद्धा होगी···। भगवान् का श्रावक-संघ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है···। शीलवान् धार्मिक भिक्षुओं को पूरा दान देना।

ऐसा ही तुम्हें सीखना चाहिये।

तब, गृहपति चित्र अपने मित्र और बन्धु-बान्धवों को बुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धालु होने तथा दानशील होने का उपदेश कर मर गया।

चित्त संयुत्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

४०. गामणी संयुत्त

§ १. चण्ड सुत्त (४०. १)

चण्ड और सूर कहलाने के कारण

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, चण्ड ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया…। एक ओर बैठ, चण्ड ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते! क्या कारण है कि कुछ लोग 'चण्ड' कहे जाते हैं, और कुछ लोग 'सूर' कहे जाते हैं?

ग्रामणी! किसी का राग प्रहीण नहीं होता है। इससे वह दूसरों से कोप करता है और लड़ाई झगड़ा करता है। वह 'चण्ड' कहा जाने लगता है। द्वेष…। मोह…। वह चण्ड कहा जाने लगता है।

ग्रामणी! यही कारण है कि कोई 'चण्ड' कहा जाता है।

ग्रामणी! किसी का राग प्रहीण होता है। इससे, वह दूसरों से कोप नहीं करता है और न लड़ता-झगड़ता है। वह 'सूर' कहा जाने लगता है। द्वेष…। मोह…। वह सूर कहा जाने लगता है।

ग्रामणी! यही कारण है कि कोई 'सूर' कहा जाता है।

यह कहने पर, चण्ड ग्रामणी भगवान् से बोलाः—भन्ते! खूब बताया है, खूब बताया है!! भन्ते! जैसे उलटे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भटके को मार्ग बता दे, या अन्धकार में तेलप्रदीप जला दे, आँखवाले रूपों को देख लेंगे। भगवान् ने वैसे ही अनेक प्रकार से धर्म समझाये। यह मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की…, संघ की…। भगवान् आज से जन्म भर के लिये मुझे अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

§ २. पुत्त सुत्त (४०. २)

नट नरक में उत्पन्न होते हैं

एक समय, भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

तब, तालपुत्र नटग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया…। एक ओर बैठ, तालपुत्र नटग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते! मैंने अपने बुजुर्ग गुरु दादा-गुरु नटों को कहते सुना है कि 'जो नट रंग-मंच पर सब के सामने सच या झूठ से लोगों को हँसाता और बहलाता है वह मरने के बाद प्रहास देवों के बीच उत्पन्न होता है।' यहाँ भगवान् का क्या कहना है?

ग्रामणी! रहने दो, मुझसे यह मत पूछो।

दूसरी बार भी…।

तीसरी बार भी…। यहाँ भगवान् का क्या कहना है?

मैं यह नहीं चाहता। ग्रामणी! रहने दो, मुझसे यह मत पूछो। मैं तुम्हें उत्तर दे दूँगा।

ग्रामणी! पहले के लोग वीतराग नहीं थे, वे राग के बन्धन में बँधे थे। रंगमंच पर सब के बीच उनकी रागमयी कौतुक क्रीड़ायें और भी अधिक राग उत्पन्न कर देती थीं।

ग्रामणी ! पहले के लोग वीतद्वेष नहीं थे, वे द्वेष के बन्धन में बँधे थे।···उनकी द्वेषमयी कौतुक क्रीड़ायें और भी अधिक द्वेष उत्पन्न कर देती थीं।

ग्रामणी ! पहले के लोग वीतमोह नहीं थे, वे मोह के बन्धन में बँधे थे।···उनकी मोहमयी कौतुक क्रीड़ायें और भी अधिक मोह उत्पन्न कर देती थीं।

वे स्वयं मत्त प्रमत्त हो दूसरों को मत्त प्रमत्त कर मरने के बाद प्रहास नामक नरक में उत्पन्न होते थे। यदि कोई समझे कि 'जो नर···सच या झूठ से लोगों को हँसाता और बहलाता है वह मरने के बाद प्रहास देवों के बीच उत्पन्न होता है, तो उसका ऐसा समझना झूठ है। ग्रामणी ! मैं कहता हूँ कि ऐसे मनुष्य की दो ही गतियाँ हो सकती हैं—या तो नरक, या तिरश्चीन (=पशु) योनि।

यह कहने पर तालपुत्र नटग्रामणी रोने लगा, आँसू बहाने लगा।

ग्रामणी ! इसी से मैं इसे नहीं चाहता था—ग्रामणी ! रहने दो, मुझसे यह मत पूछो।

भन्ते ! भगवान् ने ऐसा कह दिया, इसलिये मैं नहीं रोता हूँ। किन्तु, इसलिये कि मैं···नटों से दीर्घकाल तक ठगा और धोखा दिया गया।

भन्ते !···जैसे उलटे को सीधा कर दे···। यह मैं भगवान् की शरण में जाता हूँ। धर्म की··· और संघ की···। भन्ते ! मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा पाऊँ।

तालपुत्र नटग्रामणी ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पायी, उपसम्पदा पायी।

···आयुष्मान् तालपुत्र अर्हतों में एक हुये।

§ ३. मेधाजीव सुत्त (४०. ३)

सिपाहियों की गति

तब, योधाजीव ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया।

एक ओर बैठ, योधाजीव ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! मैंने अपने बुजुर्ग गुरु दादा-गुरु सिपाहियों को कहते सुना है कि 'जो सिपाही संग्राम में वीरता दिखाता है वह शत्रुओं के हाथ मर कर सरंजित देवताओं के बीच उत्पन्न होता है। यहाँ भगवान् का क्या कहना है ?

ग्रामणी ! रहने दो, मुझसे मत पूछो।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···।

ग्रामणी ! जो सिपाही संग्राम में वीरता दिखाता है, उसका चित्त पहले ही दूषित हो जाता है—मार दें, काट दें, मिटा दें, नष्ट कर दें, कि मत रहें। इस प्रकार उत्साह करते उसे शत्रु लोग मार देते हैं, वह मरने के बाद सराजिता नामक नरक में उत्पन्न होता है।

यदि कोई समझे कि '···वह शत्रुओं के हाथ मर कर सरंजित देवताओं के बीच उत्पन्न होता है' तो उसका समझना झूठ है। ग्रामणी ! मैं कहता हूँ कि ऐसे मनुष्य की दो ही गतियाँ हो सकती हैं—या तो नरक या चिरश्चीन (=पशु) योनि।

···भन्ते ! भगवान् ने ऐसा कह दिया, इसलिये मैं नहीं रोता हूँ। किन्तु, इसलिये कि मैं··· दीर्घकाल तक ठगा और धोखा दिया गया।

···भन्ते !···मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ४. हत्थि सुत्त (४०. ४)

हथिसवार की गति

तब, हथिसवार ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···।

···भन्ते !···मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ५. अस्स सुत्त (४०. ५)

घोड़सवार की गति

तब, घोड़सवार ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया…।

एक ओर बैठ, घोड़सवार ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! मैंने अपने बुजुर्ग गुरु दादा-गुरु घोड़सवारों को कहते सुना है कि 'जो घोड़सवार संग्राम में…[ऊपर जैसा ही]

…सराजिता नामक नरक में…।

…भन्ते !…मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ६. पच्छाभूमक सुत्त (४०. ६)

अपने कर्म से ही सुगति-दुर्गति

एक समय, भगवान् नालन्दा में पावारिक आम्रवन में विहार करते थे।

तब, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया…। एक ओर बैठ, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! ब्राह्मण पश्चिम भूमिवाले* कमण्डलुवाले, सेवाल की माला पहनने वाले, साँझ सुबह पानी में पैठनेवाले, अग्नि की परिचर्या करनेवाले मरे को बुलाते हैं, चलाते हैं, स्वर्ग में भेज देते हैं। भन्ते ! भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हैं। भगवान् ऐसा कर सकते हैं कि सारा लोक मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होवे।

ग्रामणी ! तो, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, जैसा समझो उत्तर दो।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, कोई पुरुष जीव-हिंसा करनेवाला, चोरी करनेवाला, व्यभिचार करनेवाला, झूठ बोलनेवाला, चुगली खानेवाला, कठोर बोलनेवाला, गप्प हाँकनेवाला, लोभी, नीच, मिथ्या-दृष्टिवाला हो। तब, बहुत से लोग आकर उसकी प्रशंसा करें, हाथ जोड़ें, निवेदन करें—आप मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो अच्छी गति को प्राप्त हों। ग्रामणी ! तो, तुम क्या समझते हो, वह पुरुष मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो अच्छी गति को प्राप्त होगा ?

नहीं भन्ते !

ग्रामणी ! जैसे, कोई पुरुष गहरे जलाशय में एक बड़ा पत्थर छोड़ दे। उसे बहुत से लोग आकर उसकी प्रशंसा करें, हाथ जोड़ें, निवेदन करें—हे पत्थर ! ऊपर आवें, उपरा जायँ, स्थल पर चले आवें। ग्रामणी ! तो, तुम क्या समझते हो, वह पत्थर…स्थल पर चला आवेगा ?

नहीं भन्ते !

ग्रामणी ! वैसे ही, जो पुरुष जीव-हिंसा करनेवाला…है, उसको बहुत से लोग आकर निवेदन करें भी…तो वह मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होगा।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, कोई पुरुष जीव-हिंसा से विरत रहनेवाला हो, चोरी से विरत रहनेवाला हो…सम्यक् दृष्टिवाला हो। तब, बहुत से लोग आकर…निवेदन करें—आप मरने के बाद नरक में उत्पन्न हों दुर्गति को प्राप्त हों। ग्रामणी ! तो, तुम क्या समझते हो, वह पुरुष मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होगा ?

नहीं भन्ते !

ग्रामणी ! जैसे, कोई घी या तेल के घड़े को गहरे जलाशय में डुबो कर फोड़ दे। तब, उसमें जो कंकड़-पत्थर हों नीचे डूब जायँ। जो घी या तेल हो सो ऊपर छहला जाय। तब, बहुत से लोग…

---

*पश्चिम भूमि के रहनेवाले—अट्ठकथा।

निवेदन करें—हे घी, हे तेल ! आप डूब जायँ, आप नीचे चले जायँ। ग्रामणी ! तो, क्या समझते हो, वह घी या तेल डूब जायगा, नीचे चला जायगा ?

नहीं भन्ते !

ग्रामणी ! वैसे ही, जो पुरुष जीव-हिंसा से विरत रहता है···उसको बहुत से लोग आकर निवेदन करें भी···तो वह मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होगा।

ऐसा कहने पर, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला—···मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ७. देसना सुत्त (४०. ७)

बुद्ध की दया सब पर

एक समय, भगवान् नालन्दा में पावारिक-आम्रवन में विहार करते थे।

तब, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···। बोला—भन्ते ! भगवान् सभी प्राणियों के प्रति शुभेच्छा और दया से विहार करते हैं न ?

हाँ ग्रामणी ! बुद्ध सभी प्राणियों के प्रति शुभेच्छा और दया से विहार करते हैं।

भन्ते ! तो क्या बात है कि भगवान् किसी को तो बड़े प्रेम से धर्मोपदेश करते हैं, और किसी को उतने प्रेम से नहीं ?

ग्रामणी ! तो तुम ही से मैं पूछता हूँ, जैसा समझो कहो।

ग्रामणी ! किसी कृषक गृहस्थ के तीन खेत हों—एक बड़ा अच्छा, एक मध्यम, और एक बड़ा बुरा, जङ्गल, ऊसर। ग्रामणी ! तो, क्या समझते हो, वह कृषक गृहस्थ किस खेत में सर्व प्रथम बीज बोयेगा ?

भन्ते ! वह कृषक गृहस्थ सर्व-प्रथम पहले खेत में बीज बोयेगा। उसके बाद मध्यम खेत में। उसके बाद बुरे खेत में बोयेगा भी और नहीं भी बोयेगा। सो क्यों ? यदि कुछ नहीं तो कम से कम गाय-बैल की सानी तो निकल आवेगी न ?

ग्रामणी ! जैसे वह पहला खेत है वैसे ही मेरे भिक्षु-भिक्षुणियाँ हैं। उन्हें मैं धर्म का उपदेश करता हूँ—आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवसान-कल्याण। अर्थ और शब्द से बिलकुल परिपूर्ण और परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रगट करता हूँ। सो क्यों ? क्योंकि ये मेरी ही शरण में अपना त्राण समझ कर विहार करते हैं।

ग्रामणी ! जैसे वह मध्यम खेत है वैसे ही मेरे उपासक-उपासिकायें हैं। उन्हें भी मैं धर्म का उपदेश करता हूँ—आदि-कल्याण···। सो क्यों ? क्योंकि ये मेरी ही शरण में अपना त्राण समझ कर विहार करते हैं।

ग्रामणी ! जैसे वह अन्तिम बुरा खेत है, वैसे ही ये दूसरे मत वाले श्रमण, ब्राह्मण और परिव्राजक हैं। उन्हें भी मैं धर्म का उपदेश करता हूँ—आदि कल्याण···। सो क्यों ? यदि वे कहीं एक बात भी समझ पाये तो यह दीर्घकाल तक उनके हित और सुख के लिये होगा।

ग्रामणी ! जैसे, किसी पुरुष को पानी के तीन मटके हों—एक बिना छेद वाला जिससे पानी बिल्कुल नहीं निकलता हो, एक बिना छेद वाला जिससे पानी कुछ कुछ निकल जाता हो, एक छेद वाला जिससे पानी बिल्कुल निकल जाता हो। ग्रामणी ! तो, क्या समझते हो, वह पुरुष सर्व-प्रथम किसमें पानी रक्खेगा ?

भन्ते ! वह पुरुष सर्व-प्रथम उस मटके में पानी रक्खेगा जो बिना छेद वाला है और जिससे पानी बिल्कुल नहीं निकलता है, उसके बाद दूसरे मटके में जो बिना छेद वाला होने पर भी उससे कुछ

कुछ पानी निकल जाता है, और उसके बाद उस छेद वाले मटके में रख भी सकता है और नहीं भी। सो क्यों ? कुछ नहीं तो बर्तन धोने के लायक पानी रह जायगा।

ग्रामणी ! पहले मटके के समान हमारे भिक्षु और भिक्षुणियाँ हैं। उन्हें मैं धर्म का उपदेश करता हूँ...[ऊपर जैसा ही]

ग्रामणी ! दूसरे मटके के समान हमारे उपासक और उपासिकायें हैं...।

ग्रामणी ! तीसरे मटके के समान दूसरे मत वाले श्रमण, ब्राह्मण और परिव्राजक हैं...।

यह कहने पर, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते !...मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ ८. सङ्ख सुत्त (४०. ८)

निगण्ठनातपुत्र की शिक्षा उलटी

एक समय भगवान् नालन्दा में पावारिक आम्रवन में विहार करते थे।

तब, निगण्ठ का श्रावक असिबन्धकपुत्र ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया...।

एक ओर बैठे असिबन्धकपुत्र ग्रामणी से भगवान् बोले—ग्रामणी ! निगण्ठ नातपुत्र अपने श्रावकों को कैसे धर्मोपदेश करता है ?

भन्ते ! निगण्ठ नातपुत्र अपने श्रावकों को इस तरह धर्मोपदेश करता है—जो कोई प्राणि-हिंसा करता है वह नरक में पड़ता है, जो कोई चोरी करता है..., जो व्यभिचार..., जो झूठ बोलता है...। जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है। भन्ते ! निगण्ठ नातपुत्र इसी तरह अपने श्रावकों को उपदेश करता है।

ग्रामणी ! "जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है।" ऐसा होने से तो कोई भी नरक में नहीं पड़ेगा, जैसी निगण्ठ नातपुत्र की बात है।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, जो रह-रहकर दिन में या रात में जीव-हिंसा किया करता है, उसके जीव-हिंसा करने का समय अधिक है या जीव-हिंसा नहीं करने का ?

भन्ते !.. उसके जीव-हिंसा करने के समय से अधिक जीव-हिंसा नहीं करने का ही समय है।

ग्रामणी ! "जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है"। तो ऐसा होने से कोई भी नरक में नहीं पड़ेगा, जैसी निगण्ठ नातपुत्र की बात है।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, जो रह-रहकर दिन में या रात में चोरी करता है..., व्यभिचार करता है..., झूठ बोलता है, उसके झूठ बोलने का समय अधिक है या झूठ नहीं बोलने का ?

भन्ते ! उसके झूठ बोलने के समय से अधिक झूठ नहीं बोलने ही का है।

ग्रामणी ! "जो-जो अधिक करता है वैसी ही उसकी गति होती है।" तो, ऐसा होने से कोई भी नरक में नहीं पड़ेगा, जैसी निगण्ठ नातपुत्र की बात है।

ग्रामणी ! कोई आचार्य ऐसा मानते और उपदेश देते हैं—जो जीव-हिंसा करता है वह नरक में जाता है...जो झूठ बोलता है वह नरक में जाता है। ग्रामणी ! उस आचार्य के प्रति श्रावक लोक बड़े श्रद्धालु होते हैं ?

उसके मन में यह होता है—मेरे आचार्य ऐसा बताते हैं कि 'जो जीव-हिंसा करता है वह नरक में जाता है।' यदि मैं जीव-हिंसा करूँगा तो मैं भी नरक में पड़ूँगा। अतः, इसकी बात को न छोड़ने, इसके चिन्तन को न छोड़ने से मैं अवश्य नरक में पड़ूँगा।...यदि मैं झूठ बोलूँगा तो मैं भी नरक में पड़ूँगा...।

ग्रामणी ! संसार में बुद्ध उत्पन्न होते हैं, अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-चरण-सम्पन्न, सुगति को प्राप्त, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु,

बुद्ध भगवान्। वे अनेक प्रकार से जीव-हिंसा की निन्दा करते हैं, और जीव-हिंसा से विरत रहने का उपदेश देते हैं।...। वे अनेक प्रकार से झूठ बोलने की निन्दा करते हैं, और झूठ बोलने से विरत रहने का उपदेश देते हैं। ग्रामणी! उनके प्रति श्रावक श्रद्धालु होते हैं।

वह श्रावक ऐसा सोचता है—"भगवान् ने अनेक प्रकार से जीव-हिंसा से विरत रहने का उपदेश दिया है। क्या मैंने कभी कुछ जीव-हिंसा की है? वह अच्छा नहीं, उचित नहीं। उसके कारण मुझे पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मैं उस पाप से अछूता नहीं रहूँगा।" ऐसा विचार कर, वह जीव-हिंसा छोड़ देता है। भविष्य में जीव-हिंसा से विरत रहता है। इस प्रकार, वह पाप से बच जाता है।

"भगवान् ने अनेक प्रकार से चोरी की निन्दा की है..., व्यभिचार की..., झूठ बोलने की...।

वह जीव-हिंसा छोड़, जीव-हिंसा से विरत रहता है।...। झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलने से विरत रहता है। चुगली खाना छोड़...। कठोर बोलना छोड़...। गप-सड़ाका छोड़...। लोभ छोड़...। द्वेष छोड़...। मिथ्या दृष्टि छोड़, सम्यक् दृष्टि वाला होता है।

ग्रामणी! ऐसा वह आर्यश्रावक लोभ-रहित, द्वेष-रहित, असम्मूढ़, संप्रज्ञ, स्मृतिमान्, मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर, वैसे ही दूसरी दिशा को, तीसरी..., चौथी..., ऊपर, नीचे, टेढ़े-मेढ़े, सभी तरफ, सारे लोक को विपुल, अप्रमाण...मैत्री-सहगत चित्त से व्याप्त कर विहार करता है।

ग्रामणी! जैसे, कोई बलवान् शङ्ख फूकनेवाला थोड़ा जोर लगा चारों दिशाओं को गुँजा दे। ग्रामणी! वैसे ही, मैत्री चेतोविमुक्ति का अभ्यास कर लेने से जो संकीर्णता में डालनेवाले कर्म हैं वे नहीं ठहरने पाते।

ग्रामणी! ऐसा वह आर्यश्रावक लोभ-रहित, द्वेष-रहित, असम्मूढ़, संप्रज्ञ, स्मृतिमान्, करुणा-सहगत चित्त से..., मुदिता-सहगत चित्त से..., उपेक्षा-सहगत चित्त से...।

यह कहने पर, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते!...उपासक स्वीकार करें।

§ ९. कुल सुत्त (४०. ९)

कुलों के नाश के आठ कारण

एक समय, भगवान् कोशल में चारिका करते हुए बड़े भिक्षु-संघ के साथ जहाँ नालन्दा है वहाँ पहुँचे। वहाँ, नालन्दा में पावारिक आम्रवन में भगवान् विहार करते थे।

उस समय, नालन्दा में दुर्भिक्ष पड़ा था। आजकल में लोगों के प्राण निकल रहे थे। मरे हुए मनुष्यों की उजली-उजली हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। लोग सूखकर सलाई बन गये थे।

उस समय, निगण्ठ नातपुत्र अपनी बड़ी मण्डली के साथ नालन्दा में ठहरा हुआ था।

तब, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी, निगण्ठ नातपुत्र का श्रावक जहाँ निगण्ठ नातपुत्र था वहाँ गया, और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे असिबन्धकपुत्र ग्रामणी से निगण्ठ नातपुत्र बोलाः—ग्रामणी! सुनो, तुम जाकर श्रमण गौतम के साथ वाद करो, इससे तुम्हारा बड़ा नाम हो जायगा—असिबन्धकपुत्र इतने महानुभाव श्रमण गौतम के साथ वाद कर रहा है।

भन्ते! इतने महानुभाव श्रमण गौतम के साथ मैं कैसे वाद करूँ?

ग्रामणी! सुनो, जहाँ श्रमण गौतम है वहाँ जाओ और बोलो—भन्ते! भगवान् अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा और अनुकम्पा का वर्णन करते हैं न?

ग्रामणी! यदि श्रमण गौतम कहेगा, कि हाँ ग्रामणी! बुद्ध अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा और अनुकम्पा का वर्णन करते हैं, तो तुम कहना—भन्ते! तो क्यों भगवान् इस दुर्भिक्ष में इतने बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे हैं? कुलों के नाश और अहित के लिये भगवान् तुले हैं।

ग्रामणी ! इस प्रकार दो तरफा प्रश्न पूछा जाकर श्रमण गौतम न तो उगल सकेगा और न निगल सकेगा।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह असिबन्धकपुत्र ग्रामणी निगण्ठ नातपुत्र को उत्तर दे, आसन से उठ, निगण्ठ नातपुत्र को प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! भगवान् अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा और अनुकम्पा का वर्णन करते हैं न ?

हाँ ग्रामणी ! बुद्ध अनेक प्रकार से कुलों के उदय, रक्षा और अनुकम्पा का वर्णन करते हैं।

भन्ते ! तो, क्यों भगवान् इस दुर्भिक्ष में इतने बड़े संघ के साथ चारिका कर रहे हैं ? कुलों के नाश और अहित के लिये भगवान् तुले हैं।

ग्रामणी ! यह मैं इकानबे कल्पों की बात स्मरण कर रहा हूँ, किन्तु कभी भी किसी कुल को घर के पके भोजन में से कुछ भिक्षा दे देने के कारण नष्ट होते नहीं देखा। और भी, जो बड़े धनी और सम्पत्तिशाली कुल हैं यह उनके दान, सत्य और संयम का ही फल है।

ग्रामणी ! कुलों के नाश होने के आठ हेतु हैं। (१) राजा के द्वारा कोई कुल नष्ट कर दिया जाता है। (२) चोरों के द्वारा कुल नष्ट कर दिया जाता है। (३) अग्नि के द्वारा…। (४) पानी के द्वारा…। (५) छिपे खजाने नहीं जानने से…। (६) बहक कर अपने काम छोड़ देने से। (७) कुल में कुलांगार उत्पन्न होने से जो सारी सम्पत्ति को फूँक देता है, उड़ा देता है। और (८) आठवाँ अनित्यता के कारण। ग्रामणी ! कुलों के नाश होने के यही आठ हेतु हैं।

ग्रामणी ! ऐसी बात होने पर मुझे यह कहनेवाला—भगवान् कुलों के नाश और अहित के लिये तुले हुये हैं—यदि उस बात और विचार को नहीं छोड़ता है तो अवश्य नरक में पड़ेगा।

यह कहने पर, असिबन्धकपुत्र ग्रामणी भगवान् से बोला…भन्ते ! मुझे उपासक स्वीकार करें।

§ १०. मणिचूल सुत्त (४०. १०)

श्रमणों के लिये सोना-चाँदी विहित नहीं

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय राज-भवन में एकत्रित हो कर बैठे हुये राजकीय सभासदों के बीच यह बात चली—श्रमण शाक्यपुत्रों को क्या सोना-चाँदी ग्रहण करना विहित है ? श्रमण शाक्यपुत्र क्या सोना-चाँदी चाहते हैं, ग्रहण करते हैं ?

उस समय मणिचूलक ग्रामणी भी उस सभा में बैठा था।

तब, मणिचूलक ग्रामणी उस सभा से बोला—आप लोग ऐसी बात मत कहें। श्रमण शाक्यपुत्रों को सोना-चाँदी ग्रहण करना विहित नहीं है। श्रमण शाक्यपुत्र सोना-चाँदी नहीं चाहते हैं, नहीं ग्रहण करते हैं। श्रमण शाक्यपुत्र तो मणि-सुवर्ण सोना-चाँदी का त्याग कर चुके हैं। इस तरह, मणिचूल ग्रामणी उस सभा को समझाने में सफल हुआ।

तब, मणिचूल ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, मणिचूल ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! अभी राज-भवन में एकत्रित होकर बैठे हुये राजकीय सभासदों के बीच यह बात चली…! भन्ते ! इस तरह, मैं उस सभा को समझाने में सफल हुआ।

भन्ते ! इस प्रकार कह कर मैंने भगवान् के यथार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया न…?

हाँ ग्रामणी ! इस प्रकार कह कर तुमने मेरे यथार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है…।

श्रमण शाक्यपुत्रों को सोना-चाँदी ग्रहण करना विहित नहीं। श्रमण शाक्य-पुत्र सोना-चाँदी नहीं चाहते हैं; नहीं ग्रहण करते हैं। श्रमण शाक्यपुत्र तो मणि-सुवर्ण सोना-चाँदी का त्याग कर चुके हैं।

ग्रामणी ! जिसे सोना-चाँदी विहित है, उसे पञ्च काम-गुण भी विहित होंगे। ग्रामणी ! जिसे पाँच काम-गुण विहित होते हैं, समझ लेना कि उसका व्यवहार श्रमण शाक्यपुत्र के अनुकूल नहीं।

ग्रामणी ! मेरी तो यह शिक्षा है—तृण चाहनेवाले को तृण की खोज करनी चाहिये। लकड़ी चाहने वाले को लकड़ी की खोज करनी चाहिये। गाड़ी चाहनेवाले को गाड़ी की खोज करनी चाहिये। पुरुष चाहनेवाले को पुरुष की खोज करनी चाहिये।

ग्रामणी ! किसी भी हालत में मैं सोना-चाँदी की इच्छा करने या खोज करने का उपदेश नहीं देता।

§ ११. भद्र सुत्त (४०. ११)

तृष्णा दुःख का मूल है

एक समय, भगवान् मल्ल (जनपद) के उरुवेल-कल्प नामक मल्लों के कस्बे में विहार करते थे।

तब, भद्रक ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया…। एक ओर बैठ, भद्रक ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! कृपा कर भगवान् मुझे दुःख के समुदय और अस्त होने का उपदेश करें।

ग्रामणी ! यदि मैं तुम्हें अतीतकाल के दुःख के समुदय और अस्त होने का उपदेश करूँ तो तुम्हारे मन में शायद कुछ शङ्का या विमति रह जाय। ग्रामणी ! यदि मैं तुम्हें भविष्यत्काल के दुःख के समुदय और अस्त होने का उपदेश करूँ तो भी तुम्हारे मन में शायद कुछ शङ्का या विमति रह जाय। इसलिये, ग्रामणी, यहीं बैठे हुये तुम्हारे दुःख के समुदय और अस्त हो जाने का उपदेश करूँगा। उसे सुनो, अच्छी तरह मन लगाओ। मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भद्रक ग्रामणी ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—ग्रामणी ! क्या समझते हो, उरुवेल में क्या कोई ऐसे मनुष्य हैं जिनके वध, बन्धन, जुर्माना, या अप्रतिष्ठा से तुम्हें शोक, परिदेव…उपायास उत्पन्न हो ?

हाँ भन्ते ! उरुवेल कल्प में ऐसे मनुष्य हैं…।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, उरुवेलकल्प में क्या कोई ऐसे मनुष्य हैं जिनके वध, बन्धन, जुर्माना, या अप्रतिष्ठा से तुम्हें शोक, परिदेव…उपायास कुछ नहीं हो ?

हाँ भन्ते ! उरुवेलकल्प में ऐसे मनुष्य हैं जिनके वध, बन्धन…से मुझे शोक, परिदेव…उपायास कुछ नहीं हो।

ग्रामणी ! क्या कारण है कि एक के वध, बन्धन…से तुम्हें शोक, परिदेव…उपायास होते हैं, और एक के बध, बन्धन…से नहीं होते हैं ?

भन्ते ! उनके प्रति मेरा छन्द-राग (तृष्णा) है, जिनके वध, बन्धन…से मुझे शोक, परिदेव… होते हैं। भन्ते ! और, उनके प्रति मेरा छन्द-राग नहीं है, जिनके वध, बन्धन…से मुझे शोक, परिदेव… नहीं होते हैं।

ग्रामणी ! 'उनके प्रति छन्द-राग है, और उनके प्रति छन्द-राग नहीं है' इसी भेद से तुम स्वयं देखकर यहीं समझ लो कि यही बात अतीत और भविष्यत् काल में भी लागू होती है। जो कुछ अतीत काल में दुःख उत्पन्न हुये हैं, सभी का मूल=निदान "छन्द" ही था। जो कुछ भविष्यत् काल में दुःख

उत्पन्न होगा, सभी का मूल=निदान "छन्द" ही होगा। 'छन्द' (=इच्छा=तृष्णा) ही दुःख का मूल है।

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है !! जो भगवान् ने इतना अच्छा समझाया।...

भन्ते ! चिरवासी नामका मेरा एक पुत्र नगर के बाहर रहता है। भन्ते ! सो मैं तड़के ही उठकर किसी को कहता हूँ—जाओ, चिरवासी कुमार को देख आओ। भन्ते ! जब तक वह पुरुष लौट नहीं आता है, मुझे चैन नहीं पड़ती है—चिरवासी कुमार को कुछ कष्ट नहीं आ पड़ा हो !

ग्रामणी ! क्या समझते हो, चिरवासी कुमार को वध, बन्धन...से तुम्हें शोक, परिदेव... उत्पन्न होंगे ?

हाँ भन्ते ! चिरवासी कुमार के वध, बन्धन...से मेरे प्राणों को क्या-क्या न हो जाय, शोक, परिदेव...की बात क्या !!

ग्रामणी ! इससे भी तुम्हें समझना चाहिये—जो कुछ दुःख उत्पन्न होते हैं सभी का मूल=निदान छन्द ही है। छन्द ही दुःख का मूल है।

ग्रामणी ! क्या समझते हो, जब तुम चिरवासी की माता को देख या सुन भी नहीं पाये थे, उस समय तुम्हें उसके प्रति छन्द=राग=प्रेम था ?

नहीं भन्ते !

ग्रामणी ! जब चिरवासी की माता तुम्हारे पास चली आई तो तुम्हें उसके प्रति छन्द=राग=प्रेम हुआ या नहीं ?

हुआ, भन्ते !

ग्रामणी ! क्या समझते हो, चिरवासी की माता के वध, बन्धन...से तुम्हें शोक, परिदेव... उत्पन्न होंगे या नहीं ?

भन्ते ! चिरवासी की माता के वध, बन्धन...से मेरे प्राणों को क्या-क्या न हो जाय, शोक, परिदेव...की बात क्या !!

ग्रामणी ! इससे भी तुम्हें समझना चाहिये—जो कुछ दुःख उत्पन्न होते हैं सभी का मूल=निदान छन्द ही है। छन्द (=इच्छा=तृष्णा) ही दुःख का मूल है।

§ १२. रासिय सुत्त (४०. १२)

मध्यम मार्ग का उपदेश

तब, राशिय ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया...। एक ओर बैठ, राशिय ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! मैंने सुना है कि श्रमण गौतम सभी तपस्याओं की निन्दा करते हैं, और सभी तपस्याओं में रूक्षाजीव की सबसे अधिक निन्दा करते हैं। भन्ते ! जो लोग ऐसा कहते हैं क्या वे भगवान् के यथार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं...?

नहीं ग्रामणी ! जो ऐसा कहते हैं वे मेरे यथार्थ सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करते, मुझ पर झूठी बात थोपते हैं।

(क)

ग्रामणी ! प्रव्रजित दो अन्तों का आचरण न करे। जो काम-सुख में बिल्कुल लग जाना—यह हीन, ग्राम्य, पृथक्जनों के अनुकूल, अनार्य, अनर्थ करने वाला है। और, जो आत्म-क्लमथानुयोग (=पंचाग्नि इत्यादि से अपने शरीर को कष्ट देना) है—दुःखद, अनार्य, और अनर्थ करने वाला।

ग्रामणी ! इन दो अन्तों को छोड़, बुद्ध को मध्यम-मार्ग का परम-ज्ञान हुआ है—जो सुझानेवाला, ज्ञान उत्पन्न कर देने वाला, परम-शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, संबोध के लिये, और निर्वाण के लिये है।

ग्रामणी ! वह कौन से मध्यम-मार्ग का परम-ज्ञान बुद्ध को हुआ है—जो सुझाने वाला···? यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग ! जो, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प,···सम्यक् समाधि । ग्रामणी ! इसी मध्यम-मार्ग का परम-ज्ञान बुद्ध को हुआ है—जो सुझाने वाला, ज्ञान उत्पन्न कर देने वाला, परम शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, संबोध के लिये, और निर्वाण के लिये है ।

(ख)

ग्रामणी ! संसार में काम-भोगी तीन प्रकार के हैं । कौन से तीन ?

(१)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी अधर्म से और हृदय-हीनता से भोगों को पाने की कोशिश करता है इस प्रकार कोशिश कर न तो वह अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है, और न कोई पुण्य करता है ।

(२)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी अधर्म से और हृदय-हीनता से भोगों को पाने की कोशिश करता है । इस प्रकार कोशिश कर वह अपने को सुखी बनाता है, किन्तु न तो आपस में बाँटता है, और न पुण्य करता है ।

(३)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी अधर्म से और हृदय-हीनता से भोगों को पाने की कोशिश करता है । इस प्रकार कोशिश कर वह अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है, और पुण्य भी करता है ।

(४)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म-अधर्म से···।···न अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है, और न कोई पुण्य करता है ।

(५)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म-अधर्म से···।···वह अपने को सुखी बनाता है, किन्तु न तो आपस में बाँटता है और न कोई पुण्य करता है ।

(६)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म-अधर्म से···।···वह अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है और पुण्य भी करता है ।

(७)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म से···।···वह न अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है, और न पुण्य करता है ।

(८)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म से···।···वह अपने को सुखी बनाता है, किन्तु आपस में नहीं बाँटता है, और न पुण्य करता है ।

(९)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म से···।···वह अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है, और पुण्य भी करता है। वह लोभाभिभूत, मूर्च्छित हो बिना उनका दोष देखे, मोक्ष की बात को बिना समझे भोग करता है।

(१०)

ग्रामणी ! कोई काम-भोगी धर्म से···।···वह अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है, और पुण्य भी करता है। वह लोभाभिभूत, मूर्च्छित नहीं होता है, उनका दोष देखते और मोक्ष की बात को समझते हुये भोग करता है।

(ग)

(१)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी अधर्म से···, न अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है और न पुण्य करता है, वह तीनों स्थान से निन्द्य समझा जाता है। किन तीन स्थानों से ? अधर्म और हृदय-हीनता से भोगों की खोज करता है—इस पहले स्थान से निन्द्य समझा जाता है। न अपने को सुखी बनाता है—इस दूसरे स्थान से निन्द्य समझा जाता है। न आपस में बाँटता है और न पुण्य करता है—इस तीसरे स्थान से निन्द्य समझा जाता है।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी तीन स्थान से निन्द्य समझा जाता है।

(२)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी अधर्म से···, अपने को सुखी बनाता है, किन्तु न तो आपस में बाँटता है, और न कोई पुण्य करता है, वह दो स्थानों से निन्द्य समझा जाता है, और एक स्थान से प्रशंस्य।

किन दो स्थानों से निन्द्य होता है ? अधर्म से···—इस पहले स्थान से निन्द्य होता है। न तो आपस में बाँटता है और न कोई पुण्य करता है—इस दूसरे स्थान से निन्द्य होता है।

किस एक स्थान से प्रशंस्य होता है ? अपने को सुखी बनाता है—इस एक स्थान से प्रशंस्य होता है।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इन दो स्थानों से निन्द्य होता है, और इस एक स्थान से प्रशंस्य।

(३)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी अधर्म से···, अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है और पुण्य भी करता तै, वह एक स्थान से निन्द्य समझा जाता है और दो स्थानों से प्रशंस्य।

किस एक स्थान से निन्द्य होता है ? अधर्म से···—इस एक स्थान से निन्द्य होता है।

किन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है ? अपने को सुखी बनाता है—इस पहले स्थान से प्रशंस्य होता है। आपस में बाँटता है और पुण्य करता है—इस दूसरे स्थान से प्रशंस्य होता है।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इस एक स्थान से निन्द्य होता है, और इन दो स्थानों से प्रशंस्य।

(४)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म से···, न अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है और न कोई पुण्य करता है, वह एक स्थान से प्रशंस्य और तीन स्थानों से निन्द्य समझा जाता है।

किस स्थान से प्रशंस्य होता है ? धर्म से भोगों की खोज करता है—इस एक स्थान से प्रशंस्य होता है।

किन तीन स्थानों से निन्द्य होता है ? अधर्म से···, न अपने को सुखी बनाता है···, और न आपस में बाँटता है, न पुण्य करता है···।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इस एक स्थान से प्रशंस्य होता है, और इन तीन स्थानों से निन्द्य।

(५)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म-अधर्म से···, अपने को सुखी बनाता है, किन्तु न तो आपस में बाँटता है और न पुण्य करता है, वह दो स्थानों से प्रशंस्य होता है और दो स्थानों से निन्द्य।

किन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है ? धर्म से···। और अपने को सुखी बनाता है···।

किन दो स्थानों से निन्द्य होता है ? अधर्म से···। और न आपस में बाँटता है, न पुण्य करता है···।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है, और इन दो स्थानों से निन्द्य।

(६)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म-अधर्म से···। अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता भी है और पुण्य भी करता है, वह तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है और एक स्थान से निन्द्य।

किन तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है ? धर्म से···, अपने को सुखी बनाता है···, आपस में बाँटता है तथा पुण्य करता है···।

किस एक स्थान से निन्द्य होता है ? अधर्म से···।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इन तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है, और इस एक स्थान से निन्द्य।

(७)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म से···, न अपने को सुखी बनाता है, न आपस में बाँटता है, न कोई पुण्य करता है, वह एक स्थान से प्रशंस्य और दो स्थानों से निन्द्य होता है।

किस एक स्थान से प्रशंस्य होता है ? धर्म से···।

किन दो स्थानों से निन्द्य होता है ? न अपने को सुखी बनाता है···, और न आपस में बाँटता है, न पुण्य करता है···।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इस एक स्थान से प्रशंस्य होता है, और इन दो स्थानों से निन्द्य।

(८)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म से···अपने को सुखी बनता है, किन्तु न तो आपस में बाँटता है और न पुण्य करता है, वह दो स्थानों से प्रशंस्य तथा एक स्थान से निन्द्य होता है।

किन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है ? धर्म से···, और अपने को सुखी बनाता है···।

किस एक स्थान से निन्द्य होता है। न तो आपस में बाँटता है और न पुण्य करता है···।

ग्रामणी ! यह काम-भोगी इन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है और इस एक स्थान से निन्द्य।

(९)

ग्रामणी ! जो काम-भोगी धर्म से···, अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता है, और पुण्य भी करता है, किन्तु लोभाभिभूत हो···, वह तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है तथा एक स्थान से निन्द्य।

किन तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है? धर्म से···, अपने को सुखी बनाता है···, और आपस में बाँटता है···।

किस एक स्थान से निन्द्य होता है? लोभाभिभूत···।

ग्रामणी! यह काम-भोगी इन तीन स्थानों से प्रशंस्य होता है, और इस एक स्थान से निन्द्य।

(१०)

ग्रामणी! जो काम-भोगी धर्म से···, अपने को सुखी बनाता है, आपस में बाँटता है, पुण्य करता है, और लोभाभिभूत नहीं हो···उनके दोष का ख्याल करते···भोग करता है, वह चारों स्थानों से प्रशंस्य होता है।

किन चारों स्थानों से प्रशंस्य होता है? धर्म से···, अपने को सुखी बनाता है···, आपस में बाँटता है···, लोभाभिभूत नहीं हो···उनके दोष का ख्याल करते भोग करता है—इस चौथे स्थान से वह प्रशंस्य होता है।

ग्रामणी! यही काम-भोगी चारों स्थानों से प्रशंस्य होता है।

(घ)

ग्रामणी! संसार में रूक्षाजीवी तपस्वी तीन होते हैं? कौन से तीन?

(१)

ग्रामणी! कोई रूक्षाजीवी तपस्वी श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है—कुशल धर्मों का लाभ करूँ, अलौकिक धर्म तथा परम-ज्ञान का साक्षात्कार करूँ। वह अपने को कष्ट, पीड़ा देता है। किन्तु, न तो वह कुशल धर्मों का लाभ करता है, और न अलौकिक धर्म तथा परम-ज्ञान का साक्षात्कार करता है।

(२)

ग्रामणी! कोई रूक्षाजीवी तपस्वी श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है···। वह कुशल धर्मों का लाभ तो कर लेता है, किन्तु अलौकिक धर्म तथा परम-ज्ञान का साक्षात्कार नहीं कर पाता।

(३)

ग्रामणी!···श्रद्धा-पूर्वक···। वह कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है, और अलौकिक धर्म तथा परम-ज्ञान का भी साक्षात्कार कर लेता है।

(ङ)

(१)

['घ' का पहला प्रकार] वह तीन स्थानों से निन्द्य होता है। कौन तीन स्थानों से? अपने को कष्ट-पीड़ा देता है—इस पहले स्थान से निन्द्य होता है। कुशल धर्मों का लाभ नहीं करता—इस दूसरे स्थान से निन्द्य होता है। परम-ज्ञान का साक्षात्कार नहीं करता—इस तीसरे स्थान से निन्द्य होता है।

ग्रामणी! यह रूक्षाजीवी तपस्वी इन तीन स्थानों से निन्द्य होता।

(२)

['घ' का दूसरा] वह दो स्थानों से निन्द्य होता है, और एक स्थान से प्रशंस्य ।

किन दो स्थानों से निन्द्य होता है ? अपने को कष्ट-पीड़ा देता है…, और परम-ज्ञान का साक्षात्कार नहीं करता… ।

किस एक स्थान से प्रशंस्य होता है ? कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है… ।

ग्रामणी ! यह रूक्षाजीवी तपस्वी इन दो स्थानों से निन्द्य होता है, और इस एक स्थान से प्रशंस्य ।

(३)

['घ' का तीसरा] वह एक स्थान से निन्द्य होता है और दो स्थानों से प्रशंस्य ।

किस एक स्थान से निन्द्य होता है ? अपने को कष्ट-पीड़ा देता है—इस एक स्थान से निन्द्य होता है ।

किन दो स्थानों से प्रशंस्य होता है ? कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है…, और परम ज्ञान का साक्षात्कार कर लेता है… ।

ग्रामणी ! यह रूक्षाजीवी तपस्वी इस एक स्थान से निन्द्य होता है, और इन दो स्थानों से प्रशंस्य ।

(च)

ग्रामणी ! निर्जर (= जीर्णता-प्राप्त) तीन हैं, जो यहीं प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं, जो बिना विलम्ब के फल देते हैं, जिन्हें लोगों को बुला-बुलाकर दिखाया जा सकता है, जो निर्वाण की ओर ले जाते हैं, जिन्हें विज्ञ पुरुष अपने भीतर ही भीतर जान लेते हैं । कौन से तीन ?

(१)

राग से रक्त पुरुष अपने राग के कारण अपना भी अहित-चिन्तन करता है, पर का भी अहित-चिन्तन करता है, दोनों का अहित-चिन्तन करता है । राग के प्रहीण हो जाने से न अपना अहित-चिन्तन करता है, न पर का अहित चिन्तन करता है, न दोनों का अहित-चिन्तन करता है । यह निर्जर यहीं प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं…विज्ञ पुरुष अपने भीतर ही भीतर जान सकते हैं ।

(२)

द्वेषी पुरुष अपने द्वेष के कारण…द्वेष के प्रहीण हो जाने से न अपना अहित-चिन्तन करता है…। यह निर्जर यहीं प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं…विज्ञ पुरुष अपने भीतर ही भीतर जान सकते हैं ।

(३)

मूढ़ पुरुष अपने मोह के कारण…। मोह के प्रहीण हो जाने से…। यह निर्जर यहीं प्रत्यक्ष किये जा सकते हैं…विज्ञ पुरुष अपने भीतर ही भीतर जान सकते हैं ।

ग्रामणी ! यही तीन निर्जर हैं जो यहीं प्रत्यक्ष…।

यह कहने पर, राशिय ग्रामणी भगवान् से बोला—…भन्ते ! मुझे उपासक स्वीकार करें ।

§ १३. पाटलि सुत्त (४०. १३)

बुद्ध माया जानते हैं

एक समय, भगवान् कोलिय (जनपद) में उत्तर नामक कस्बे में विहार करते थे ।

तब, पाटलि ग्रामणी जहाँ भगवान् थे वहाँ आया···। एक ओर बैठ, पाटलि ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते ! मैंने सुना है कि श्रमण गौतम माया जानते हैं। भन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम माया जानते हैं, क्या वे भगवान् के अनुकूल बोलते हैं···कहीं भगवान् पर झूठी बात तो नहीं थोपते हैं ?

ग्रामणी ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम माया जानते हैं, वे मेरे अनुकूल ही बोलते हैं··· मुझ पर झूठी बात नहीं थोपते हैं।

उन लोगों की इस बात को मैं सत्य नहीं स्वीकार करता कि श्रमण गौतम माया जानते हैं इसलिये वे 'मायावी' हैं।

ग्रामणी ! जो कहते हैं कि मैं माया जानता हूँ, वे ऐसा भी कहते हैं कि मैं मायावी हूँ, जैसे जो सुगत हैं वही भगवान् भी हैं। ग्रामणी ! तो मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, जैसा समझो कहो—

(क)

मायावी दुर्गति को प्राप्त होता है

(१)

ग्रामणी ! कोलियों के लम्बे-लम्बे बालवाले सिपाहियों को जानते हो ?

हाँ भन्ते ! मैं उन्हें जानता हूँ।

ग्रामणी ! कोलियों के लम्बे-लम्बे बालवाले वे सिपाही किसलिये रक्खे गये हैं ?

भन्ते ! चोरों से पहरा देने के लिये और दूत का काम करने के लिये वे रक्खे गये हैं।

ग्रामणी ! क्या तुम्हें मालूम है, वे सिपाही शीलवान् हैं या दुःशील ?

हाँ भन्ते ! मैं जानता हूँ, वे बड़े दुःशील=पापी हैं। संसार में जितने लोग दुःशील=पापी हैं, वे उनमें एक हैं।

ग्रामणी ! तब, यदि कोई कहे—पाटली ग्रामणी कोलियों के लम्बे-लम्बे बालवाले दुःशील=पापी सिपाहियों को जानता है, इसलिये वह भी दुःशील=पापी है, तो वह ठीक कहनेवाला होगा ?

नहीं भन्ते ! मैं दूसरा हूँ और वे सिपाही दूसरे हैं, मेरी बात दूसरी है और उन सिपाहियों की बात दूसरी है।

ग्रामणी ! जब पाटली ग्रामणी उन दुःशील=पापी सिपाहियों को जानकर स्वयं दुःशील=पापी नहीं होता है, तो बुद्ध माया को जान क्योंकर मायावी नहीं हो सकते हैं ?

ग्रामणी ! मैं माया को जानता हूँ, और माया के फल को भी। मायावी मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

(२)

ग्रामणी ! मैं जीव-हिंसा को भी जानता हूँ और जीव-हिंसा के फल को भी। जीव-हिंसा करनेवाला मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं चोरी को भी···। चोरी करने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं व्यभिचार को भी···। व्यभिचारी···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं झूठ बोलने को भी···। झूठ बोलने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं चुगली करने को भी···। चुगली करने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं कठोर बोलने को भी···। कठोर बोलने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं गप हाँकने को भी···। गप हाँकने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं लोभ को भी···। लोभ करने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं वैर-द्वेष को भी···। वैर-द्वेष करने वाला···दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

ग्रामणी ! मैं मिथ्या-दृष्टि को भी जानता हूँ, और मिथ्या-दृष्टि के फल को भी। मिथ्या-दृष्टि रखने वाला मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है, यह भी जानता हूँ।

(ख)

मिथ्यादृष्टि वालों का विश्वास नहीं

ग्रामणी ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण ऐसा कहते और मानते हैं—जो जीव-हिंसा करता है वह अपने देखते देखते कुछ दुःख-दौर्मनस्य का भोग कर लेता है। जो चोरी···, व्यभिचार···, झूठ बोलता है, वह अपने देखते देखते कुछ दुःख-दौर्मनस्य का भोग कर लेता है।

(१)

ग्रामणी ! ऐसे मनुष्य भी देखे जा सकते हैं जो माला और कुण्डल पहन, स्नान कर, लेप लगा, बाल बनवा, स्त्रियों के बीच बड़े ऐश-आराम से रहते हैं। तब, कोई पूछे, "इसने क्या किया था कि यह माला और कुण्डल पहन···ऐश-आराम से रहता है ?" उसे लोग कहें "इसने राजा के शत्रुओं को हरा कर मार डाला था, जिससे राजा ने प्रसन्न हो उसे इतना ऐश-आराम दिया है।"

(२)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिन्हें मजबूत रस्सी से दोनों हाथ पीछे बाँध, माथा मुड़वा, कड़े स्वर में ढोल पीटते, एक गली से दूसरी गली, एक चौराहे से दूसरे चौराहे ले जा दक्खिन दरवाजे से निकाल, नगर की दक्खिन ओर शिर काट देते हैं।

तब, कोई पूछे, "अरे ! इसने क्या किया था कि इसे मजबूत रस्सी से दोनों हाथ पीछे बाँध··· शिर काट देते हैं ?"

उसे लोग कहें, "अरे ! यह राजा का वैरी है, इसने स्त्री या पुरुष को जान से मार डाला था, इसी से राजा ने इसे यह दण्ड दिया है।

ग्रामणी ! तुमने ऐसा कभी देखा या सुना है ?

हाँ भन्ते ! मैंने ऐसा देखा-सुना है, और बाद में भी सुनूँगा।

ग्रामणी ! तो, जो श्रमण या ब्राह्मण ऐसा कहते और मानते हैं कि—जो जीव-हिंसा करता है वह अपने देखते ही देखते कुछ दुःख-दौर्मनस्य भोग लेता है, वे सच हुये या झूठ ?

झूठ, भन्ते !

जो तुच्छ झूठ बोलते हैं, वे शीलवान् हुये या दुःशील ?

दुःशील, भन्ते !

जो दुःशील=पापी हैं, वे बुरे मार्ग पर आरूढ़ हैं या अच्छे मार्ग पर ?

भन्ते ! वे बुरे मार्ग पर आरूढ़ हैं ।

जो बुरे मार्ग पर आरूढ़ हैं वे मिथ्या-दृष्टि वाले हुये या सम्यक् दृष्टि वाले ?

भन्ते ! वे मिथ्या-दृष्टि वाले हुये ।

जो मिथ्या-दृष्टि वाले हैं उनमें क्या विश्वास करना चाहिये ?

नहीं भन्ते !

(३)

['१' के समान]···उसे लोग कहें, "इसने राजा के शत्रुओं को हरा कर उनका रत्न छीन लाया था, जिससे राजा ने प्रसन्न हो उसे इतना ऐश-आराम दिया है ।"

(४)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिन्हें मजबूत रस्सी से दोनों हाथ पीछे बाँध··· शिर काट देते हैं ।

···उसे लोग कहें, "अरे ! इसने गाँव या नगर में चोरी की थी, इसी से राजा ने इसे यह दण्ड दिया है ।"

ग्रामणी ! तुमने ऐसा कभी देखा या सुना है ?···

जो मिथ्या-दृष्टिवाले हैं उनमें क्या विश्वास करना चाहिये ?

नहीं भन्ते !

(५)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं जो माला और कुण्डल पहन···।

···उसे लोग कहें, "इसने राजा के शत्रु की स्त्रियों के साथ व्यभिचार किया था, जिससे राजा ने प्रसन्न हो उसे इतना ऐश-आराम दिया है ।"

(६)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिन्हें मजबूत रस्सी से दोनों हाथ पीछे बाँध··· शिर काट देते हैं ।

···उसे लोग कहें, "अरे ! इसने कुल की स्त्रियों या कुमारियों के साथ व्यभिचार किया है, इसी से राजा ने इसे यह दण्ड दिया है ।"

ग्रामणी ! तुमने ऐसा कभी देखा या सुना है ?···

जो मिथ्या-दृष्टिवाले हैं उनमें क्या विश्वास करना चाहिये ?

नहीं भन्ते !

(७)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं जो माला और कुण्डल पहन···।

···उसे लोग कहें, "इसने झूठ कह कर राजा का विनोद किया था, जिससे राजा ने प्रसन्न हो उसे इतना ऐश-आराम दिया है ।"

(८)

ग्रामणी ! ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिन्हें मजबूत रस्सी से दोनों हाथ पीछे बाँध···शिर काट देते हैं।

···उसे लोग कहें, "अरे ! इसने गृहपति या गृहपति-पुत्र को झूठ कह कर उनकी बड़ी हानि पहुँचाई है, इसी से राजा ने इसे यह दण्ड दिया है।

ग्रामणी ! तुमने कभी ऐसा देखा या सुना है ?···

···जो मिथ्या-दृष्टि वाले हैं उनमें क्या विश्वास करना चाहिये ?

नहीं भन्ते !

(ग)

विभिन्न मतवाद

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है !!

भन्ते ! मेरी अपनी एक धर्म-शाला है। वहाँ मञ्च भी हैं, आसन भी हैं, पानी का मटका भी है, तेलप्रदीप भी है। वहाँ जो श्रमण या ब्राह्मण आकर टिकते हैं उनकी मैं यथाशक्ति सेवा करता हूँ।

भन्ते ! एक दिन, भिन्न-भिन्न मत और विचार वाले चार आचार्य आकर ठहरे।

(१)

उच्छेदवाद

एक आचार्य ऐसा कहता और मानता था :—दान, यज्ञ, होम, या अच्छे-बुरे कर्मों के कोई फल नहीं होते। न यह लोक है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, और न स्वयंभू (= औपपातिक) प्राणी हैं। इस संसार में कोई श्रमण या ब्राह्मण सच्चे मार्ग पर आरूढ़ नहीं हैं, जो लोक-परलोक को स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश देते हों।*

(२)

एक आचार्य ऐसा कहता और मानता था—दान, यज्ञ, होम, या अच्छे-बुरे कर्मों के फल होते हैं। यह लोक भी है, परलोक भी है, माता भी है, पिता भी है और स्वयंभू (= औपपातिक सत्व = जो माता-पिता के संयोग से नहीं बल्कि आप ही उत्पन्न होते हैं) प्राणी भी हैं। इस संसार में ऐसे श्रमण और ब्राह्मण हैं जो लोक-परलोक को स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश देते हैं।

(३)

अक्रियवाद

एक आचार्य ऐसा कहता और मानता था—करते-करवाते, काटते-कटवाते, पकाते-पकवाते, सोचते-सोचवाते, तकलीफ उठाते, तकलीफ उठवाते, चंचल होते, चंचल कराते, प्राणी मरवाते, चोरी करते,

---

*अजित केशकम्बल का मत। देखो, दीघ नि. १. २

सेंध मारते, लूट-पाट करते, रहजनी करते, व्यभिचार करते, और झूठ बोलते, कुछ पाप नहीं करता। ···तेज धार वाले चक्र से पृथ्वी पर के प्राणियों को मार कर यदि मांस की एक ढेर लगा दे तो भी उसमें कोई पाप नहीं है। गङ्गा के दक्खिन तीर पर भी कोई जाय मारते-मरवाते, काटते-कटवाते, पकाते-पकवाते, तो भी उसे कोई पाप नहीं। गङ्गा के उत्तर तीर पर भी···। दान, संयम और सत्य-वादिता से कोई पुण्य नहीं होता।*

(४)

एक आचार्य ऐसा कहता और मानता था—करते-करवाते, काटते-कटवाते···व्यभिचार करते और और झूठ बोलते पाप करता है।···मांस की एक ढेर लगा दे तो उसमें पाप है। गङ्गा के दक्खिन तीर ···उत्तर तीर···पाप है। दान, संयम, और सत्यवादिता से पुण्य होता है।

भन्ते! तब, मेरे मन में शंका=विचिकित्सा होने लगी। इन श्रमण-ब्राह्मणों में किसने सच कहा और किसने झूठ?

ग्रामणी! ठीक है; इस स्थान पर तुम्हें शंका करना स्वाभाविक ही था।

भन्ते! मुझे भगवान् के प्रति बड़ी श्रद्धा है। भगवान् मुझे धर्मोपदेश कर मेरी शंका को दूर कर सकते हैं।

(घ)

धर्म की समाधि

ग्रामणी! धर्म की समाधि होती है। यदि तुम्हारे चित्त ने उसमें समाधि लाभ कर लिया तो तुम्हारी शंका दूर हो जायगी। ग्रामणी! वह धर्म की समाधि क्या है?

(१)

ग्रामणी! आर्यश्रावक जीव-हिंसा छोड़ जीव-हिंसा से विरत रहता है।···चोरी करने से विरत रहता है।···व्यभिचार से विरत रहता है।···झूठ बोलने से विरत रहता है।···चुगली करने से···।···कठोर बोलने से···।···गप हाँकने से···। लोभ छोड़ निर्लोभ होता है।··वैर-द्वेष से रहित होता है। मिथ्या-दृष्टि छोड़ सम्यक्-दृष्टिवाला होता है।

ग्रामणी! वह आर्यश्रावक इस प्रकार निर्लोभ, वैर-द्वेष से रहित, मोह-रहित, संप्रज्ञ और स्मृतिमान् हो मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करता है···।

वह ऐसा चिन्तन करता है, "जो आचार्य ऐसा कहता और मानता है—दान···, अच्छे-बुरे कर्मों के कोई फल नहीं होते···,—यदि उसका कहना सच ही है तो भी मेरी कोई हानि नहीं है जो मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाता। इस तरह, दोनों ओर से मैं बचा हूँ। मैं शरीर, वचन और मन से संयत रहता हूँ। मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त करूँगा।" इससे उसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति युक्त होने से उसका शरीर प्रश्रब्ध हो जाता है। शरीर प्रश्रब्ध होने से उसे सुख होता है।

ग्रामणी! यही धर्म की समाधि है। यदि तुम्हारे चित्त ने इस समाधि का लाभ कर लिया तो तुम्हारी शंका दूर हो जायगी।

* पूर्णकाश्यप का मत। देखो, दीघ नि. १, २

(२)

ग्रामणी ! वह आर्यश्रावक···मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करता है···।

वह ऐसा चिन्तन करता है, "जो आचार्य ऐसा कहता और मानता है—दान···, अच्छे-बुरे कर्मों के फल होते हैं···, यदि उसका कहना सच है तो भी मेरी कोई हानि है···।" इससे उसे प्रमोद उत्पन्न होता है।···

(३)

ग्रामणी ! वह आर्यश्रावक···मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करता है···।

वह ऐसा चिन्तन करता है, "जो आचार्य ऐसा कहता और मानता है—करते-करवाते···व्यभिचार करते और झूठ बोलते पाप नहीं करता है।···दान, संयम और सत्यवादिता से पुण्य नहीं होता है, यदि उसका कहना सच है तो मेरी कोई हानि नहीं है···।" इससे उसे प्रमोद उत्पन्न होता है।···

(४)

ग्रामणी ! वह आर्यश्रावक···मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करता है···।

वह ऐसा चिन्तन करता है, "जो आचार्य ऐसा कहता और मानता है—करते-करवाते···व्यभिचार करते और झूठ बोलते पाप करता है···, यदि उसका कहना सच है तो मेरी कोई हानि नहीं है···।" इससे उसे प्रमोद उत्पन्न होता है···।

ग्रामणी ! यही धर्म की समाधि है। यदि तुम्हारे चित्त ने इस समाधि का लाभ कर लिया तो तुम्हारी शंका दूर हो जायगी।

(ङ)

ग्रामणी ! वह आर्यश्रावक···करुणा-सहगत चित्त से···, मुदिता-सहगत चित्त से···, उपेक्षा-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करता है···।

वह ऐसा चिन्तन करता है—···['घ' के १, २, ३, ४ के समान ही] इससे उसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतियुक्त होने से उसका शरीर प्रश्रब्ध होने से उसे सुख होता है।

ग्रामणी ! यही धर्म की समाधि है। यदि तुम्हारे चित्त ने इस समाधि का लाभ कर लिया तो तुम्हारी शंका दूर हो जायगी।

यह कहने पर, पाटलिय ग्रामणी भगवान् से बोला—भन्ते !···मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।

ग्रामणी संयुत्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

४१. असङ्खत-संयुत्त

पहला भाग

पहला वर्ग

§ १. काय सुत्त (४१. १. १)

निर्वाण और निर्वाणगामी मार्ग

भिक्षुओ ! असंस्कृत (= अकृत = निर्वाण) और असंस्कृतगामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! असंस्कृत क्या है ? भिक्षुओ ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है इसे असंस्कृत कहते हैं।

भिक्षुओ ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है ? कायगता स्मृति। भिक्षुओ ! इसे असंस्कृतगामी मार्ग कहते हैं।

भिक्षुओ ! इस प्रकार मैंने असंस्कृत और असंस्कृतगामी मार्ग का उपदेश कर दिया।

भिक्षुओ ! शुभेच्छु और अनुकम्पक बुद्ध को जो अपने श्रावकों के प्रति करना था मैंने कर दिया।

भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, प्रमाद मत करो, ऐसा न हो कि पीछे पश्चात्ताप करना पड़े।

तुम्हारे लिये मेरा यही उपदेश है।

§ २. समथ सुत्त (४१. १. २)

समथ-विदर्शना

···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है ? समथ और विदर्शना।···

···भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, प्रमाद मत करो···।

§ ३. वितक्क सुत्त (४१. १. ३)

समाधि

···भिक्षुओ ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है ? सवितर्क-सविचार समाधि, अवितर्क-विचार मात्र समाधि, अवितर्क-अविचार समाधि।···

···भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, प्रमाद मत करो···।

§ ४. सुञ्ञता सुत्त (४१. १. ४)

समाधि

…भिक्षुओ ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है ? शून्य की समाधि, अनिमित्त की समाधि, अप्रणिहित की समाधि ।…

§ ५. सतिपट्ठान सुत्त (४१. १. ५)

स्मृतिप्रस्थान

…भिक्षुओ ! असंस्कृतगामी मार्ग क्या है ? चार स्मृतिप्रस्थान ।…

§ ६. सम्मप्पधान सुत्त (४१. १. ६)

सम्यक् प्रधान

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? चार सम्यक् प्रधान…

§ ७. इद्धिपाद सुत्त (४१. १. ७)

ऋद्धि-पाद

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? चार ऋद्धियाँ…।

§ ८. इन्द्रिय सुत्त (४१. १. ८)

इन्द्रिय

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? पाँच इन्द्रियाँ…।

§ ९. बल सुत्त (४१. १. ९)

बल

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? पाँच बल…।

§ १०. बोज्झङ्ग सुत्त (४१. १. १०)

बोध्यङ्ग

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? सात बोध्यंग…।

§ ११. मग्ग सुत्त (४१. १. ११)

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

…भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? आर्य अष्टांगिक मार्ग…।

…भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, मत प्रमाद करो, ऐसा नहीं कि पीछे पश्चात्ताप करना पड़े ।

तुम्हारे लिये मेरा यही उपदेश है ।

पहला वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

दूसरा वर्ग

§ १. असङ्खत सुत्त (४१. २. १)

समथ

भिक्षुओ ! असंस्कृत और असंस्कृत-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! असंस्कृत क्या है ? भिक्षुओ ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, मोह-क्षय है इसी को असंस्कृत कहते हैं ।

भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? समथ । भिक्षुओ ! इसे असंस्कृत-गामी मार्ग कहते हैं ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार मैंने तुम्हें असंस्कृत का उपदेश कर दिया, और असंस्कृत-गामी मार्ग का भी ।

भिक्षुओ ! शुभेच्छु अनुकम्पक बुद्ध को जो अपने श्रावकों के प्रति करना चाहिये मैंने कर दिया ।

भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, प्रमाद मत करो, ऐसा नहीं कि पीछे पश्चात्ताप करना पड़े ।

तुम्हारे लिये मेरा यही उपदेश है ।

विदर्शना

···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? विदर्शना···।

छः समाधि

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? सवितर्क-सविचार समाधि···।

(२) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? सवितर्क-विचारमात्र समाधि···।

(३) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? अवितर्क-अविचार समाधि···।

(४) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? शून्यता की समाधि···।

(५) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? अनिमित्त समाधि···।

(६) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? अप्रणिहित समाधि···।

चार स्मृति-प्रस्थान

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, अपने क्लेशों को तपाता है (=आतापी), संप्रज्ञ, स्मृतिमान् हो, संसार में अभिध्या और दौर्मनस्य को दबाकर । भिक्षुओ ! इसको कहते हैं असंस्कृत-गामी मार्ग ।···

(२) ···भिक्षुओ ! भिक्षु वेदना में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है···। भिक्षुओ ! इसको कहते हैं असंस्कृत-गामी मार्ग ।···

(३) ···भिक्षुओ ! भिक्षु चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है···।

(४) ···भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···।

चार सम्यक् प्रधान

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु अनुत्पन्न पाप-मय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये इच्छा करता है, कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन देता है। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं असंस्कृत-गामी मार्ग।···

(२) ···भिक्षुओ ! भिक्षु उत्पन्न पाप-मय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये इच्छा करता है, कोशिश करता है···। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं असंस्कृत-गामी मार्ग।···

(३) ···भिक्षुओ ! भिक्षु अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इच्छा करता है···।

(४) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये घटती रोकने के लिये, वृद्धि करने के लिये, उनका अभ्यास करने के लिये, तथा उन्हें पूर्ण करने के लिये इच्छा करता है, कोशिश करता है···।

चार ऋद्धि-पाद

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार वाले ऋद्धि-पाद की भावना करता है···।

(२) ···भिक्षुओ ! भिक्षु वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार वाले ऋद्धि-पादकी भावना करता है···।

(३) ···भिक्षुओ ! भिक्षु चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार वाले ऋद्धि-पादकी भावना करता है···।

(४) ···भिक्षुओ ! भिक्षु मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार वाले ऋद्धि-पादकी भावना करता है···।

पाँच इन्द्रियाँ

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग, निरोध, तथा त्याग में लगाने वाले श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है।···

(२) ···वीर्येन्द्रिय की भावना करता है।···

(३) ···स्मृतीन्द्रिय की भावना करता है।···

(४) ···समाधीन्द्रिय की भावना करता है।···

(५) ···प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है।···

पाँच बल

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक··· में लगानेवाले श्रद्धा-बल की भावना करता है···।

(२) ···वीर्य-बल की भावना करता है।···

(३) ···स्मृति-बल की भावना करता है।···

(४) ···समाधि-बल की भावना करता है।···

(५) ···प्रज्ञा-बल की भावना करता है।···

सात बोध्यङ्ग

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···में लगानेवाले स्मृति-संबोध्यंग की भावना करता है।···

(२) ···धर्म-विचय-संबोध्यंग की भावना करता है।···
(३) ···वीर्य-संबोध्यंग की भावना करता है।···
(४) ···प्रीति-संबोध्यंग की भावना करता है।···
(५) ···प्रश्रब्धि-संबोध्यंग की भावना करता है।···
(६) ···समाधि-संबोध्यंग की भावना करता है।···
(७) ···उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना करता है।···

अष्टाङ्गिक मार्ग

(१) ···भिक्षुओ ! असंस्कृत-गामी मार्ग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···में लगानेवाली सम्यक्-दृष्टि की भावना करता है।···
(२) ···सम्यक्-संकल्प की···
(३) ···सम्यक्-वाचा की···
(४) ···सम्यक्-कर्मान्त की···
(५) ···सम्यक्-आजीव की···
(६) ···सम्यक्-व्यायाम की···
(७) ···सम्यक्-स्मृति की···
(८) ···सम्यक्-समाधि की···।

§ २. अन्त सुत्त (४१. २. २)

अन्त और अन्तगामी मार्ग

भिक्षुओ ! अन्त और अन्त-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।
भिक्षुओ ! अन्त क्या है ?···
['असंस्कृत' के समान ही, समझ लेना चाहिये]

§ ३. अनासव सुत्त (४१. २. ३)

अनाश्रव और अनाश्रवगामी मार्ग

भिक्षुओ ! अनाश्रव और अनाश्रवगामी मार्ग का उपदेश करूँगा।···

§ ४. सच्च सुत्त (४१. २. ४)

सत्य और सत्यगामी मार्ग

भिक्षुओ ! सत्य और सत्यगामी मार्ग का उपदेश करूँगा।···

§ ५. पार सुत्त (४१. २. ५)

पार और पारगामी मार्ग

भिक्षुओ ! पार और पार-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा···।

§ ६. निपुण सुत्त (४१. २. ६)

निपुण और निपुणगामी मार्ग

भिक्षुओ ! निपुण और निपुण-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा···।

§ ७. सुदुद्दस सुत्त (४१. २. ७)

सुदुर्दर्शगामी मार्ग

भिक्षुओ ! सुदुर्दर्श और सुदुर्दर्श-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा…।

§ ८–३३. अजज्जर सुत्त (४१. २. ८–३३)

अजर्जरगामी मार्ग

…अजर्जर और अजर्जर-गामी मार्ग का…

…ध्रुव और ध्रुव-गामी मार्ग का…

…अपलोकित और अपलोकित-गामी मार्ग का…

…अनिदर्शन…

…निष्प्रपञ्च…

…शान्त…

…अमृत…

…प्रणीत…

…शिव…

…क्षेम…

…तृष्णा-क्षय…

…आश्चर्य…

…अद्भुत…

…अनीतिक (=निर्दुःख)…

…निर्दुःख धर्म…

…निर्वाण…

…निर्लेप…

…विराग…

…शुद्धि…

…मुक्ति…

…अनालय…

…द्वीप…

…लेण (= गुफा)…

…त्राण…

…शरण…

…परायण…

[इन सभी का असंस्कृत के समान विस्तार कर लेना चाहिये]

असङ्खत-संयुत्त समाप्त

दसवाँ परिच्छेद

४२. अव्याकृत-संयुत्त

§ १. खेमा थेरी सुत्त (४२. १)

अव्याकृत क्यों ?

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

उस समय खेमा भिक्षुणी कोशल में चारिका करती हुई श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरण-वस्तु में ठहरी हुई थी।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् साकेत से श्रावस्ती जाते हुये बीच ही तोरणवस्तु में एक रात के लिये रुक गया था।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् ने अपने एक पुरुष को आमन्त्रित किया, हे पुरुष ! जाकर तोरण-वस्तु में देखो, कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण है जिसके साथ आज मैं सत्संग कर सकूँ।

"देव ! बहुत अच्छा" कह, उस पुरुष ने राजा को उत्तर दे, सारे तोरणवस्तु में बहुत खोज करने पर भी वैसे किसी श्रमण या ब्राह्मण को नहीं पाया जिसके साथ कोशलराज प्रसेनजित् सत्संग कर सके।

उस पुरुष ने तोरणवस्तु में ठहरी हुई खेमा भिक्षुणी को देखा। देखकर, जहाँ कोशलराज प्रसेनजित् था वहाँ गया और बोला, "देव ! तोरणवस्तु में वैसा कोई भी श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जिसके साथ देव सत्संग कर सकें। उन अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् की एक श्राविका खेमा भिक्षुणी यहाँ ठहरी हुई है, जिसका बड़ा यश फैला हुआ है—पण्डित है, व्यक्त, मेधाविनी, विदुषी, बोलने में चतुर और अच्छी सूझवाली। देव उसी का सत्संग करें।"

तब, कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ खेमा भिक्षुणी थी वहाँ गया, और अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् खेमा भिक्षुणी से बोला, "आर्ये ! क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं ?"

महाराज ! भगवान् ने इस प्रश्न को अव्याकृत (=जिसका उत्तर 'हाँ' या 'ना' नहीं दिया जा सकता है) बताया है।

आर्ये ! क्या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं ?

महाराज ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है।

आर्ये ! क्या तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी ?

महाराज ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है।

आर्ये ! क्या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?

महाराज ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है।

आर्ये ! तो, क्या कारण है कि भगवान् ने सभी को अव्याकृत बताया है ?

महाराज ! मैं आप ही से पूछती हूँ, जैसा समझें वैसा कहें।

महाराज ! आप क्या समझते हैं, कोई ऐसा गिननेवाला पुरुष है जो गङ्गा के बालुकणों को गिनकर कह सके, ये इतने हैं, इतने सौ हैं, इतने हजार हैं, या इतने लाख हैं ?

नहीं आर्ये !

महाराज ! क्या कोई ऐसा गिननेवाला पुरुष है जो महा-समुद्र के जल को तौल कर बता दे—यह इतना आल्हक (=उस समय का एक माप) है, इतना सौ आल्हक है, इतना हजार आल्हक है, इतना लाख आल्हक है ?

नहीं आर्ये !

सो क्यों ?

आर्ये ! क्योंकि महासमुद्र गम्भीर है, अथाह है।

महाराज ! इस तरह तथागत के रूप के विषय में भी कहा जा सकता है। तथागत का वह रूप प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल, शिर कटे ताड़ के समान, मिटा दिया गया, और भविष्य में न उत्पन्न होने योग्य बना दिया गया। महाराज ! इस रूप और उस रूप के प्रश्न से तथागत विमुक्त होते हैं, गम्भीर, अप्रमेय, अथाह। जैसे महासमुद्र के विषय में वैसे ही तथागत के विषय में भी नहीं कहा जा सकता है—तथागत मरने के बाद रहते हैं, रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं, न रहते हैं और न नहीं रहते हैं।

महाराज ! इसी तरह तथागत की वेदना के विषय में भी···।···संज्ञा के विषय में भी···।···संस्कार के विषय में भी···।···विज्ञान के विषय में भी···।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् खेमा भिक्षुणी के कहे गये का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब, बाद में कोशलराज प्रसेनजित् जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, कोशलराज प्रसेनजित् भगवान् से बोला, भन्ते ! क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं।

महाराज ! मैंने इस प्रश्न को अव्याकृत बताया है।

···[खेमा भिक्षुणी के प्रश्नोत्तर जैसा ही]

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है !! कि इस धर्मोपदेश में भगवान् की श्राविका के अर्थ और शब्द सभी ज्यों के त्यों हूबहू मिल गये।

भन्ते ! एक बार मैंने खेमा भिक्षुणी के पास जाकर यही प्रश्न किया था। उसने भी भगवान् के ही अर्थ और शब्द में इसका उत्तर दिया था। भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है ··। भन्ते ! अब जाने की आज्ञा दें, मुझे बहुत काम करने हैं।

महाराज ! जिसका तुम समय समझो।

तब, कोशलराज प्रसेनजित् भगवान् के कहे गये का अभिनन्दन और अनुमोदन कर आसन से उठ, प्रणाम्-प्रदक्षिणा कर चला गया।

§ २. अनुराध सुत्त (४२. २)

चार अव्याकृत

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् अनुराध भगवान् के पास ही एक आरण्य में कुटी लगा कर रहते थे।

तब, कुछ दूसरे मत के साधु जहाँ आयुष्मान् अनुराध थे वहाँ आये और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे दूसरे मत के साधु आयुष्मान् अनुराध से बोले, "आवुस अनुराध ! जो उत्तम-पुरुष, परम-पुरुष, परम-प्राप्ति-प्राप्त बुद्ध हैं, वे इन चार स्थानों में पूछे जाने पर उत्तर देते हैं (१) क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं ? (२) क्या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं ? (३) क्या तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी ? (४) क्या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?

आवुस ! जो···बुद्ध हैं वे इन चार स्थानों से अन्यत्र ही उत्तर देते हैं···।

यह कहने पर, वे साधु आयुष्मान् अनुराध से बोले, "यह भिक्षु नया=अचिर प्रव्रजित होगा, या कोई मूर्ख अव्यक्त स्थविर हो ।"

यह कह, वे साधु आसन से उठ कर चले गये ।

तब, उन साधुओं के चले जाने के बाद ही आयुष्मान् अनुराध को यह हुआ—यदि वे दूसरे मत के साधु मुझे उसके आगे का प्रश्न पूछतें तो क्या उत्तर दे मैं भगवान् के अनुकूल समझा जाता···कोई झूठी बात भगवान् पर नहीं थोपता ?

तब, आयुष्मान् अनुराध जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् अनुराध भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं भगवान् के पास ही आरण्य में कुटी लगा कर रहता हूँ । भन्ते ! तब, कुछ दूसरे मत वाले साधु जहाँ मैं था वहाँ आये···।···भन्ते ! उन साधुओं के चले जाने के बाद ही मेरे मन में यह हुआ—यदि वे दूसरे मत के साधु मुझे उसके आगे का प्रश्न पूछते तो क्या उत्तर दे मैं भगवान् के अनुकूल समझा जाता···कोई झूठी बात भगवान् पर नहीं थोपता ?

अनुराध ! तो क्या समझते हो, रूप नित्य है या अनित्य ?

अनित्य भन्ते !

जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?

दुःख भन्ते !

जो अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील है उसे क्या ऐसा समझना उचित है—यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?

नहीं भन्ते !

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

अनुराध ! वैसे ही, जो कुछ रूप—अतीत, अनागत, वर्तमान, अध्यात्म, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर, निकट है सभी न मेरा है, न मैं हूँ, न मेरा आत्मा है । इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिये । वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

अनुराध ! इसे जान, पण्डित आर्यश्रावक रूप में भी निर्वेद करता है···जाति क्षीण हुई··· जान लेता है ।

अनुराध ! क्या तुम रूप को तथागत समझते हो ?

नहीं भन्ते !

वेदना को ?

नहीं भन्ते !

संज्ञा को ?

नहीं भन्ते !

संस्कार को ?

नहीं भन्ते !

विज्ञान को ?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! क्या तुम 'रूप में तथागत है' ऐसा समझते हो ?

नहीं भन्ते !

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

अनुराध ! क्या तुम तथागत को रूपवान्···विज्ञानवान् समझते हो ?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! क्या तुम तथागत को रूप-रहित···विज्ञान-रहित समझते हो ?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! जब तुमने स्वयं देख लिया कि तथागत की सत्यतः उपलब्धि नहीं होती है, तो तुम्हारा ऐसा उत्तर देना क्या ठीक था "आवुस ! जो···बुद्ध हैं वे इन चार स्थानों से अन्यत्र ही उत्तर देते हैं···"?

नहीं भन्ते !

अनुराध ! ठीक है, पहले और अब भी मैं सदा दुःख और दुःख के निरोध का ही उपदेश करता हूँ।

§ ३. सारिपुत्तकोट्ठित सुत्त (४२. ३)

अव्याकृत बताने का कारण

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित वाराणसी के पास ही ऋषि-पतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महाकोट्ठित संध्या समय ध्यान से उठ, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ आये और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् महाकोट्ठित आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस ! क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं ?

आवुस ! भगवान् ने इस प्रश्न को अव्यक्त बताया है।

···आवुस ! भगवान् ने इसे भी अव्यक्त बताया है।

···आवुस ! सारिपुत्र ! क्या कारण है कि भगवान् ने इसे अव्यक्त बताया है ?

आवुस ! तथागत मरने के बाद रहते हैं, यह तो रूप के विषय में है। तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं, यह भी रूप के विषय में है। तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं, यह भी रूप के विषय में है। तथागत मरने के बाद न रहते हैं, और न नहीं रहते हैं, यह भी रूप के विषय में है।

वेदना के विषय में···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! यही कारण है कि भगवान् ने इसे अव्यक्त बताया है।

§ ४. सारिपुत्तकोट्ठित सुत्त (४२. ४)

अव्यक्त बताने का कारण

एक समय, आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाकोट्ठित वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

···आवुस ! क्या कारण है कि भगवान् ने इसे अव्यक्त बताया है।

आवुस ! रूप, रूप के समुदय, रूप के निरोध, और रूप के निरोध-गामी मार्ग को यथार्थतः नहीं जानने के कारण ही [ऐसी मिथ्या-दृष्टि होती है] कि तथागत मरने के बाद रहते हैं, या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं, या तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं, या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! रूप, रूप के समुदय, रूप के निरोध, और रूप के निरोध-गामी मार्ग को यथार्थतः जान लेने से ऐसी मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है कि तथागत मरने के बाद रहते हैं···।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! यही कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।

§ ५. सारिपुत्तकोट्ठित सुत्त (४२. ५)

अव्याकृत

···आवुस ! क्या कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

आवुस ! जिसको रूप में राग=छन्द=प्रेम=पिपासा=परिलाह=तृष्णा लगा हुआ है उसे ही ऐसी मिथ्या-दृष्टि होती है कि तथागत मरने के बाद रहते हैं···

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! जिसको रूप में राग=छन्द=प्रेम···नहीं है उसे ऐसी मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है कि तथागत मरने के बाद रहते हैं···।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! यही कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।

§ ६. सारिपुत्तकोट्ठित सुत्त (४२. ६)

अव्याकृत

···आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महा-कोट्ठित से बोले, "आवुस ! क्या कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

(क)

आवुस ! रूप में रमण करने वाले, रूप में रत रहने वाले, रूप में प्रमुदित रहने वाले, और जो रूप के निरोध को यथार्थतः नहीं जानता-देखता है उसे ही यह मिथ्या-दृष्टि होती है—तथागत मरने के बाद रहता है···।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! रूप में रमण नहीं करने वाले, रूप में रत नहीं रहने वाले, रूप में प्रमुदित नहीं रहने वाले, और जो रूप के निरोध को यथार्थतः जानता-देखता है उसे यह मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है—तथागत मरने के बाद···।

वेदना···। संज्ञा···। संस्कार···। विज्ञान···।

आवुस ! यही कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।

(ख)

आवुस ! दूसरा भी कोई दृष्टि-कोण है जिससे भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

है, आवुस !

आवुस ! भवमें रमण करने वाले, भव में रत रहने वाले, भव में प्रमुदित रहने वाले, और जो भव के निरोध को यथार्थतः जानता-देखता है उसे यह मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है—तथागत मरने के बाद···।

आवुस ! भव में रमण नहीं करने वाले, भव में रत नहीं रहने वाले, भव में प्रमुदित नहीं रहने वाले, और जो भव के निरोध को यथार्थतः जानता—देखता है उसे यह मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है—तथागत मरने के बाद···।

आवुस ! यह भी कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।

(ग)

आवुस ! दूसरा भी कोई दृष्टि-कोण है जिससे भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

है आवुस !

आवुस ! उपादान में रमण करने वाले को···यह मिथ्या-दृष्टि होती है···।

उपादान में रमण नहीं करने वाले को···यह मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है···।

आवुस ! यह भी कारण है···।

(घ)

आवुस ! दूसरा भी कोई दृष्टि-कोण···?

है, आवुस !

आवुस ! तृष्णा में रमण करने वाले को···यह मिथ्या-दृष्टि होती है···।

तृष्णा में रमण नहीं करने वाले को···यह मिथ्या-दृष्टि नहीं होती है···।

आवुस ! यह भी कारण है···।

(ङ)

आवुस ! दूसरा भी कोई दृष्टि-कोण है जिससे भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

आवुस सारिपुत्र ! इसके आगे और क्या चाहते हैं !! आवुस ! तृष्णा के बन्धन से जो मुक्त हो चुका है उस भिक्षु को बताने के लिये कुछ नहीं रहता।

§ ७. मोग्गलान सुत्त (४२. ७)

अव्याकृत

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् महामोग्गलान थे वहाँ गया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक आयुष्मान् महामोग्गलान से बोला, मोग्गलान ! क्या लोक शाश्वत है ?"

वत्स ! इसे भगवान् ने अव्याकृत बताया है ।
मोग्गलान ! क्या लोक अशाश्वत है ?
वत्स ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है ।
मोग्गलान ! क्या लोक सान्त है ?
वत्स ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है ।
वत्स ! इसे भी भगवान् ने अव्याकृत बताया है ।
मोग्गलान ! क्या जो जीव है वही शरीर है ?
वत्स !···अव्याकृत···

मोग्गलान ! क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य ?

वत्स !···अव्याकृत···।

मोग्गलान ! क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं···?

वत्स !···अव्याकृत···।

मोग्गलान ! क्या कारण है कि दूसरे मतवाले परिव्राजक पूछे जाने पर ऐसा उत्तर देते हैं—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है···या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?

मोग्गलान ! क्या कारण है कि श्रमण गौतम पूछे जाने पर ऐसा उत्तर नहीं देते हैं—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है···?

वत्स ! दूसरे मतवाले परिव्राजक समझते हैं कि "चक्षु मेरा है, चक्षु मैं हूँ, चक्षु मेरा आत्मा है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···।

इसीलिये, दूसरे मतवाले परिव्राजक पूछे जाने पर ऐसा उत्तर देते हैं—लोक शाश्वत है··।

वत्स ! भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध ऐसा नहीं समझते हैं कि "चक्षु मेरा है···। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···।"

इसीलिये बुद्ध पूछे जाने पर ऐसा उत्तर नहीं देते हैं—लोक शाश्वत है···।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक आसन से उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, "गौतम ! क्या लोक शाश्वत है ?"

वत्स ! इसे मैंने अव्याकृत बताया है ।

···[ऊपर जैसा ही]

गौतम ! आश्चर्य है, अद्भुत है, कि इस धर्मोपदेश में बुद्ध और श्रावक के अर्थ और शब्द बिल्कुल हूबहू मिल गये ।

गौतम ! मैंने इसी प्रश्न को श्रमण मोग्गलान से जाकर पूछा था । उनने भी मुझे इन्हीं शब्दों में उत्तर दिया । आश्चर्य है ! अद्भुत है !!

§ ८. वच्छ सुत्त (४२. ८)

लोक शाश्वत नहीं

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला—"हे गौतम ! क्या लोक शाश्वत है ?

वत्स ! इसे मैंने अव्याकृत बताया है।···"

गौतम ! क्या कारण है कि दूसरे मत वाले परिव्राजक पूछे जाने पर कहते हैं कि—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है…?

वत्स ! दूसरे मत वाले परिव्राजक रूप को आत्मा करके जानते हैं, या आत्मा को रूपवान्, या रूप में आत्मा। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…। यही कारण है कि दूसरे मत वाले परिव्राजक पूछे जाने पर कहते हैं कि लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है…।

वत्स ! बुद्ध रूप को आत्मा करके नहीं जानते हैं, या आत्मा को रूपवान्, या आत्मा में रूप, या रूप में आत्मा। वेदना…। संज्ञा…। संस्कार…। विज्ञान…। यही कारण है कि बुद्ध पूछे जाने पर नहीं कहते हैं कि—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है…।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक आसन से उठ, जहाँ आयुष्मान् **महामोग्गलान** थे वहाँ गया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक आयुष्मान् महामोग्गलान से बोला "मोग्गलान ! क्या लोक शाश्वत है ?"

वत्स ! भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।

…[भगवान् के प्रश्नोत्तर के समान ही]

मोग्गलान ! आश्चर्य है, अद्भुत है कि इस धर्मोपदेश में बुद्ध और श्रावक के अर्थ और शब्द बिल्कुल हूबहू मिल गये।

मोग्गलान ! मैंने इसी प्रश्न को श्रमण गौतम से जा कर पूछा था। उनने भी मुझे इन्हीं शब्दों में उत्तर दिया। आश्चर्य है ! अद्भुत है !!

§ ९. कुतूहलसाला सुत्त (४२. ९)

तृष्णा-उपादान से पुनर्जन्म

तब, **वत्सगोत्र** परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, "हे गौतम ! बहुत पहले की बात है कि एक समय **कौतूहलशाला*** में एकत्रित हो बैठे हुये नाना मतवाले श्रमण, ब्राह्मण और परिव्राजकों के बीच यह बात चली—

यह **पूर्ण काश्यप** संघवाला, गणवाला, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थङ्कर, और बहुत लोगों में सम्मानित हैं। वे अपने श्रावकों के मर जाने पर बता देते हैं कि अमुक यहाँ उत्पन्न हुआ है, और अमुक यहाँ। जो उनका उत्तम पुरुष, परम-पुरुष, परम-प्राप्ति-प्राप्त श्रावक है वह भी श्रावकों के मर जाने पर बता देता है कि अमुक यहाँ उत्पन्न हुआ है और अमुक यहाँ।

यह **मक्खलि-गोसाल** भी…।

यह **निगण्ठ नातपुत्र** भी…।

यह **सञ्जय वेलट्ठिपुत्र** भी…।

यह **प्रक्रुद्ध कात्यायन** भी…।

यह **अजित केशकम्बल** भी…।

---

* वह गृह जहाँ नाना मतावलम्बी एकत्र होकर धर्म-चर्चा करते हैं और जिसे सब लोग कौतूहल-पूर्वक सुनते हैं।

यह श्रमण गौतम भी संघवाला···अमुक यहाँ उत्पन्न हुआ है और अमुक यहाँ। और, बल्कि यह भी बता देता है—तृष्णा को काट डाला, बन्धन को खोल दिया, मान को अच्छी तरह जान दुःख का अन्त कर दिया।

गौतम! तब, मुझे शंका=विचिकित्सा उत्पन्न हुई—श्रमण गौतम के धर्म को कैसे जानूँ।

वत्स! ठीक है। तुम्हें शंका होना स्वाभाविक ही था। मैं उसी की उत्पत्ति के विषय में बताता हूँ जो अभी उपादान से युक्त है, जो उपादान से मुक्त हो गया है उसकी उत्पत्ति के विषय में नहीं।

वत्स! जैसे, उपादान के रहने से ही आग जलती है, उपादान के नहीं रहने से नहीं। वत्स! वैसे ही, मैं उसी की उत्पत्ति के विषय में बताता हूँ जो अभी उपादान से युक्त है, जो उपादान से मुक्त हो गया है उसकी उत्पत्ति के विषय में नहीं।

हे गौतम! जिस समय आग की लपट उड़ कर दूर चली जाती है, उस समय उसका उपादान क्या बताते हैं?

वत्स! जिस समय, आग की लपट उड़ कर दूर चली जाती है, उस समय उसका उपादान 'हवा' ही है।

हे गौतम! इस शरीर को छोड़, दूसरे शरीर पाने के बीच में सत्व का क्या उपादान होता है।

वत्स! इस शरीर को छोड़, दूसरे शरीर पाने के बीच में सत्व का उपादान तृष्णा रहता है।

§ १०. आनन्द सुत्त (४२. १०)

अस्तिता और नास्तिता

···एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक भगवान् से बोला, "हे गौतम! क्या 'अस्तिता' है?"

यह पूछने पर भगवान् चुप रहे।

हे गौतम! क्या 'नास्तिता' है?

यह भी पूछने पर भगवान् चुप रहे।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक आसन से उठकर चला गया।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक के चले जाने के बाद ही आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते! वत्सगोत्र परिव्राजक से पूछे जाने पर भगवान् ने क्यों उत्तर नहीं दिया?"

आनन्द! यदि मैं वत्सगोत्र परिव्राजक से "अस्तिता है" कह देता, तो यह **शाश्वतवाद** का सिद्धान्त हो जाता। और, यदि मैं वत्सगोत्र से "नास्तिता है" कह देता तो यह **उच्छेदवाद** का सिद्धान्त हो जाता।

आनन्द! यदि मैं वत्सगोत्र परिव्राजक से "अस्तिता है" कह देता, तो क्या यह लोगों को 'सभी धर्म अनात्म हैं' इसके ज्ञान देने में अनुकूल होता?

नहीं भन्ते!

आनन्द! यदि मैं वत्सगोत्र को 'नास्तिता है' कह देता, तो उस मूढ़ का मोह और भी बढ़ जाता—मुझे पहले आत्मा अवश्य था जो इस समय नहीं है।

§ ११. सभिय सुत्त (४२. ११)

अव्याकृत

एक समय आयुष्मान् सभिय कात्यायन ञातिका के गिञ्जकावसथ में विहार करते थे।

तब, वत्सगोत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् सभिय कात्यायन थे वहाँ आया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वत्सगोत्र परिव्राजक आयुष्मान् सभिय कात्यायन से बोला, "कात्यायन ! क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं ?

वत्स ! भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है।...

कात्यायन ! क्या कारण है कि भगवान् ने इसे अव्याकृत बताया है ?

वत्स ! जो कारण 'रूपी, या अरूपी, या संज्ञी, या असंज्ञी, या नैवसंज्ञी-नासंज्ञी' यह बताने का है, वही कारण सारा सभी तरह से बिल्कुल निरुद्ध हो जाय। 'रूपी, या अरूपी...' किससे बताया जाय।

कात्यायन ! आपको प्रव्रजित हुये कितने दिन हुये ?

आवुस ! अधिक नहीं, केवल तीन वर्ष।

आवुस ! यदि इतने दिनों में ही इतना हो गया तो यह बहुत है। अधिक का पूछना ही क्या ?

अव्याकृत-संयुत्त समाप्त

षळायतन वर्ग समाप्त।

पाँचवाँ खण्ड

महावर्ग

पहला परिच्छेद

४३. मार्ग-संयुत्त

पहला भाग

अविद्या-वर्ग

§ १. अविज्जा सुत्त (४३. १. १)

अविद्या पापों का मूल

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, भगवान् **श्रावस्ती** में **अनाथपिण्डिक** के आराम **जेतवन** में विहार करते थे ।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ !"

"भदन्त !" कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! अविद्या के ही पहले होने से अकुशल (=पाप) धर्मों की उत्पत्ति होती है, तथा (बुरे कर्मों के करने में) निर्लज्जता (=अह्री) और निर्भयता (=अनपत्रपा) भी होती हैं । भिक्षुओ ! अविद्या में पड़े हुये अज्ञ पुरुष को मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न होती है । मिथ्या-दृष्टिवाले को मिथ्या-संकल्प उत्पन्न होता है । मिथ्या-संकल्पवाले की मिथ्या-वाचा होती है । मिथ्या-वाचावाले का मिथ्या-कर्मान्त होता है । मिथ्या-कर्मान्तवाले का मिथ्या-आजीव होता है । मिथ्या-आजीववाले का मिथ्या-व्यायाम होता है । मिथ्या-व्यायामवाले की मिथ्या-स्मृति होती है । मिथ्या-स्मृतिवाले की मिथ्या-समाधि होती है ।

भिक्षुओ ! विद्या के ही पहले होने से कुशल (=पुण्य) धर्मों की उत्पत्ति होती है, तथा (बुरे कर्मों के करने में) लज्जा (=ह्री) और भय (=अपत्रपा) भी होते हैं । भिक्षुओ ! विद्या-प्राप्त ज्ञानी पुरुष को सम्यक्-दृष्टि उत्पन्न होती है । सम्यक्-दृष्टिवाले को सम्यक्-संकल्प उत्पन्न होता है । सम्यक्-संकल्पवाले की सम्यक्-वाचा होती है । सम्यक्-वाचावाले का सम्यक्-कर्मान्त होता है । सम्यक्-कर्मान्त-वाले का सम्यक्-आजीव होता है । सम्यक्-आजीववाले का सम्यक्-व्यायाम होता है । सम्यक्-व्यायामवाले की सम्यक्-स्मृति होती है । सम्यक्-स्मृतिवाले की सम्यक्-समाधि होती है ।

§ २. उपड्ढ सुत्त (४३. १. २)

कल्याणमित्र से ब्रह्मचर्य की सफलता

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, भगवान् **शाक्य** (जनपद) में **सक्कर** नामक शाक्यों के कस्बे में विहार करते थे ।

तब, आयुष्मान् **आनन्द** जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले—भन्ते ! कल्याणमित्र का मिलना मानो ब्रह्मचर्य आधा सफल हो जाना है ।

आनन्द ! ऐसी बात मत कहो, ऐसी बात मत कहो !! आनन्द ! कल्याणमित्र का मिलना तो

ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है। आनन्द ! ऐसा विश्वास करना चाहिये कि कल्याणमित्रवाला भिक्षु आर्य-अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करेगा।

आनन्द ! कल्याणमित्रवाला भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का कैसे अभ्यास करता है ? आनन्द ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है। ···सम्यक्-संकल्प का···।···सम्यक्-वाचा का···।···सम्यक्-कर्मान्त का···। ···सम्यक्-आजीव का···।···सम्यक्-व्यायाम का···।···सम्यक्-स्मृति का···।···सम्यक्-समाधि का···। आनन्द ! ऐसे ही कल्याणमित्रवाला भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है।

आनन्द ! इस तरह भी जानना चाहिए कि कल्याणमित्र का मिलना तो ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है। आनन्द ! मुझ कल्याण मित्र के पास आ, जन्म लेनेवाले प्राणी जन्म से मुक्त हो जाते हैं, बूढ़े होनेवाले प्राणी बुढ़ापे से मुक्त हो जाते हैं, मरनेवाले प्राणी मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं, शोकादि में पड़े प्राणी शोकादि से मुक्त हो जाते हैं।

आनन्द ! इस तरह भी जानना चाहिए कि कल्याणमित्र का मिलना तो ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है।

§ ३. सारिपुत्त सुत्त (४३. १. ३)

कल्याणमित्र से ब्रह्मचर्य की सफलता

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् से बोले, "भन्ते ! कल्याणमित्र का मिलना तो ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है।"

सारिपुत्र ! ठीक है, ठीक है !! सारिपुत्र ! कल्याणमित्र का मिलना तो ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है।···[ऊपरवाले सूत्र के समान ही]।

सारिपुत्र ! इस तरह भी जानना चाहिए कि कल्याणमित्र का मिलना तो ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही सफल हो जाना है।

§ ४. ब्रह्म सुत्त (४३. १. ४)

ब्रह्म-यान

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय पहन, और पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए पैठे।

आयुष्मान् आनन्द ने जानुश्रोणी ब्राह्मण को बिल्कुल उजली घोड़ी जुते हुए रथ पर श्रावस्ती में निकलते देखा। उजली घोड़ियाँ जुती हुई थीं, सभी साज उजले थे, रथ उजला था, लगाम उजले थे, चाबुक उजली थी, छाता उजला था, चँदवा उजला था, कपड़े उजले थे, जूते उजले थे, और उजले-उजले चँवर भी झल रहे थे।

उसे देखकर लोग कह रहे थे, "यह रथ कितना सुन्दर है, मानो 'ब्रह्म-यान' ही उतर आया हो।"

तब, भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं पूर्वाह्ण समय पहन, और पात्र-चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिये पैठा। भन्ते ! मैंने जानुश्रोणी ब्राह्मण को ···निकलते देखा।···

भन्ते ! उसे देख कर लोग कह रहे थे, "यह रथ कितना सुन्दर है, मानो 'ब्रह्म-यान' ही उतर आया हो।"

भन्ते ! क्या इस धर्म-विनय में ब्रह्म-यान का निर्देश किया जा सकता है ?

भगवान् बोले, "हाँ आनन्द ! किया जा सकता है । आनन्द ! इसी आर्य-अष्टांगिक मार्ग को **ब्रह्म-यान** कहते हैं, **धर्म-यान** भी, और **अनुत्तर संग्रामविजय** भी ।

"आनन्द ! सम्यक्-दृष्टि के चिन्तन और अभ्यास से राग का अन्त हो जाता है, द्वेष का अन्त हो जाता है, मोह का अन्त हो जाता है । सम्यक्-संकल्प के चिन्तन और अभ्यास से··· । सम्यक्-वाचा के··· । सम्यक्-कर्मान्त के··· । सम्यक्-आजीव के··· । सम्यक्-व्यायाम के··· । सम्यक्-स्मृति के··· । सम्यक्-समाधि के चिन्तन और अभ्यास से राग का अन्त हो जाता है, द्वेष का अन्त हो जाता है, मोह का अन्त हो जाता है ।

"आनन्द ! इस तरह भी समझना चाहिये कि इसी आर्य-अष्टांगिक मार्गको ब्रह्म-यान कहते हैं, धर्म-यान भी, और अनुत्तर संग्रामविजय भी ।"

भगवान् ने यह कहा, यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

जिसकी धूरी में श्रद्धा, प्रज्ञा और धर्म सदा जुते रहते हैं,
ह्री ईषा, मन लगाम, और स्मृति सावधान सारथी है ॥१॥
शील के साजवाला रथ, ध्यान अक्ष, वीर्य चक्र,
उपेक्षा समाधि धूरी, अनित्य-बुद्धि ढक्कन ॥२॥
अव्यापाद, अहिंसा, और विवेक जिसके आयुध हैं,
तितिक्षा सन्नद्ध वर्म है, जो रक्षा के निमित्त लगा है ॥३॥
इस ब्रह्म-यान को अपनाकर,
धीर पुरुष इस संसार से निकल जाते हैं,
यह उनकी परम विजय है ॥४॥

§ ५. किमत्थि सुत्त (४३. १. ५)

दुःख की पहचान का मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् ने वहाँ आये···। एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान्से बोले, "भन्ते ! दूसरे मत वाले साधु हमसे पूछा करते हैं—आवुस ! श्रमण गौतम के शासन में किसलिये ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है ? भन्ते ! उनके इस प्रश्न का उत्तर हम लोग इस प्रकार देते हैं—आवुस ! दुःख की पहचान (=परिज्ञा) के लिये श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है ।

"भन्ते ! इस प्रकार उत्तर देकर हम भगवान् के अनुकूल तो कहते हैं न···भगवान् पर कुछ झूठी बात तो नहीं थोपते हैं ?"

भिक्षुओ ! इस प्रकार उत्तर देकर तुम मेरे अनुकूल ही कहते हो···मुझ पर कोई झूठी बात नहीं थोपते हो । भिक्षुओ ! दुःख की पहचान के लिये ही मेरे शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है ।

भिक्षुओ ! यदि तुमसे दूसरे मत वाले साधु पूछें, "आवुस ! दुःख की पहचान के लिये क्या मार्ग है ?" तो तुम कहना, "हाँ आवुस ! दुःख की पहचान के लिये मार्ग है ।"

भिक्षुओ ! इस दुःख की पहचान के लिये कौन सा मार्ग है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग । जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक् समाधि । भिक्षुओ ! इस दुःख की पहचान के लिये यही मार्ग है ।

भिक्षुओ ! दूसरे मत के साधु के प्रश्न का उत्तर तुम इसी प्रकार देना ।

§ ६. पठम भिक्खु सुत्त (४३. १. ६)

ब्रह्मचर्य क्या है ?

श्रावस्ती··· जेतवन···।

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य' कहा करते हैं। भन्ते ! ब्रह्मचर्य क्या है, और क्या है ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य ?"

भिक्षु ! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही ब्रह्मचर्य है। जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक् समाधि।

भिक्षु ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है यही है ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य।

§ ७. दुतिय भिक्खु सुत्त (४३. १. ७)

अमृत क्या है ?

श्रावस्ती··· जेतवन···।

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'राग, द्वेष और मोह का दबाना' कहते हैं। भन्ते ! राग, द्वेष और मोह के दबाने का क्या अभिप्राय है ?

भिक्षु ! राग, द्वेष और मोह के दबाने से निर्वाण का अभिप्राय है। इसी से वह आश्रवों का क्षय कहा जाता है।

यह कहने पर, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'अमृत, अमृत' कहा करते हैं। भन्ते ! अमृत क्या है, और अमृत-गामी मार्ग क्या है ?"

भिक्षु ! राग, द्वेष और मोह का दबाना, यही अमृत है। भिक्षु ! यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग अमृत-गामी मार्ग है। जो, सम्यक् दृष्टि···सम्यक् समाधि।

§ ८. विभङ्ग सुत्त (४३. १. ८)

आर्य अष्टांगिक मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग का विभाग कर उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है ? यही जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि क्या है ? भिक्षुओ ! दुःख का ज्ञान, दुःख के समुदय का ज्ञान, दुःख के निरोध का ज्ञान, दुःख के निरोध-गामी मार्ग का ज्ञान, यही सम्यक्-दृष्टि कही जाती है।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-संकल्प क्या है ? भिक्षुओ ! जो त्याग का संकल्प तथा वैर और हिंसा से अलग रहने का संकल्प है यही सम्यक्-संकल्प कहा जाता है।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-वाचा क्या है ? भिक्षुओ ! जो झूठ, चुगली, कटु-भाषण और गप हाँकने से विरत रहना है यही सम्यक्-वाचा कही जाती है।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-कर्मान्त क्या है ? भिक्षुओ ! जो जीव-हिंसा, चोरी और अब्रह्मचर्य से विरत रहना है, यही सम्यक् कर्मान्त कहा जाता है।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-आजीव क्या है ? भिक्षुओ ! आर्य श्रावक मिथ्या-आजीव को छोड़ सम्यक्-आजीव से अपनी जीविका चलाता है। भिक्षुओ ! इसी को सम्यक्-आजीव कहते हैं।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये (= जिसमें वे उत्पन्न न हो सकें) इच्छा करता है, कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन लगाता है। उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये···। अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के

लिये··· । उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, वृद्धि तथा पूर्णता के लिये··· । भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं सम्यक्-व्यायाम ।

"भिक्षुओ ! सम्यक्-स्मृति क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, क्लेशों को तपाते हुए, संप्रज्ञ, स्मृतिमान् हो, संसार के लोभ और दौर्मनस्य को दबाकर । वेदना में वेदनानुपश्यी होकर··· । चित में चित्तानुपश्यी होकर··· । धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर··· । भिक्षुओ ! इसीको कहते हैं 'सम्यक्-स्मृति' ।

"भिक्षुओ ! भिक्षु···प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है ।··· द्वितीय ध्यान को··· । ···चतुर्थ ध्यान को··· । भिक्षुओ ! इसीको कहते हैं 'सम्यक्-समाधि' ।"

§ ९. सुक सुत्त (४३. १. ९)

ठीक धारणा से ही निर्वाण-प्राप्ति

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! जैसे, ठीक से न रखा गया धान या जौ का नोंक हाथ या पैर से कुचलनेसे गड़ जायगा और लहू निकाल देगा, यह सम्भव नहीं । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि नोंक ठीक से नहीं रखा गया है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु बुरी धारणा को ले मार्ग का बुरी तरह अभ्यास कर अविद्या को काट विद्या उत्पन्न कर लेगा, तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर पायगा, ऐसी बात नहीं है । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उसकी धारणा बुरी है ।

भिक्षुओ ! जैसे ठीक से रखा गया धान या जौ का नोंक हाथ या पैर से कुचलने से गड़ जायगा और लहू निकाल देगा, यह सम्भव है । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि नोंक ठीक से रखा गया है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु अच्छी धारणा को ले मार्ग का अच्छी तरह अभ्यास कर अविद्या को काट विद्या उत्पन्न कर लेगा, तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर पायगा, ऐसा सम्भव है । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उसकी धारणा अच्छी है ।

भिक्षुओ ! अच्छी धारणा से युक्त हो, मार्ग का अच्छी तरह अभ्यास कर भिक्षु अविद्या को काट, विद्या उत्पन्न कर, निर्वाण का कैसे साक्षात्कार कर लेता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु सम्यक् दृष्टि का चिन्तन करता है···जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।···सम्यक् समाधि का···।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार, अच्छी धारणा से युक्त हो, मार्ग का अच्छी तरह अभ्यास कर भिक्षु अविद्या को काट, विद्या उत्पन्न कर, निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है ।

§ १०. नन्दिय सुत्त (४३. १. १०)

निर्वाण-प्राप्ति के आठ धर्म

श्रावस्ती···जेतवन··· ।

तब, नन्दिय परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, नन्दिय परिव्राजक भगवान् से बोला, "हे गौतम ! वे धर्म कितने हैं जिनके चिन्तन और अभ्यास करने से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है ?"

नन्दिय ! वे धर्म आठ हैं जिनके चिन्तन और अभ्यास करने से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है । जो, यह सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि ।···

यह कहने पर, नन्दिय परिव्राजक भगवान् से बोला, "हे गौतम ! आश्चर्य है, अद्भुत है !!··· मुझे उपासक स्वीकार करें ।"

अविद्या वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

विहार वर्ग

§ १. पठम विहार सुत्त (४३. २. १)

बुद्ध का एकान्तवास

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! मैं आठ महीने एकान्तवास कर आत्म-चिन्तन करना चाहता हूँ। एक भिक्षान्न ले जाने वाले को छोड़ मेरे पास कोई आने न पावे।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, भगवान् को उत्तर दे वे भिक्षु भिक्षान्न ले जाने वाले को छोड़ भगवान् के पास नहीं जाने लगे।

तब, आठ महीने बीतने के बाद एकान्तवास छोड़, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! मैं उसी ध्यान में विहार कर रहा था जिसे बुद्धत्व लाभ करने के बाद पहले पहल लगाया था

"मैं देखता हूँ—मिथ्या-दृष्टि के प्रत्यय से भी वेदना होती है। सम्यक्-दृष्टि के प्रत्यय से भी वेदना होती है। …मिथ्या-समाधि के प्रत्यय से भी वेदना होती है। सम्यक्-समाधि के प्रत्यय से भी वेदना होती। इच्छा के प्रत्यय से भी वेदना होती है। वितर्क के प्रत्यय से भी वेदना होती है। संज्ञा के प्रत्यय से भी वेदना होती है।

"इच्छा, वितर्क और संज्ञा के अशान्त रहने के प्रत्यय से भी वेदना होती है। इच्छा के शान्त रहने, तथा वितर्क और संज्ञा के अशान्त रहने के प्रत्यय से भी वेदना होती है। इच्छा तथा वितर्क के शान्त रहने और संज्ञा के अशान्त रहने के प्रत्यय से भी वेदना होती है। इच्छा, वितर्क और संज्ञा के शान्त रहने के प्रत्यय से भी वेदना होती है।

"अर्हत्-फल की प्राप्ति के लिये जो प्रयास है, उसके करने के भी प्रत्यय से वेदना होती है।"

§ २. दुतिय विहार सुत्त (४३. २. २)

बुद्ध का एकान्तवास

…तब, तीन महीने बीतने के बाद एकान्त-वास को छोड़, भगवान्‌ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! मैं उसी ध्यान में विहार कर रहा था जिसे बुद्धत्व-लाभ करने के बाद पहले पहल लगाया था—

मैं देखता हूँ—मिथ्या-दृष्टि के प्रत्यय से वेदना होती है। मिथ्या-दृष्टि के शान्त हो जाने के प्रत्यय से वेदना होती है। सम्यक्-दृष्टि के…। सम्यक्-दृष्टि के शान्त हो जाने के…।…। मिथ्या-समाधि के…। मिथ्या-समाधि के शान्त हो जाने के…। सम्यक्-समाधि के…। सम्यक्-समाधि के शान्त हो जाने के…। इच्छा के…। इच्छा के शान्त हो जाने के…। वितर्क के…। वितर्क के शान्त हो जाने के…। संज्ञा के…। संज्ञा के शान्त हो जाने के…।

इच्छा, वितर्क और संज्ञा के अशान्त होने के प्रत्यय से वेदना होती है। इच्छा के शान्त हो जाने, किन्तु वितर्क और संज्ञा के अशान्त होने के प्रत्यय से वेदना होती है। इच्छा और वितर्क के

शान्त हो जाने, किन्तु संज्ञा के अशान्त होने के प्रत्यय से वेदना होती है। इच्छा, वितर्क और संज्ञा सभी के शान्त हो जाने के प्रत्यय से वेदना होती है।

अर्हत्-फल की प्राप्ति के लिये जो प्रयास है, उसके करने के भी प्रत्यय से वेदना होती है।

§ ३. सेख सुत्त (४३. २. ३)

शैक्ष्य

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'शैक्ष्य, शैक्ष्य' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई शैक्ष्य (=जिसको अभी परमपद सीखना बाकी है) कैसे होता है ?

भिक्षु ! जो शैक्ष्य के अनुकूल सम्यक्-दृष्टि से युक्त होता है···सम्यक्-समाधि से युक्त होता है। भिक्षु ! इसी तरह, कोई शैक्ष्य होता है।

§ ४. पठम उप्पाद सुत्त (४३. २. ४)

बुद्धोत्पत्ति के बिना सम्भव नहीं

श्रावस्ती··· जेतवन···।

भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् की उत्पत्ति के बिना इन पहले कभी नहीं होने वाले आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास नहीं होते हैं। किन आठ धर्मों के ? जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।

भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् की उत्पत्ति के बिना इन्हीं आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास नहीं होते हैं।

§ ५. दुतिय उप्पाद सुत्त (४३. २. ५)

बुद्ध-विनय के बिना सम्भव नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! बुद्ध के विनय के बिना इन पहले कभी नहीं होने वाले आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास नहीं होते हैं। किन आठ धर्मों के ? जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।

भिक्षुओ ! बुद्ध के विनय के बिना इन्हीं आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास नहीं होते हैं।

§ ६. पठम परिसुद्ध सुत्त (४३. २. ६)

बुद्धोत्पत्ति के बिना सम्भव नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् की उत्पत्ति के बिना यह आठ पहले कभी नहीं होने-वाले परिशुद्ध, उज्वल, निष्पाप, तथा क्लेश-रहित धर्म नहीं होते हैं।···सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।···

§ ७. दुतिय परिसुद्ध सुत्त (४३. २. ७)

बुद्ध-विनय के बिना सम्भव नहीं

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! बुद्ध के विनय के बिना यह आठ···क्लेश-रहित धर्म नहीं होते हैं।···सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।···

§ ८. पठम कुक्कुटाराम सुत्त (४३. २. ८)

अब्रह्मचर्य क्या है ?

एक समय, आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् भद्र पाटलिपुत्र में कुक्कुटाराम में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् भद्र संध्या समय ध्यान से उठ, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भद्र आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस ! लोग 'अब्रह्मचर्य, अब्रह्मचर्य' कहा करते हैं। आवुस ! अब्रह्मचर्य क्या है ?"

आवुस भद्र ! ठीक है, आपका प्रश्न बड़ा अच्छा है, आपको यह सूझना बड़ा अच्छा है, आपका यह पूछना बड़ा अच्छा है।

आवुस भद्र ! आप यही न पूछते हैं, "...आवुस ! अब्रह्मचर्य क्या है ?"

हाँ आवुस !

आवुस ! यही अष्टांगिक मिथ्या-मार्ग अब्रह्मचर्य है। जो, मिथ्या-दृष्टि...मिथ्या-समाधि।

§ ९. दुतिय कुक्कुटाराम सुत्त (४३. २. ९)

ब्रह्मचर्य क्या है ?

...आवुस आनन्द ! लोग 'ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य' कहा करते हैं। आवुस ! ब्रह्मचर्य क्या है, और क्या है ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य ?

आवुस भद्र ! ठीक है...।

आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग ब्रह्मचर्य है। जो, सम्यक्-दृष्टि...सम्यक्-समाधि।

आवुस ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है, यही ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य है ?

§ १०. ततिय कुक्कुटाराम सुत्त (४३. २. १०)

ब्रह्मचारी कौन है ?

...आवुस ! ...ब्रह्मचर्य क्या है ? ब्रह्मचारी कौन है ? ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य क्या है ?

आवुस भद्र ! ठीक है...।

आवुस ! यही आर्य अष्टांगिक मार्ग ब्रह्मचर्य है।...

आवुस ! जो इस आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलता है वह ब्रह्मचारी कहा जाता है।

आवुस ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, और मोह-क्षय है, यही ब्रह्मचर्य का अन्तिम उद्देश्य है।

इन तीन सूत्रों का निदान एक ही है।

विहार वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

मिथ्यात्व वर्ग

§ १. मिच्छत्त सुत्त (४३. ३. १)

मिथ्यात्व

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-स्वभाव और सम्यक्-स्वभाव का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-स्वभाव क्या है ? जो, मिथ्या-दृष्टि···मिथ्या-समाधि। भिक्षुओ ! इसी को मिथ्या-स्वभाव कहते हैं।

भिक्षुओ ! सम्यक्-स्वभाव क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि। भिक्षुओ ! इसी को सम्यक्-स्वभाव कहते हैं।

§ २. अकुसल सुत्त (४३. ३. २)

अकुशल धर्म

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! कुशल और अकुशल धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! अकुशल धर्म क्या हैं ? जो मिथ्या-दृष्टि···।

भिक्षुओ ! कुशल धर्म क्या हैं ? जो सम्यक्-दृष्टि···।

§ ३. पठम पटिपदा सुत्त (४३. ३. ३)

मिथ्या-मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग और सम्यक्-मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है ? जो मिथ्या-दृष्टि···।

भिक्षुओ ! सम्यक्-मार्ग क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि···।

§ ४. दुतिय पटिपदा सुत्त (४३. ३. ४)

सम्यक्-मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मैं गृहस्थ या प्रव्रजित के मिथ्या-मार्ग को अच्छा नहीं बताता।

भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग पर आरूढ़ अपने मिथ्या-मार्ग के कारण ज्ञान और कुशल धर्मों का लाभ नहीं कर सकता। भिक्षुओ ! मिथ्या-मार्ग क्या है ? जो, मिथ्या-दृष्टि···मिथ्या-समाधि। भिक्षुओ ! इसी को मिथ्या-मार्ग कहते हैं। भिक्षुओ ! मैं गृहस्थ या प्रव्रजित के मिथ्या-मार्ग को अच्छा नहीं बताता।

भिक्षुओ ! गृहस्थ या प्रव्रजित मिथ्या-मार्ग पर आरूढ़ हो ज्ञान और कुशल धर्मों का लाभ नहीं कर सकता।

भिक्षुओ ! मैं गृहस्थ या प्रव्रजित के सम्यक्-मार्ग को अच्छा बताता हूँ।

भिक्षुओ ! सम्यक्-मार्ग पर आरूढ़ अपने सम्यक्-मार्ग के कारण ज्ञान और कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है। भिक्षुओ ! सम्यक्-मार्ग क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि···। भिक्षुओ इसी को सम्यक्-मार्ग कहते हैं। भिक्षुओ ! मैं गृहस्थ या प्रव्रजित के सम्यक्-मार्ग को अच्छा बताता हूँ।

भिक्षुओ ! गृहस्थ या प्रव्रजित सम्यक्-मार्ग आरूढ़ हो ज्ञान और कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है।

§ ५. पठम सप्पुरिस सुत्त (४३. ३. ५)

सत्पुरुष और असत्पुरुष

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! असत्पुरुष और सत्पुरुष का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! असत्पुरुष कौन है ? भिक्षुओ ! कोई मिथ्या-दृष्टि वाला होता है···मिथ्या-समाधि वाला होता है। भिक्षुओ ! वही असत्पुरुष कहा जाता है।

भिक्षुओ ! सत्पुरुष कौन है ? भिक्षुओ ! कोई सम्यक्-दृष्टि वाला होता है···सम्यक्-समाधि वाला होता है। भिक्षुओ ! वही सत्पुरुष कहा जाता है।

§ ६. दुतिय सप्पुरिस सुत्त (४३. ३. ६)

सत्पुरुष और असत्पुरुष

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! असत्पुरुष और महाअसत्पुरुष का उपदेश करूँगा। सत्पुरुष और महासत्पुरुष का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! असत्पुरुष कौन है ?···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! महाअसत्पुरुष कौन है ? भिक्षुओ ! कोई मिथ्या-दृष्टि वाला होता है···मिथ्या-समाधि वाला होता है। मिथ्या ज्ञान और विमुक्ति वाला होता है। भिक्षुओ ! वही महाअसत्पुरुष कहा जाता है।

भिक्षुओ ! महासत्पुरुष कौन है ? भिक्षुओ ! कोई सम्यक्-दृष्टि वाला होता है···सम्यक्-समाधि वाला होता है, सम्यक् ज्ञान और विमुक्ति वाला होता है। भिक्षुओ ! वही महासत्पुरुष कहा जाता है।

§ ७. कुम्भ सुत्त (४३. ३. ७)

चित्त का आधार

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! जैसे, घड़ा बिना आधार का होने से आसानी से लुढ़का दिया जा सकता है, किन्तु कुछ आधार के होने से आसानी से लुढ़काया नहीं जाता।

भिक्षुओ ! वैसे ही, चित्त बिना आधार का होने से आसानी से लुढ़क जाता है, किन्तु कुछ आधार के होने से नहीं लुढ़कता।

भिक्षुओ ! चित्त का आधार क्या ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग···।···

§ ८. समाधि सुत्त (४३. ३. ८)

समाधि

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! मैं हेतु और परिष्कार के साथ सम्यक्-समाधि का उपदेश करूँगा । उसे सुनो··· ।

भिक्षुओ ! वह हेतु और परिष्कार के साथ आर्य सम्यक्-समाधि क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि··· सम्यक्-स्मृति है ।

भिक्षुओ ! जो इन सात अंगों से चित्त की एकाग्रता है, उसी को हेतु और परिष्कार के साथ आर्य सम्यक्-समाधि कहते हैं ।

§ ९. वेदना सुत्त (४३. ३. ९)

वेदना

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं । कौन-सी तीन ? सुख-वेदना, दुःख-वेदना, और अदुःख-सुख वेदना । भिक्षुओ ! यही तीन वेदना हैं ।

भिक्षुओ ! इन तीन वेदनाओं की परिज्ञा के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये । किस आर्य अष्टांगिक मार्ग का ? जो, सम्यक्-दृष्टि··· सम्यक् समाधि ।···

§ १०. उत्तिय सुत्त (४३. ३. १०)

पाँच कामगुण

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् उत्तिय भगवान् से बोले, "भन्ते ! एकान्त में ध्यान करते समय मेरे मन में यह वितर्क उठा—भगवान् ने जो पाँच कामगुण कहे हैं वह क्या है ?"

उत्तिय ! ठीक है, मैंने पाँच कामगुण कहे हैं । कौन से पाँच ? चक्षुविज्ञेय रूप, अभीष्ट, सुन्दर··· श्रोत्रविज्ञेय शब्द···। घ्राणविज्ञेय गन्ध···। जिह्वाविज्ञेय रस···। कायविज्ञेय स्पर्श···। उत्तिय ! मैंने यही पाँच कामगुण कहे हैं ।

उत्तिय ! इन पाँच काम-गुणों के प्रहाण के लिये आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये । किस आर्य अष्टांगिक मार्ग का ? जो, सम्यक् दृष्टि···सम्यक्-समाधि ।

उत्तिय ! इन पाँच काम-गुणों के प्रहाण के लिये इसी अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये ।

मिथ्यात्व वर्ग समाप्त

चौथा भाग

प्रतिपत्ति वर्ग

§ १. पटिपत्ति सुत्त (४३. ४. १. १)

मिथ्या और सम्यक् मार्ग

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! मिथ्या प्रतिपत्ति (=मार्ग) और सम्यक्-प्रतिपत्ति का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपत्ति क्या है ? जो, मिथ्या-दृष्टि···।

भिक्षुओ ! सम्यक्-प्रतिपत्ति क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि···।

§ २. पटिपन्न सुत्त (४३. ४. १. २)

मार्ग पर आरूढ़

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपन्न (=झूठे मार्ग पर आरूढ़) और सम्यक्-प्रतिपन्न का उपदेश करूँगा । उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपन्न कौन है ? भिक्षुओ ! कोई मिथ्या-दृष्टिवाला होता है···मिथ्या-समाधि-वाला होता है । वही मिथ्या-प्रतिपन्न कहा जाता है ।

भिक्षुओ ! सम्यक्-प्रतिपन्न कौन है ? भिक्षुओ ! कोई सम्यक्-दृष्टिवाला होता है···सम्यक्-समाधि वाला होता है । वही सम्यक्-प्रतिपन्न कहा जाता है ।

§ ३. विरद्ध सुत्त (४३. ४. १. ३)

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं का आर्य अष्टांगिक मार्ग रुक गया, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग रुक गया ।

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं का आर्य अष्टांगिक मार्ग शुरू हुआ, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग शुरू हुआ ।

भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है ? जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि । भिक्षुओ ! जिन किन्हीं का यह आर्य अष्टांगिक मार्ग रुक गया, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग रुक गया । भिक्षुओ ! जिन किन्हीं का आर्य अष्टांगिक मार्ग शुरू हुआ, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग शुरू हुआ ।

§ ४. पारङ्गम सुत्त (४३. ४. १. ४)

पार जाना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! इन आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास करने से अपार को भी पार कर जाता है। किन आठ ? जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि। भिक्षुओ ! इन्हीं आठ धर्मों के चिन्तन और अभ्यास करने से अपार को भी पार कर जाता है।

भगवान् ने यह कहा, यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले :—

मनुष्यों में ऐसे बिरले ही लोग हैं जो पार जाने वाले हैं,
यह सभी तो तीर पर ही दौड़ते हैं ॥१॥
अच्छी तरह बताये गये इस धर्म के अनुकूल जो आचरण करते हैं,
वे ही जन मृत्यु के इस दुस्तर राज्य को पार कर जायेंगे ॥२॥
कृष्ण धर्म को छोड़, पण्डित शुक्ल का चिन्तन करे,
घरसे बेघर हो कर एकान्त शान्त स्थान में ॥३॥
प्रसन्नता से रहे, अकिञ्चन बन कामों को त्याग,
पण्डित अपने चित्त के क्लेशों से अपने को शुद्ध करे ॥४॥
संबोधि-अङ्गों में जिसने चित्त को अच्छी तरह भावित कर लिया है,
ग्रहण और त्याग में जो अनासक्त हैं,
क्षीणाश्रव, तेजस्वी, वे ही संसार में परम-मुक्त हैं ॥५॥

§ ५. पठम सामञ्ञ सुत्त (४३. ४. १. ५)

श्रामण्य

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! श्रामण्य (= श्रमण-भाव) और श्रामण्य-फल का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! श्रामण्य क्या है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो, सम्यक्-दृष्टि···। भिक्षुओ ! इसी को 'श्रामण्य' कहते हैं।

भिक्षुओ ! श्रामण्य-फल क्या है ? स्रोतापत्ति-फल, सकृदागामी-फल, अनागामी-फल, अर्हत्-फल। भिक्षुओ ! इनको 'श्रामण्य-फल' कहते हैं।

§ ६. दुतिय सामञ्ञ सुत्त (४३. ४. १. ६)

श्रामण्य

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! श्रामण्य और श्रामण्य के अर्थ का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! श्रामण्य क्या है ?···। [ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! श्रामण्य का अर्थ क्या है ? भिक्षुओ ! जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, मोह-क्षय है, इसीको श्रामण्य का अर्थ कहते हैं।

§ ७. पठम ब्रह्मञ्ञ सुत्त (४३. ४. १. ७)

ब्राह्मण्य

···भिक्षुओ ! ब्राह्मण्य और ब्राह्मण्य-फल का उपदेश करूँगा···[४३. ४. १. ५ के समान ही]

§ ८. दुतिय ब्रह्मञ्ञ सुत्त (४३. ४. १. ८)

ब्राह्मण्य

···भिक्षुओ ! ब्राह्मण्य और ब्राह्मण्य के अर्थ का उपदेश करूँगा···[४३. ४. १. ६ के समान ही]

§ ९. पठम ब्रह्मचरिय सुत्त (४३. ४. १. ९)

ब्रह्मचर्य

···भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य-फल का उपदेश करूँगा···[४३. ४. १. ५ के समान ही]

§ १०. दुतिय ब्रह्मचरिय सुत्त (४३. ४. १. १०)

ब्रह्मचर्य

···भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य के अर्थ का उपदेश करूँगा··· [४३. ४. १. ६ के समान ही]

प्रतिपत्ति वर्ग समाप्त

अञ्ञतित्थिय-पेय्याल

§ १. विराग सुत्त (४३. ४. २. १)

राग को जीतने का मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! यदि दूसरे मत के साधु तुम से पूछें कि—आवुस ! श्रमण गौतम के शासन में किसलिये ब्रह्मचर्य्य का पालन किया जाता है, तो उनको उत्तर देना कि—आवुस ! राग को जीतने के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।

"भिक्षुओ ! यदि वे दूसरे मत वाले साधु तुमसे पूछें कि—आवुस ! क्या राग को जीतने के लिये मार्ग है, तो तुम उनको उत्तर देना कि—हाँ आवुस ! राग को जीतने के लिये मार्ग है।

"भिक्षुओ ! राग को जीतने का कौन सा मार्ग है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग··· ।

§ २. सञ्ञोजन सुत्त (४३. ४. २. २)

संयोजन

···—आवुस ! श्रमण गौतम के शासन में किसलिये ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, तो तुम उनको उत्तर देना कि—आवुस ! संयोजनों (= बन्धन) के प्रहाण करने के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है।··· [ऊपर जैसा ही विस्तार कर लेना चाहिये]

§ ३. अनुसय सुत्त (४३. ४. २. ३)

अनुशय

···आवुस ! अनुशय को समूल नष्ट कर देने के लिये···।

§ ४. अद्धान सुत्त (४३. ४. २. ४)

मार्ग का अन्त

…आवुस ! मार्ग का अन्त जानने के लिये… ।

§ ५. आसवक्खय सुत्त (४३. ४. २. ५)

आश्रव-क्षय

…आवुस ! आश्रवों का क्षय करने के लिये… ।

§ ६. विज्ञाविमुत्ति सुत्त (३४. ४. २. ६)

विद्या-विमुक्ति

…आवुस ! विद्या के विमुक्तिफल का साक्षात्कार करने के लिये… ।

§ ७. ञाण सुत्त (४३. ४. २. ७)

ज्ञान

…आवुस ! ज्ञान के दर्शन के लिये… ।

§ ८. अनुपादाय सुत्त (४३. ४. २. ८)

उपादान से रहित होना

…आवुस ! उपादान से रहति हो निर्वाण पाने के लिये… ।

अञ्ञतित्थिय पेय्याल समाप्त

सुरिय पेय्याल

विवेक-निश्रित

§ १. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ३. १)

कल्याण-मित्रता

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण है। भिक्षुओ ! वैसे ही, कल्याणमित्र का मिलना आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ का पूर्व-लक्षण है ।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि कल्याणमित्र वाला भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करेगा ।

भिक्षुओ ! कल्याणमित्रवाला भिक्षु कैसे आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है, जिससे परम-मुक्ति सिद्ध होती है।…सम्यक्-समाधि का अभ्यास करता है…।

भिक्षुओ ! कल्याणमित्र वाला भिक्षु इसी प्रकार आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करता है ।

§ २. सील सुत्त (४३. ४. ३. २)

शील

भिक्षुओ ! आकाश में ललाई छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण है। भिक्षुओ ! वैसे ही शील का आचरण आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ का पूर्व-क्षलण है।…[शेष ऊपर जैसा ही समझ लेना चाहिये]

§ ३. छन्द सुत्त (४३. ४. ३. ३)

छन्द

…भिक्षुओ ! वैसे ही, सुकर्म में लगने की प्रवृत्ति…।

§ ४. अत्त सुत्त (४३. ४. ३. ४)

दृढ़-चित्त का होना

…भिक्षुओ ! वैसे ही, दृढ़-चित्त का होना…।

§ ५. दिट्ठि सुत्त (४३. ४. ३. ५)

दृष्टि

…भिक्षुओ ! वैसे ही, सम्यक् दृष्टि का होना…।

§ ६. अप्पमाद सुत्त (४३. ४. ३. ६)

अप्रमाद

…भिक्षुओ ! वैसे ही, अप्रमाद का होना…।

§ ७. योनिसो सुत्त (४३. ४. ३. ७)

मनन करना

…भिक्षुओ ! वैसे ही, अच्छी तरह मनन करना (=मनसिकार)…।

राग-विनय

§ ८. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ३. ८)

कल्याणमित्रता

…[देखो "४३. ४. ३. १"]

भिक्षुओ ! भिक्षु राग, द्वेष और मोह को दूर करनेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।…सम्यक्-समाधि का…।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार कल्याणमित्रवाला भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का…।

§ ९. सील सुत्त (४३. ४. ३. ९)

शील

…भिक्षुओ ! वैसे ही, शील का आचरण करना…।

§ १०–१४. छन्द सुत्त (४३. ४. ३. १०–१४)

छन्द

…भिक्षुओ ! वैसे ही, सुकर्म में लगने की प्रवृत्ति…।

···'दृढ़-चित्त का होना···।

···'सम्यक्-दृष्टि का होना···।

···अप्रमाद का होना···।

···'अच्छी तरह मनन करना···।

सुरिय पेय्याल समाप्त

प्रथम एक-धर्म पेय्याल

विवेक-निश्रित

§ १. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ४. १)

कल्याण-मित्रता

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ के लिये एक धर्म बड़े उपकार का है। कौन एक धर्म ? जो यह 'कल्याणमित्रता'।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि···[देखो ४३. ४. ३. १]।

§ २. सील सुत्त (४३. ४. ४ २.)

शील

···कौन एक धर्म ? जो यह 'शील का आचरण'।···

§ ३. छन्द सुत्त (४३. ४. ४. ३)

छन्द

···कौन एक धर्म ? जो यह सुकर्म में लगने की प्रवृत्ति।···

§ ४. अत्त सुत्त (४३. ४. ४. ४)

चित्त की दृढ़ता

···कौन एक धर्म ? जो यह दृढ़ चित्त का होना।···

§ ५. दिट्ठि सुत्त (४३. ४. ४. ५)

दृष्टि

···कौन एक धर्म ? जो यह सम्यक्-दृष्टि का होना।···

§ ६. अप्पमाद सुत्त (४३. ४. ४. ६)

अप्रमाद

···कौन एक धर्म ? जो यह अप्रमाद का होना।···

§ ७. योनिसो सुत्त (४३. ४. ४. ७)

मनन करना

···कौन एक धर्म ? जो यह अच्छी तरह मनन करना।···

राग-विनय

§ ८. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ४. ८)

कल्याण-मित्रता

भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ के लिये एक धर्म बड़े उपकार का है। कौन एक धर्म ? जो यह 'कल्याण-मित्रता'।

···भिक्षुओ ! भिक्षु राग, द्वेष और मोह को दूर करने वाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।···सम्यक्-समाधि का···।

§ ९-१४. सील सुत्त (४३. ४. ४. ९-१४)

शील

···कौन एक धर्म ?

जो यह शील का आचरण करना।···

जो यह सुकर्म में लगने की प्रवृति।···

जो यह दृढ़ चित्त का होना।···

जो यह सम्यक्-दृष्टि का होना।···

जो यह अप्रमाद का होना।···

जो यह अच्छी तरह मनन करना···।

प्रथम एक-धर्म पेय्याल समाप्त

द्वितीय एक-धर्म पेय्याल

विवेक-निश्रित

§ १. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ५. १)

कल्याण-मित्रता

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! मैं किसी दूसरे ऐसे एक धर्म को भी नहीं देखता हूँ जिससे न पाये गये आर्य अष्टांगिक मार्ग का लाभ हो जाय, या लाभ कर लिया गया मार्ग अभ्यास की पूर्णता को प्राप्त करे। भिक्षुओ ! जैसी यह 'कल्याण-मित्रता'।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि···।

[देखो " ४३. ४. ३. १]

§ २-७. सील सुत्त (४३. ४. ५. २-७)

शील

भिक्षुओ ! मैं किसी दूसरे ऐसे एक धर्म को भी नहीं देखता हूँ···।

जैसा यह शील का आचरण करना।···

जैसी यह सुकर्म में लगने की प्रवृत्ति।···

जैसा यह दृढ़ चित्त का होना।···

जैसा यह सम्यक्-दृष्टि का होना।···

जैसा यह अप्रमाद का होना।···
जैसा यह अच्छी तरह मनन करना।···

राग-विनय

§ ८. कल्याणमित्त सुत्त (४३. ४. ५. ८)

कल्याण-मित्रता

···भिक्षुओ ! जैसी यह कल्याणमित्रता।

···भिक्षुओ ! भिक्षु राग, द्वेष, और मोह को दूर करनेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है। ···सम्यक्-समाधि का···।

§ ९-१४. सील सुत्त (४३. ४. ५. ९-१४)

शील

भिक्षुओ ! मैं किसी दूसरे ऐसे एक धर्म को भी नहीं देखता हूँ···।
जैसा यह शील का आचरण करना।···
···जैसा यह अच्छी तरह मनन करना।···

द्वितीय एक-धर्म पेय्याल समाप्त

गङ्गा-पेय्याल

विवेक-निश्रित

§ १. पठम पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. १)

निर्वाण की ओर बढ़ना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! जैसे गङ्गा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

भिक्षुओ ! आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु कैसे निर्वाण की ओर अग्रसर होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है, जिससे परम मुक्ति सिद्ध होती है।···सम्यक्-समाधि का अभ्यास करता है···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

§ २. दुतिय पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. २)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे जमुना नदी पूरब की ओर बहती है···[ऊपर जैसा ही]।

§ ३. ततिय पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. ३)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे अचिरवती नदी…।

§ ४. चतुत्थ पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. ४)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे सरभू नदी…।

§ ५. पञ्चम पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. ५)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे मही नदी…।

§ ६. छट्ठम पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. ६)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे गङ्गा, जमुना, अचिरवती, सरभू और मही जैसी दूसरी भी नदियाँ…।

§ ७-१२. समुद्द सुत्त (४३. ४. ६. ७-१२)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे गङ्गा नदी समुद्र की ओर बहती है, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है ।

भिक्षुओ ! जैसे जमुना नदी…।

भिक्षुओ ! जैसे अचिरवती नदी…।

भिक्षुओ ! जैसे सरभू नदी…।

भिक्षुओ ! जैसे मही नदी…।

भिक्षुओ ! जैसे…और भी दूसरी नदियाँ…।

राग-विनय

§ १३-१८. पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. १३-१८)

निर्वाण की ओर बढ़ना

…भिक्षु राग, द्वेष और मोह को दूर करनेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है…।

§ १९-२४ समुद्द सुत्त (४३. ४. ६. १९-२४)

निर्वाण की ओर बढ़ना

…भिक्षु राग, द्वेष और मोह को दूर करनेवाली सम्यक् दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है…।

अमतोगध

§ २५–३०. पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. २५–३०)

अमृत-पद को पहुँचना

§ ३१–३६. समुद्द सुत्त (४३. ४. ६. ३१–३६)

···भिक्षु अमृत-पद पहुँचाने वाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।···

निर्वाण-निम्न

§ ३७–४२. पाचीन सुत्त (४३. ४. ६. ३७–४२)

निर्वाण की ओर जाना

§ ४३–४८. समुद्द सुत्त (४३. ४. ६. ४३–४८)

···भिक्षु निर्वाण की ओर ले जाने वाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।···

गङ्गा पेय्याल समाप्त

पाँचवाँ भाग

अप्रमाद वर्ग

विवेक-निश्रित

§ १. तथागत सुत्त (४३. ५. १)

तथागत सर्वश्रेष्ठ

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! जितने प्राणी हैं, अपद, या द्विपद, या चतुष्पद, या बहुप्पद, या रूप वाले, या रूप-रहित, या संज्ञा वाले, या संज्ञा-रहित, या न संज्ञा वाले और न संज्ञा-रहित, सभी में अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् अग्र समझे जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने कुशल (= पुण्य) धर्म हैं सभी का आधार=मूल अप्रमाद ही है। अप्रमाद उन धर्मों का अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु आर्य आष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करेगा।

भिक्षुओ ! अप्रमत्त भिक्षु कैसे आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जाने वाली सम्यक्-दृष्टि का··· ।

राग-विनय

···भिक्षु राग, द्वेष, और मोह को दूर करनेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है··· ।

अमृत

···भिक्षु अमृत-पद पहुँचानेवाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है··· ।

निर्वाण

···भिक्षु निर्वाण की ओर ले जानेवाली सम्यक् दृष्टि का··· ।

§ २. पद सुत्त (४३. ५. २)

अप्रमाद

भिक्षुओ ! जितने जंगम प्राणी हैं सभी के पैर हाथी के पैर में चले आते हैं। बड़ा होने में हाथी का पैर सभी पैरों में अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने कुशल धर्म हैं सभी का आधार = मूल अप्रमाद ही है। अप्रमाद उन धर्मों में अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु··· ।

§ ३. कूट सुत्त (४३. ५. ३)

अप्रमाद

भिक्षुओ ! कूटागार के जितने धरण हैं सभी कूट की ओर …झुके होते हैं। कूट ही उनमें अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने कुशल धर्म हैं… ।

§ ४. मूल सुत्त (४३. ५. ४)

गन्ध

भिक्षुओ ! जैसे, जितने मूल-गन्ध हैं सभी में खस (=कालानुसारिय) अग्र समझा जाता है…।

§ ५. सार सुत्त (४३. ५. ५)

सार

भिक्षुओ ! जैसे, जितने सार-गन्ध हैं सभी में लाल चन्दन अग्र समझा जाता है…।

§ ६. वस्सिक सुत्त (४३. ५. ६)

जूही

भिक्षुओ ! जैसे, जितने पुष्प-गन्ध हैं सभी में जूही (=वार्षिक) अग्र…।

§ ७. राज सुत्त (४३. ५. ७)

चक्रवर्ती

भिक्षुओ ! जैसे, जितने छोटे मोटे राजा होते हैं सभी चक्रवर्ती के आधीन रहते हैं, चक्रवर्ती उनमें अग्र समझा जाता है…।

§ ८. चन्दिम सुत्त (४३. ५. ८)

चाँद

भिक्षुओ ! जैसे, सभी ताराओं की प्रभा चाँद की प्रभा की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है, चाँद उनमें अग्र समझा जाता है…।

§ ९. सुरिय सुत्त (४३. ५. ९)

सूर्य

भिक्षुओ ! जैसे, शरत् काल में आकाश साफ हो जाने पर, सूर्य सारे अन्धकार को दूर कर तपता है, शोभायमान होता है…।

§ १०. वत्थ सुत्त (४३. ५. १०)

काशी-वस्त्र

भिक्षुओ ! जैसे, सभी बुने गये कपड़ों में काशी का बना कपड़ा अग्र समझा जाता है, वैसे ही सभी कुशलधर्मों का आधार=मूल अप्रमाद ही है। अप्रमाद उन धर्मों का अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करेगा।

भिक्षुओ ! अप्रमत्त भिक्षु कैसे आर्य अष्टांगिक मार्ग का चिन्तन और अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक…,विराग…,निरोध…,निर्वाण की ओर ले जानेवाली सम्यक्-दृष्टिका…।

अप्रमाद वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

बलकरणीय वर्ग

§ १. बल सुत्त (४३. ६. १)

शील का आधार

श्रावस्ती... जेतवन...।

भिक्षुओ ! जितने बल से कर्म किये जाते हैं सभी पृथ्वी के आधार पर ही खड़े होकर किये जाते हैं। भिक्षुओ ! वैसे ही, शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किया जाता है।

भिक्षुओ ! शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर कैसे आर्य-अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किया जाता है ?

भिक्षुओ ! विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाली सम्यक्-दृष्टि का अभ्यास करता है...।...सम्यक्-समाधि का...।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास किया जाता है।

§ २. बीज सुत्त (४३. ६. २)

शील का आधार

भिक्षुओ ! जैसे, जितनी वनस्पतियाँ हैं सभी पृथ्वी के आधार पर ही उगती और बढ़ती हैं, वैसे ही शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर...।

§ ३. नाग सुत्त (४३. ६. ३)

शील के आधार से वृद्धि

भिक्षुओ ! हिमालय पर्वत के आधार पर ही नाग बढ़ते और सबल होते हैं। वहाँ बढ़ और सबल हो, वे छोटी-छोटी बहती नालियों में उतर आते हैं। छोटी-छोटी नालियों से उतर कर बड़े-बड़े नालों में चले आते हैं। वहाँ से उतर कर छोटी-छोटी नदियों में चले आते हैं। वहाँ से बड़ी-बड़ी नदियों में चले आते हैं। बड़ी-बड़ी नदियों से महा-समुद्र में चले आते हैं। वे वहाँ बढ़कर बहुत बड़े-बड़े हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करते धर्म में वृद्धि और महानता को प्राप्त करते हैं।

भिक्षुओ ! भिक्षु शील के आधार पर कैसे...महानता को प्राप्त करते हैं ?

भिक्षुओ ! भिक्षु...सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।...सम्यक्-समाधि का...।

§ ४. रुक्ख सुत्त (४३. ६. ४)

निर्वाण की ओर झुकना

भिक्षुओ ! कोई वृक्ष पूरब की ओर बढ़कर झुका हो, तब उसके मूल को काट देने से वह किधर गिरेगा ?

भन्ते ! जिस ओर झुका है उधर ही ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुका रहता है, निर्वाण की ओर अग्रसर होता है ।

भिक्षुओ ! कैसे···निर्वाण की ओर अग्रसर होता है ?

भिक्षुओ !···सम्यक्-दृष्टि।···सम्यक्-समाधि···।

§ ५. कुम्भ सुत्त (४३. ६. ५)

अकुशल-धर्मों का त्याग

भिक्षुओ ! उलट देने से घड़ा सभी पानी बहा देता है, कुछ रोक नहीं रखता । भिक्षुओ ! वैसे ही, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाला भिक्षु सभी पापमय अकुशल धर्मों को छोड़ देता है, कुछ रहने नहीं देता।

भिक्षुओ !···कैसे···?

भिक्षुओ !···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ ६. सुकिय सुत्त (४३. ६. ६)

निर्वाण की प्राप्ति

भिक्षुओ ! ऐसा हो सकता है कि अच्छी तरह तैयार किया गया धान या जौ का काँटा हाथ या पैर में चुभाने से गड़ जाय और लहू निकाल दे । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि काँटा अच्छी तरह तैयार किया गया है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, यह हो सकता है कि भिक्षु अच्छी तरह आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करके अविद्या दूर कर दे, विद्या का लाभ करे, और निर्वाण का साक्षात्कार कर ले । सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उसने ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है ।

भिक्षुओ ! ···कैसे···?

भिक्षुओ ! ···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ ७. आकास सुत्त (४३. ६. ७)

आकाश की उपमा

भिक्षुओ ! आकाश में विविध वायु बहती हैं । पूरब की वायु भी बहती है । पच्छिम···। उत्तर···। दक्खिन···। धूली के साथ···। स्वच्छ···। ठंढी···। गर्म···। धीमी···। तेज वायु भी बहती है ।

भिक्षुओ ! वैसे ही, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाले भिक्षु में चारों स्मृति-प्रस्थान पूर्णता को प्राप्त होते हैं, चार सम्यक्-प्रधान भी पूर्णता को प्राप्त होते हैं, चार ऋद्धियाँ भी···, पाँच इन्द्रियाँ भी···, पाँच बल भी···, सात बोध्यंग भी···।

भिक्षुओ ! ···कैसे···?

भिक्षुओ ! ···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ ८. पठम मेघ सुत्त (४३. ६. ८)

वर्षा की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, ग्रीष्म ऋतु के पहिले महीने में उड़ती धूल को पानी की एक बौछार दबा देती है, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु मन में उठते पाप-मय अकुशल धर्मों को दबा देता है।

भिक्षुओ !···कैसे···?

भिक्षुओ !···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ ९. दुतिय मेघ सुत्त (४३. ६. ९)

बादल की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, उमड़ते महामेघ को हवा के झकोर तितर-बितर कर देते हैं, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाला भिक्षु मन में उठते पाप-मय अकुशल धर्मों को तितर-बितर कर देता है।

भिक्षुओ !···कैसे···?

भिक्षुओ !···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ १०. नावा सुत्त (४३. ६. १०)

संयोजनों का नष्ट होना

भिक्षुओ ! जैसे, छः महीने पानी में चला लेने के बाद, हेमन्त में स्थल पर रक्खी हुई बेंत के बन्धन से बँधी हुई नाव के बन्धन बरसात का पानी पड़ने से शीघ्र ही सड़ जाते हैं, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाले भिक्षु के संयोजन (=बन्धन) नष्ट हो जाते हैं।

भिक्षुओ !···कैसे···?

भिक्षुओ !···सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ ११. आगन्तुक सुत्त (४३. ६. ११)

धर्मशाला की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे कोई धर्म-शाला (= अगन्तुकाराम) हो वहाँ पूरब दिशासे भी लोग आकर रहते हैं। पच्छिम···। उत्तर···। दक्खिन···। क्षत्रिय भी आ कर रहते हैं। ब्राह्मण भी···। वैश्य भी ···। शूद्र भी···।

भिक्षुओ ! वैसे ही, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाले भिक्षु ज्ञान-पूर्वक जानने योग्य धर्मों को ज्ञान-पूर्वक जानते हैं···, ज्ञान-पूर्वक त्याग करने योग्य धर्मों का ज्ञान-पूर्वक त्याग कर देते हैं, ज्ञान-पूर्वक साक्षात्कार करते हैं, और ज्ञान-पूर्वक अभ्यास करने योग्य धर्मों का ज्ञान-पूर्वक अभ्यास करते हैं।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पूर्वक जानने योग्य धर्म कौन हैं ? कहना चाहिये कि 'यह पाँच उपादान स्कन्ध'। कौन से पाँच ? जो, रूप-उपादानस्कन्ध···विज्ञान-उपादानस्कन्ध। भिक्षुओ ! यही ज्ञान-पूर्वक जानने योग्य धर्म हैं।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पूर्वक त्याग करने योग्य धर्म कौन हैं ? भिक्षुओ ! अविद्या और भव-तृष्णा, यह धर्म ज्ञान-पूर्वक त्याग करने योग्य हैं।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्म कौन हैं ? भिक्षुओ ! विद्या और विमुक्ति, यह धर्म ज्ञान-पूर्वक साक्षात्कार करने योग्य हैं।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पूर्वक अभ्यास करने योग्य धर्म कौन हैं ? भिक्षुओ ! शमथ और विदर्शना, यह धर्म ज्ञान-पूर्वक अभ्यास करने योग्य हैं।

भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

§ १२. नदी सुत्त (४३. ६. १२)

गृहस्थ बनना सम्भव नहीं

भिक्षुओ ! जैसे, गंगा नदी पूरब की ओर बहती है। तब, आदमियों का एक जत्था कुदाल और टोकरी लिये आवे और कहे—हम लोग गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा देंगे।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, वे गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा सकेंगे ?

नहीं भन्ते !

सो क्यों ?

भन्ते ! गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, उसे पच्छिम बहा देना आसान नहीं। वे लोग व्यर्थ में परेशानी उठावेंगे।

भिक्षुओ ! वैसे ही, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करने वाले भिक्षु को राजा, राज-मन्त्री, मित्र, सलाहकार, या कोई बन्धु-बान्धव सांसारिक भोगों का लोभ दिखाकर बुलावें—अरे ! यहाँ आओ, पीले कपड़े में क्या रक्खा है, क्या माथा मुड़ा कर घूम रहे हो ! आओ, घर पर रह कामों को भोगो और पुण्य करो।

भिक्षुओ ! तो, यह सम्भव नहीं है कि वह शिक्षा को छोड़ गृहस्थ बन जायगा।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! ऐसा सम्भव नहीं है कि दीर्घकाल तक जो चित्त विवेक की ओर लगा रहा है वह गृहस्थी में पड़ेगा।

भिक्षुओ ! भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग का कैसे अभ्यास करता है।

भिक्षुओ ! ··सम्यक्-दृष्टि···।···सम्यक्-समाधि···।

['बलकरणीय' के ऐसा विस्तार करना चाहिये]

बलकरणीय वर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

एषण वर्ग

§ १. एसण सुत्त (४३. ७. १)

तीन एषणायें

(अभिज्ञा)

भिक्षुओ ! एषणा (=खोज=चाह) तीन हैं। कौन सी तीन ? कामैषणा, भवैषणा, *ब्रह्मचर्यैषणा। भिक्षुओ ! यही तीन एषणा हैं।

भिक्षुओ ! इन तीन एषणा को जानने के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।

आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···की ओर ले जाने वाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।···सम्यक्-समाधि···।···

·· राग, द्वेष, और मोह को दूर करने वाली सम्यक्-दृष्टि का चिन्तन और अभ्यास करता है।··· सम्यक्-समाधि···।

···अमृत-पद देने वाली सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि···।

···निर्वाण की ओर ले जाने वाली सम्यक्-दृष्टि···सम्यक् समाधि···।

(परिज्ञा)

भिक्षुओ ! एषणा तीन हैं।···

भिक्षुओ ! इन तीन एषणा को अच्छी तरह जानने के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।···[ऊपर जैसा ही]

(परिक्षय)

···भिक्षुओ ! इन तीन एषणा के क्षय के लिये···।

(प्रहाण)

···भिक्षुओ ! इन तीन एषणा के प्रहाण के लिये···।

§ २. विधा सुत्त (४३. ७. २)

तीन अहंकार

भिक्षुओ ! अहंकार तीन हैं। कौन से तीन ? मैं बड़ा हूँ—इसका अहंकार, मैं बराबर हूँ—इसका अहंकार, मैं छोटा हूँ—इसका अहंकार। भिक्षुओ ! यही तीन अहंकार हैं।

भिक्षुओ ! इन तीन अहंकार को जानने, अच्छी तरह जानने, क्षय, और प्रहाण के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।

आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है ?

···[शेष देखो "४३. ७. १ एषणा"]

---

* मिथ्या-दृष्टि युक्त ब्रह्मचर्य की एषणा—अट्ठकथा।

§ ३. आसव सुत्त (४३. ७. ३)

तीन आश्रव

भिक्षुओ ! आश्रव तीन हैं ? कौन से तीन ? काम-आश्रव, भव-आश्रव, अविद्या-आश्रव। भिक्षुओ ! यही तीन आश्रव हैं।

भिक्षुओ ! इन तीन आश्रवों को जानने, अच्छी तरह जानने, क्षय और प्रहाण के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।···

§ ४. भव सुत्त (४३. ७. ४)

तीन भव

···काम-भव, रूप-भव, अरूप-भव···।

भिक्षुओ ! इन तीन भवों को जानने···।

§ ५. दुक्खता सुत्त (४३. ७. ५)

तीन दुःखता

···दुःख-दुःखता, संस्कार-दुःखता, विपरिणाम-दुःखता···।

भिक्षुओ ! इन तीन दुःखता को जानने···।

§ ६. खील सुत्त (४३. ७. ६)

तीन रुकावटें

···राग, द्वेष, मोह···

भिक्षुओ ! इन तीन रुकावटों (=खील) को जानने···।

§ ७. मल सुत्त (४३. ७. ७)

तीन मल

···राग, द्वेष, मोह···

भिक्षुओ ! इन तीन मलों को जानने···।

§ ८. नीघ सुत्त (४३. ७. ८)

तीन दुःख

···राग, द्वेष, मोह···

भिक्षुओ ! इन तीन दुःखों को जानने··

§ ९. वेदना सुत्त (४३. ७. ९)

तीन वेदना

·· सुख वेदना, दुःख वेदना, अदुःख-सुख वेदना···

भिक्षुओ ! इन तीन वेदना को जानने···।

§ १०. तण्हा सुत्त (४३. ७. १०)

तीन तृष्णा

···काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा···

भिक्षुओ ! इन तीन तृष्णा को जानने···।

§ ११. तसिन सुत्त (४३. ७. ११)

तीन तृष्णा

···काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा···

भिक्षुओ ! इन तीन तृष्णा को जानने···।

एषण वर्ग समाप्त

आठवाँ भाग

ओघ वर्ग

§ १. ओघ सुत्त (४३. ८. १)

चार बाढ़

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! बाढ़ चार हैं। कौन से चार ? काम-बाढ़, भव-बाढ़, मिथ्या-दृष्टि-बाढ़, अविद्या-बाढ़। भिक्षुओ ! यही चार बाढ़ हैं।

भिक्षुओ ! इन चार बाढ़ों को जानने, अच्छी तरह जानने, क्षय और प्रहाण करने के लिये…इस आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।

["एषणा" के समान ही विस्तार कर लेना चाहिये]

§ २. योग सुत्त (४३. ८. २)

चार योग

…काम-योग, भव-योग, मिथ्या-दृष्टि-योग, अविद्या-योग…।

भिक्षुओ ! इन चार योगों को जानने…।

§ ३. उपादान सुत्त (४३. ८. ३)

चार उपादान

…काम-उपादान, मिथ्या-दृष्टि-उपादान, शीलव्रत-उपादान आत्मवाद-उपादान…।

भिक्षुओ ! इन चार उपादानों को जानने…।

§ ४. गन्थ सुत्त (४३. ८. ४)

चार गाँठें

…अभिध्या (=लोभ), व्यापाद (= वैर-भाव), शीलव्रत-परामर्श (=ऐसी मिथ्या धारणा कि शील और व्रत के पालन करने से मुक्ति हो जायगी), यही परमार्थ सत्य है, ऐसे हठ का होना…

भिक्षुओ ! इन चार ग्रन्थों (= गाँठ) को जानने…।

§ ५. अनुसय सुत्त (४३. ८ ५)

सात अनुशय

भिक्षुओ ! अनुशय सात हैं। कौन से सात ? काम-राग, हिंसा-भाव, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा, मान, भव-राग, और अविद्या…।

भिक्षुओ ! इन सात अनुशयों को जानने…।

§ ६. कामगुण सुत्त (४३. ८. ६)

पाँच काम-गुण

···कौन से पाँच ? चक्षुविज्ञेय रूप अभीष्ट···, श्रोत्रविज्ञेय शब्द अभीष्ट···, घ्राणविज्ञेय गन्ध अभीष्ट···, जिह्वाविज्ञेय रस अभीष्ट···, कायाविज्ञेय स्पर्श अभीष्ट···।···

भिक्षुओ ! इन पाँच काम-गुणों को जानने···।

§ ७. नीवरण सुत्त (४३. ८. ७)

पाँच नीवरण

···कौन से पाँच ? काम-इच्छा, वैर-भाव, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य (= आवेश में आकर कुछ उलटा-सलटा कर बैठना और पीछे उसका पछतावा करना), विचिकित्सा (=धर्म में शंका का होना)।···

भिक्षुओ ! इन पाँच नीवरणों को जानने···

§ ८. खन्ध सुत्त (४३. ८. ८)

पाँच उपादान स्कन्ध

···कौन से पाँच ? जो, रूप-उपादान स्कन्ध, वेदना···, संज्ञा···, संस्कार···, विज्ञान-उपादान स्कन्ध···।

भिक्षुओ ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों को जानने···।

§ ९. ओरम्भागिय सुत्त (४३. ८. ९)

निचले पाँच संयोजन

भिक्षुओ ! नीचेवाले पाँच संयोजन (= बन्धन) हैं। कौन से पाँच ? सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, काम-छन्द, व्यापाद।···

भिक्षुओ ! इन पाँच नीचेवाले संयोजनों को जानने···।

§ १०. उद्धम्भागिय सुत्त (४३. ८. १०)

ऊपरी पाँच संयोजन

भिक्षुओ ! ऊपरवाले पाँच संयोजन हैं। कौन से पाँच ? रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।···

भिक्षुओ ! इन पाँच ऊपर वाले संयोजनों को जानने, अच्छी तरह जानने, क्षय और प्रहाण करने के लिये आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिये।

आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु···सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि···।

भिक्षुओ ! जैसे गंगा नदी···। विवेक···। विराग···। निरोध···। निर्वाण···।

ओघ वर्ग समाप्त

मार्ग-संयुत्त समाप्त

दूसरा परिच्छेद

४४. बोध्यङ्ग-संयुत्त

पहला भाग

पर्वत वर्ग

§ १. हिमवन्त सुत्त (४४. १. १)

बोध्यङ्ग-अभ्यास से वृद्धि

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! पर्वतराज हिमालय के आधार पर नाग बढ़ते और सबल होते हैं···[देखो "४३. ६. ३"]।

भिक्षुओ ! वैसे ही, भिक्षु शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, सात बोध्यंग का अभ्यास करते धर्म में बढ़कर महानता को प्राप्त होता है।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाले स्मृति-संबोध्यंग का अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति होती है।···धर्म-विचय-सम्बोध्यंग···।···वीर्य-संबोध्यंग···।···प्रीति-संबोध्यंग···। ···प्रश्रब्धि-संबोध्यंग···।···समाधि-संबोध्यंग···।···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ ! इस प्रकार भिक्षु शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, सात बोध्यंग का अभ्यास करते धर्म में बढ़कर महानता को प्राप्त होता है।

§ २. काय सुत्त (४४. १. २)

आहार पर अवलम्बित

श्रावस्ती···जेतवन···।

(क)

भिक्षुओ ! जैसे, यह शरीर आहार पर ही खड़ा है, आहार के मिलने ही पर खड़ा रहता है, आहार के नहीं मिलने पर खड़ा नहीं रह सकता।

भिक्षुओ ! वैसे ही, पाँच नीवरण (=चित्त के आवरण) आहार पर ही खड़े हैं···, आहार के नहीं मिलने पर खड़े नहीं रह सकते।

भिक्षुओ ! वह कौन आहार है जिससे अनुत्पन्न काम-छन्द उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न काम-छन्द वृद्धि को प्राप्त होते हैं ?

भिक्षुओ ! शुभ-निमित्त (= सौन्दर्य को केवल देखना) है। उसकी बुराइयों का कभी मनन न करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न काम-छन्द उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न काम-छन्द वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

भिक्षुओ ! वह कौन आहार है जिससे अनुत्पन्न वैर-भाव···, आलस्य···, औद्धत्य-कौकृत्य···, विचिकित्सा··· ['काम-छन्द' जैसा विस्तार कर लेना चाहिये]···

(ख)

भिक्षुओ ! जैसे, यह शरीर आहार पर ही खड़ा है···आहार के नहीं मिलनेपर खड़ा नहीं रह सकता।

भिक्षुओ ! वैसे ही, सात बोध्यंग आहार पर ही खड़े होते हैं,···आहार के नहीं मिलने पर खड़े नहीं रह सकते।

भिक्षुओ ! वह कौन आहार है जिससे अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग भावित और पूर्ण होता है ?

भिक्षुओ ! स्मृति-संबोध्यंग सिद्ध करने वाले जो धर्म हैं उनका अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग भावित और पूर्ण होता है।

भिक्षुओ !···कुशल और अकुशल, सदोष और निर्दोष, बुरे और अच्छे, तथा कृष्ण और शुक्ल धर्मोंका अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न धर्मविचय-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न धर्म-विचय-संबोध्यंग, भावित और पूर्ण होता है।

भिक्षुओ ! आरम्भ-धातु, और पराक्रम-धातु का अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न वीर्य-संबोध्यंग··· ।

भिक्षुओ !···प्रीति-संबोध्यंग सिद्ध करनेवाले जो धर्म हैं उनका अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न प्रीति-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न प्रीति-संबोध्यंग भावित और पूर्ण होता है।

भिक्षुओ !···काय-प्रश्रब्धि और चित्त-प्रश्रब्धि का अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न प्रश्रब्धि-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ !···समथ और विदर्शना का अच्छी तरह मनन करना—यही वह आहार है जिससे अनुत्पन्न समाधि-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ !···उपेक्षा-संबोध्यंग सिद्ध करने वाले जो धर्म हैं उनका अच्छी तरह मनन करना—···जिससे अनुत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ ! जैसे, यह शरीर आहार पर ही खड़ा है,···आहार के नहीं मिलने पर खड़ा नहीं रह सकता, वैसे ही सात बोध्यंग आहार पर ही खड़े होते हैं,···आहार के नहीं मिलने पर खड़े नहीं रह सकते।

§ ३. सील सुत्त (४४. १. ३)

बोध्यङ्ग-भावना के सात फल

भिक्षुओ ! जो भिक्षु शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति और विमुक्ति-ज्ञानदर्शन से सम्पन्न हैं, उनका दर्शन भी बड़ा उपकारक होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

उनके उपदेशों को सुनना भी बड़ा उपकारक होता है···। उनके पास जाना भी···। उनका सत्संग करना भी···। उनसे शिक्षा लेना भी···। उनसे प्रव्रजित हो जाना भी···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! वैसे भिक्षुओं से धर्म सुन, वह शरीर और मन दोनों से अलग होकर विहार करता है। इस प्रकार विहार करते हुये वह धर्म का स्मरण और चिन्तन करता है। उस समय उसके स्मृति-संबोध्यंग का प्रारम्भ होता है। वह स्मृति-संबोध्यंग की भावना करता है। इस तरह, वह भावित और पूर्ण हो जाता है। वह स्मृतिमान् हो विहार करते हुये धर्म को प्रज्ञा से जान और समझ लेता है।

भिक्षुओ ! जिस समय, भिक्षु स्मृतिमान् हो विहार करते हुये धर्म को प्रज्ञा से जान और समझ लेता है, उस समय उसके धर्मविचय-संबोध्यंग का प्रारम्भ होता है। वह धर्मविचय-संबोध्यंग की भावना करता है। इस तरह, वह भावित और पूर्ण हो जाता है। उस धर्म को प्रज्ञा से जान और समझ कर विहार करते हुये उसे वीर्य (= उत्साह) होता है।

भिक्षुओ ! जिस समय, धर्म को प्रज्ञा से जान और समझ कर विहार करते हुये उसे वीर्य होता है, उस समय उसके वीर्य-संबोध्यंग का प्रारम्भ होता है।···इस तरह, उसका वीर्य-संबोध्यंग भावित और पूर्ण हो जाता है। वीर्यवान् को निरामिष प्रीति उत्पन्न होती है।

···भिक्षुओ ! जिस समय वीर्यवान् भिक्षु को निरामिष प्रीति उत्पन्न होती है, उस समय उसके प्रीति-संबोध्यंग का आरम्भ होता है।···इस तरह, उसका प्रीति-संबोध्यंग भावित और पूर्ण हो जाता है। प्रीति-युक्त होने से शरीर और मन दोनों प्रश्रब्ध हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जिस समय प्रीति-युक्त होने से शरीर और मन दोनों प्रश्रब्ध(=शान्त) हो जाते हैं, उस समय उसके प्रश्रब्धि-संबोध्यंग का आरम्भ होता है।···इस तरह, उसका प्रश्रब्धि-संबोध्यंग भावित और पूर्ण हो जाता है। प्रश्रब्ध हो जाने से सुख होता है। सुख-युक्त होने से चित्त समाहित हो जाता है।

भिक्षुओ ! जिस समय···चित्त समाहित हो जाता है, उस समय उसके समाधि-संबोध्यंग का आरम्भ होता है।···इस तरह, उसका समाधि-संबोध्यंग भावित और पूर्ण हो जाता है। उस समय, वह अपने समाहित चित्त के प्रति अच्छी तरह उपेक्षित हो जाता है।

भिक्षुओ ! ···उस समय उसके उपेक्षा-संबोध्यंग का आरम्भ होता है।···इस तरह, उसका उपेक्षा-संबोध्यंग भावित और पूर्ण हो जाता है।

भिक्षुओ ! इस प्रकार सात बोध्यंगों के भावित और अभ्यास हो जाने पर उसके सात अच्छे परिणाम होते हैं। कौन से सात अच्छे परिणाम ?

१—२. अपने देखते ही देखते परम-ज्ञान को पैठ कर देख लेता है, यदि नहीं तो मरने के समय उसका लाभ करता है।

३. यदि वह भी नहीं, तो पाँच नीचेवाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है।

४. यदि वह भी नहीं, तो पाँच नीचेवाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से आगे चलकर निर्वाण पा लेता है।

५. यदि वह भी नहीं, तो···क्षीण हो जाने से असंस्कार-परिनिर्वाण को प्राप्त करता है।

६. यदि वह भी नहीं, तो···क्षीण हो जाने से ससंस्कार-परिनिर्वाण को प्राप्त करता है।

७. यदि वह भी नहीं, तो···क्षीण हो जाने से ऊपर उठने वाला (=ऊर्ध्व स्रोत), श्रेष्ठ मार्ग पर जानेवाला (= अकनिष्ठगामी) होता है।

भिक्षुओ ! सात बोध्यंगों के भावित और अभ्यास हो जाने पर यही उसके सात अच्छे परिणाम होते हैं।

§ ४. वत्त सुत्त (४४. १. ४)

सात बोध्यङ्ग

एक समय, आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।...

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले, "आवुस ! बोध्यंग सात हैं। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग, धर्म-विचय..., वीर्य..., प्रीति...; प्रश्रब्धि...,समाधि..., उपेक्षा-संबोध्यंग। आवुस ! यही सात संबोध्यंग हैं।

"आवुस ! इनमें मैं जिस-जिस बोध्यंग से पूर्वाह्ण समय विहार करना चाहता हूँ, उस-उस से विहार करता हूँ।...मध्याह्न समय...। संध्या समय...।

"आवुस ! यदि मेरे मनमें स्मृति-संबोध्यंग होता है तो वह अप्रमाण होता है, अच्छी तरह पूरा-पूरा होता है। उसके उपस्थित रहते मैं जानता हूँ कि यह उपस्थित है। जब वह च्युत होता है तब मैं जानता हूँ कि इसके कारण च्युत हो रहा है।

...धर्मविचय-संबोध्यंग...उपेक्षा-संबोध्यंग...।

"आवुस ! जैसे, किसी राजा या राज-मंत्री की पेटी रंग-विरंग के कपड़ों से भरी हो। तब, वह जिस किसी को पूर्वाह्ण समय पहनना चाहे उसे पहन ले; जिस किसी को मध्याह्न समय पहनना चाहे उसे पहन ले, और जिस किसी को संध्या-समय पहनना चाहे उसे पहन ले।

"आवुस ! वैसे ही, मैं जिस-जिस बोध्यंग से पूर्वाह्ण समय विहार करना चाहता हूँ, उस-उस से विहार करता हूँ।...मध्याह्न समय...।...संध्या-समय...।......"

§ ५. भिक्खु सुत्त (४४. १. ५)

बोध्यङ्ग का अर्थ

तब, कोई भिक्षु...भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'बोध्यंग' 'बोध्यंग' कहा करते हैं। भन्ते ! वह बोध्यंग क्यों कहे जाते हैं ?"

भिक्षु ! वह 'बोध' (=ज्ञान) के लिये होते हैं इसलिये बोध्यंग कहे जाते हैं।

§ ६. कुण्डलि सुत्त (४४. १. ६)

विद्या और विमुक्ति की पूर्णता

एक समय, भगवान् साकेत में अञ्जनवन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, कुण्डलिय परिव्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, कुण्डलिय परिव्राजक भगवान् से बोला, "हे गौतम ! मैं सभा-परिषद् में भाग लेने वाला अपने स्थान पर ही रहा करता हूँ। सो मैं सुबह में जलपान करने के बाद एक आराम से दूसरे आराम, और एक उद्यान से दूसरे उद्यान घूमा करता हूँ। वहाँ, मैं कितने श्रमण और ब्राह्मणों को इस बात पर वाद-विवाद करते देखता हूँ—क्या श्रमण गौतम क्षीणाश्रव होकर विहार करता है ?"

कुण्डलिय ! विद्या और विमुक्ति के अच्छे फल से युक्त होकर बुद्ध विहार करते हैं।

हे गौतम ! किन धर्मों के भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूर्ण होती हैं ?

कुण्डलिय ! सात बोध्यंगों के भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूर्ण होती हैं।

हे गौतम ! किन धर्मोंके भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं ?

कुण्डलिय ! चार स्मृति-प्रस्थान के भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं।

हे गौतम ! किन धर्मों के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृतिप्रस्थान पूर्ण होते हैं ?

कुण्डलिय ! तीन सुचरितों के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृतिप्रस्थान पूर्ण होते हैं।

हे गौतम ! किन धर्मों के भावित और अभ्यस्त होने से तीन सुचरित पूर्ण होते हैं।

कुण्डलिय ! इन्द्रिय-संवर (= संयम) के भावित और अभ्यस्त होने से तीन सुचरित पूर्ण होते हैं। कुण्डलिय !···कैसे पूर्ण होते हैं ?

कुण्डलिय ! भिक्षु चक्षु से लुभावने रूप को देखकर लोभ नहीं करता है, प्रसन्न नहीं हो जाता है, राग पैदा नहीं करता है। उसका शरीर स्थित होता है, उसका चित्त अपने भीतर ही भीतर स्थित और विमुक्त होता है।

चक्षु से अप्रिय रूपों को देख खिन्न नहीं हो जाता—उदास, मन मारा हुआ। उसका शरीर स्थित होता है, उसका मन अपने भीतर ही भीतर स्थित और विमुक्त होता है।

श्रोत्र से शब्द सुन। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन से धर्मों को जान···।

कुण्डलिय ! इस प्रकार इन्द्रिय-संवर भावित और अभ्यस्त होने से तीन सुचरित पूर्ण होते हैं।

कुण्डलिय ! किस प्रकार तीन सुचरित भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृतिप्रस्थान पूर्ण होते हैं।

कुण्डलिय ! भिक्षु काय-दुश्चरित्र को छोड़ काय-सुचरित्र का अभ्यास करता है। वाक्-दुश्चरित्र को छोड़···। मनोदुश्चरित्र को छोड़···। कुण्डलिय ! इस प्रकार तीन सुचरित भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृतिप्रस्थान पूर्ण होते हैं।

कुण्डलिय ! किस प्रकार चार स्मृतिप्रस्थान भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं ? कुण्डलिय ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···। वेदना में वेदनानुपश्यी···। चित्त में चित्तानुपश्यी···। धर्मों में धर्मानुपश्यी···। कुण्डलिय ! इस प्रकार चार स्मृतिप्रस्थान भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं।

कुण्डिय ! किस प्रकार सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूर्ण होती हैं ? कुण्डलिय ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग का अभ्यास करता है···उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है। कुण्डलिय ! इस प्रकार सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूर्ण होती हैं।

यह कहने पर, कुण्डलिय परिव्राजक भगवान् से बोला, "भन्ते ! ···मुझे उपासक स्वीकार करें !"

§ ७. कूट सुत्त (४४. १. ७)

निर्वाण की ओर झुकना

भिक्षुओ ! जैसे, कूटागार के सभी धरन कूट की ओर ही झुके होते हैं, वैसे ही सात बोध्यंग का अभ्यास करने वाला निर्वाण की ओर झुका होता है।

···कैसे निर्वाण की ओर झुका होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग का अभ्यास करता है···उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है। भिक्षुओ ! इसी प्रकार, सात बोध्यंग का अभ्यास करने वाला निर्वाण की ओर झुका होता है।

§ ८. उपवान सुत्त (४४. १. ८)

बोध्यङ्गों की सिद्धि का ज्ञान

एक समय, आयुष्मान् उपवान और आयुष्मान् सारिपुत्र कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् उपवान थे वहाँ आये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् उपवान से बोले, "आवुस ! क्या भिक्षु जानता है कि मेरे अपने भीतर ही भीतर (=प्रत्यात्म) अच्छी तरह मनन करने से सात बोध्यंग सिद्ध हो सुख-पूर्वक विहार करने के योग्य हो गये हैं ?"

हाँ, आवुस सारिपुत्र ! भिक्षु जानता है कि···सुख-पूर्वक विहार करने के योग्य हो गये हैं। आवुस ! भिक्षु जानता है कि मेरे अपने भीतर ही भीतर अच्छी तरह मनन करने से स्मृति-संबोध्यंग सिद्ध हो सुख-पूर्वक विहार करने योग्य हो गया है। मेरा चित्त पूरा-पूरा विमुक्त हो गया है, आलस्य समूल नष्ट हो गया है, औद्धत्य-कौकृत्य बिल्कुल दबा दिये गये हैं, मैं पूरा वीर्य कर रहा हूँ, परमार्थ का मनन करता हूँ, और लीन नहीं होता। ···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

§ ९. पठम उप्पन्न सुत्त (४४. १. ९)

बुद्धोत्पत्ति से ही सम्भव

भिक्षुओ ! भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध की उत्पत्ति के बिना सात अनुत्पन्न बोध्यंग जो भावित और अभ्यस्त कर लिये गये हैं, नहीं होते। कौन से सात ?

स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।

भिक्षुओ !···यही सात अनुत्पन्न बोध्यंग···नहीं होते।

§ १०. दुतिय उप्पन्न सुत्त (४४. १. १०)

बुद्धोत्पत्ति से ही सम्भव

भिक्षुओ ! बुद्ध के विनय के बिना सात अनुत्पन्न बोध्यंग···[ऊपर जैसा ही]।

पर्वत वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

ग्लान वर्ग

§ १. पाण सुत्त (४४. २. १)

शील का आधार

भिक्षुओ ! जैसे जो कोई प्राणी चार सामान्य काम करते हैं, समय-समय पर चलना, समय-समय पर खड़ा होना, समय-समय पर बैठना, और समय-समय पर लेटना, सभी पृथ्वी के आधार पर ही करते हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही भिक्षु शील के आधार पर ही प्रतिष्ठित होकर सात बोध्यंगों का अभ्यास करता है।

भिक्षुओ !… कैसे सात बोध्यंगों का अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! विवेक… स्मृति संबोध्यंग… उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है… ।

§ २. पठम सुरियूपम सुत्त (४४. २. २)

सूर्य की उपमा

भिक्षुओ ! आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण है; वैसे ही, कल्याण-मित्र का लाभ सात बोध्यंगों की उत्पत्ति का पूर्व-लक्षण है। भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि कल्याण मित्रवाला भिक्षु सात बोध्यंगों की भावना और अभ्यास करेगा।

भिक्षुओ ! कैसे कल्याण-मित्र वाला भिक्षु सात बोध्यंगों की भावना और अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! विवेक… स्मृति-संबोध्यंग… उपेक्षा-संबोध्यंग… ।

§ ३. दुतिय सुरियूपम सुत्त (४४. २. ३)

सूर्य की उपमा

…वैसे ही अच्छी तरह मनन करना सात बोध्यंगों की उत्पत्ति का पूर्व-लक्षण है। भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अच्छी तरह मनन करनेवाला भिक्षु… [ऊपर जैसा ही]।

§ ४. पठम गिलान सुत्त (४४. २. ४)

महाकाश्यप का बीमार पड़ना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् महा-काश्यप पिप्फली गुहा में बड़े बीमार पड़े थे।

तब, संध्या समय ध्यान से उठ, भगवान् जहाँ आयुष्मान् महा-काश्यप थे वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठकर, भगवान् आयुष्मान् महा-काश्यप से बोले, "काश्यप ! कहो, अच्छे तो हो, बीमारी घट तो रही है न ?"

नहीं भन्ते ! मेरी तबियत अच्छी नहीं है, बीमारी घट नहीं रही है, बल्कि बढ़ती ही मालूम होती है।

काश्यप ! मैंने यह सात बोध्यंग बताये हैं जिनके भावित और अभ्यास होने से परम-ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग। काश्यप ! मैंने यही सात बोध्यंग बताये हैं, जिनके भावित और अभ्यस्त होने से परमज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है।···

भगवान् यह बोले। संतुष्ट हो आयुष्मान् महा-काश्यप ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन किया। आयुष्मान् महा-काश्यप उस बीमारी से उठ खड़े हुये। आयुष्मान् महा-काश्यप की बीमारी तुरन्त दूर हो गई।

§ ५. दुतिय गिलान सुत्त (४४. २. ५)

महामोग्गलान का बीमार पड़ना

···राजगृह···वेलुवन···।

उस समय, आयुष्मान् महा-मोग्गलान गृद्धकूट-पर्वत पर बड़े बीमार पड़े थे।

···[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ६. ततिय गिलान सुत्त (४४. २. ६)

भगवान् का बीमार पड़ना

···राजगृह···वेलुवन···।

उस समय, भगवान् बड़े बीमार पड़े थे।

तब, आयुष्मान् महाचुन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान् महाचुन्द से भगवान् बोले, "चुन्द ! बोध्यंग के विषय में कहो।"

भन्ते ! भगवान् ने सात बोध्यंग बताये हैं जिनके भावित और अभ्यस्त होने से परम-ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है।···

आयुष्मान् महा-चुन्द यह बोले। बुद्ध प्रसन्न हुये। भगवान् उस बीमारी से उठ खड़े हुये। भगवान् की वह बीमारी तुरत दूर हो गई।

§ ७. पारगामी सुत्त (४४. २. ७)

पार करना

भिक्षुओ ! इन सात बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से अपार (=संसार) को भी पार कर जाता है। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।

भगवान् यह बोले···।

मनुष्यों में ऐसे बिरले ही लोग हैं···।

[देखो गाथा "मार्ग-संयुत्त" ४३. ४. १. ४]

§ ८. विरुद्ध सुत्त (४४. २. ८)

मार्ग का रुकना

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के सात बोध्यंग रुके उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी मार्ग रुका। भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के सात बोध्यंग शुरू हुये उनका सम्यक्-दुःख-क्षय गामी मार्ग शुरू हुआ।

कौन सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के यही सात बोध्यंग···।

§ ९. अरिय सुत्त (४४. २. ९)

मोक्ष-मार्ग से जाना

भिक्षुओ ! सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु सम्यक्-दुःख-क्षय के लिये आर्य नैर्यानिक मार्ग (=मोक्ष-मार्ग) से जाता है। कौन से सात ? स्मृति-सम्बोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।···

§ १०. निब्बिदा सुत्त (४४. २. १०)

नर्वाण की प्राप्ति

भिक्षुओ ! सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु परम निर्वेद, विराग, निरोध, शान्ति, ज्ञान, संबोध और निर्वाण का लाभ करता है।

कौन से सात ?···

ग्लान वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

उदायि वर्ग

§ १. बोधन सुत्त (४४. ३. १)

बोध्यङ्ग क्यों कहा जाता है ?

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'बोध्यंग, बोध्यंग' कहा करते हैं। भन्ते ! यह बोध्यंग क्यों कहे जाते हैं ?"

भिक्षु ! इनसे 'बोध' (=ज्ञान) होता है, इसलिये यह बोध्यंग कहे जाते हैं।

भिक्षु ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना और अभ्यास करता है।

भिक्षु ! इनसे 'बोध' होता है, इसलिये यह बोध्यंग कहे जाते हैं।

§ २. देसना सुत्त (४४. ३. २)

सात बोध्यंग

भिक्षुओ ! मैं सात बोध्यंग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! सात बोध्यंग कौन हैं ? स्मृति···उपेक्षा-संबोध्यंग।

भिक्षुओ ! यही सात बोध्यंग हैं ?

§ ३. ठान सुत्त (४४. ३. ३)

स्थान पाने से ही वृद्धि

भिक्षुओ ! काम-राग को स्थान देनेवाले धर्मों का मनन करने से अनुत्पन्न काम-राग उत्पन्न होता है और उत्पन्न काम-राग और भी बढ़ता है।

हिंसा-भाव (=व्यापाद)···। आलस्य···। औद्धत्य-कौकृत्य···। विचिकित्सा को स्थान देनेवाले धर्मों को मनन करने से···।

भिक्षुओ ! स्मृति-संबोध्यंग को स्थान देनेवाले धर्मों का मनन करने से अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग और भी बढ़ता है।···।

भिक्षुओ ! उपेक्षा-संबोध्यंग को स्थान देनेवाले धर्मों का मनन करने से अनुत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग और भी बढ़ता है।

§ ४. अयोनिसो सुत्त (४४. ३. ४)

ठीक से मनन न करना

भिक्षुओ ! बुरी तरह मनन करने से अनुत्पन्न काम-छन्द उत्पन्न होता है, और उत्पन्न काम-छन्द और भी बढ़ता है।

···व्यापाद···।···आलस्य···।···औद्धत्य-कौकृत्य···।···विचिकित्सा···।

अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग नहीं उत्पन्न होता है, और उत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग भी निरुद्ध हो जाता है।...। अनुत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग भी निरुद्ध हो जाता है।

भिक्षुओ ! अच्छी तरह मनन करने से अनुत्पन्न काम-छन्द नहीं उत्पन्न होता है, और उत्पन्न काम-छन्द प्रहीण हो जाता है।

...व्यापाद...।...आलस्य...।...औद्धत्य-कौकृत्य...।...विचिकित्सा...।

अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग भावित तथा पूर्ण होता है।...। अनुत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग भावित तथा पूर्ण होता है।

§ ५. अपरिहानि सुत्त (४४. ३. ५)

क्षय न होनेवाले धर्म

भिक्षुओ ! सात क्षय न होनेवाले (= अपरिहानीय) धर्मों का उपदेश करूँगा। उसे सुनो...।

भिक्षुओ ! वह कौन क्षय न होनेवाले सात धर्म हैं ? यही सात बोध्यंग। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग...उपेक्षा-संबोध्यंग।

भिक्षुओ ! यही क्षय न होनेवाले सात धर्म हैं।

§ ६. खय सुत्त (४४. ३. ६)

तृष्णा-क्षय के मार्ग का अभ्यास

भिक्षुओ ! तृष्णा-क्षय का जो मार्ग है उसका अभ्यास करो।

भिक्षुओ ! तृष्णा-क्षय का कौन-सा मार्ग है ? जो यह सात बोध्यंग। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग...उपेक्षा-संबोध्यंग।

यह कहने पर आयुष्मान् उदायी भगवान् से बोले, "भन्ते ! सात संबोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से कैसे तृष्णा का क्षय होता है ?

उदायी ! भिक्षु, विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जाने वाले विपुल, महान्, अप्रमाण और व्यापाद-रहित स्मृति-संबोध्यंग का अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है। इस प्रकार, उसकी तृष्णा प्रहीण होती है। तृष्णा के प्रहीण होने से कर्म प्रहीण होता है। कर्म के प्रहीण होने से दुःख प्रहीण होता है।

...उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है...।

उदायी ! इस तरह, तृष्णा का क्षय होने से कर्म का क्षय होता है। कर्म का क्षय होने से दुःख का क्षय होता है।

§ ७. निरोध सुत्त (४४. ३. ७)

तृष्णा-निरोध के मार्ग का अभ्यास

भिक्षुओ ! तृष्णा-निरोध का जो मार्ग है उसका अभ्यास करो।...["तृष्णा-क्षय" के स्थान पर "तृष्णा-निरोध" करके शेष ऊपर वाले सूत्र जैसा ही]

§ ८. निब्बेध सुत्त (४४. ३. ८)

तृष्णा को काटने वाला मार्ग

भिक्षुओ ! (तृष्णा को) काट गिरा देने वाले मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो...।

भिक्षुओ ! काट गिरा देने वाला मार्ग कौन है ? यही सात बोध्यंग...।

यह कहने पर, आयुष्मान् उदायी भगवान् से बोले, "भन्ते ! सात संबोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से कैसे तृष्णा कटती है ?"

उदायी ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग का अभ्यास करता है···। स्मृति-संबोध्यंग भावित और अभ्यस्त चित्त से पहले कभी नहीं काटे और कुचल दिये गये लोभ को काट और कुचल देता है···। द्वेष को काट और कुचल देता है।···मोह को काट और कुचल देता है।···

उदायी ! भिक्षु विवेक···उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है···। उपेक्षा-संबोध्यंग के भावित और अभ्यस्त चित्त से···लोभ···, द्वेष···, मोह को काट और कुचल देता है।

उदायी ! इस तरह, सात बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से तृष्णा कट जाती है।

§ ९. एकधम्म सुत्त (४४. ३. ९)

बन्धन में डालनेवाले धर्म

भिक्षुओ ! सात बोध्यंग को छोड़, मैं दूसरे किसी एक धर्म को भी नहीं देखता हूँ जिसकी भावना और अभ्यास से बन्धन में डालनेवाले (=संयोजनीय) धर्म प्रहीण हो जायँ। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।

भिक्षुओ ! कैसे सात बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से बन्धन में डालनेवाले धर्म प्रहीण होते हैं ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, सात बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से बन्धन में डालनेवाले धर्म प्रहीण होते हैं।

भिक्षुओ ! बन्धन में डालनेवाले धर्म कौन हैं ? भिक्षुओ ! चक्षु बन्धन में डालनेवाला धर्म है। यहीं बन्धन में डाल देनेवाली आसक्ति उत्पन्न होती है। श्रोत्र···। घ्राण···। जिह्वा···। काया···। मन बन्धन में डालनेवाला धर्म है। यहीं बन्धन में डाल देनेवाली आसक्ति उत्पन्न होती है। भिक्षुओ ! इन्हीं को बन्धन में डालनेवाले धर्म कहते हैं।

§ १०. उदायि सुत्त (४४. ३. १०)

बोध्यङ्ग-भावना से परमार्थ की प्राप्ति

एक समय, भगवान् सुम्भ (जनपद) में सेतक नाम के सुम्भों के कस्बे में विहार करते थे।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् उदायी भगवान् से बोले, "भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है !! भन्ते ! भगवान् के प्रति मेरा प्रेम, गौरव, लज्जा और भय अत्यन्त अधिक है। भन्ते ! जब मैं गृहस्थ था तब मुझे धर्म या संघ के प्रति बहुत सम्मान नहीं था। भन्ते ! भगवान् के प्रति प्रेम···होने से ही मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया। सो···भगवान् ने मुझे धर्म का उपदेश दिया—यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का निरोध है, यह रूप का निरोध-गामी मार्ग है; वेदना···; संज्ञा···; संस्कार···; विज्ञान···।

भन्ते ! सो मैंने एकान्त स्थान में बैठ, इन पाँच उपादान-स्कन्धों का उलट-पुलट कर चिन्तन करते हुये जान लिया कि 'यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध-गामी मार्ग है।

भन्ते ! मैंने धर्म को जान लिया, मार्ग मिल गया। इसी भावना और अभ्यास से, विहार करते हुये मुझे परमार्थ मिल जायगा। जाति क्षीण हुई,···मैं जान लूँगा।

भन्ते ! मैंने स्मृति-संबोध्यंग को पा लिया है। इसकी भावना और अभ्यास से विहार करते हुये मुझे परमार्थ मिल जायगा। जाति क्षीण हुई···, मैं जान लूँगा। ··· उपेक्षा-संबोध्यंग···।

उदायी ! ठीक है, ठीक है !!···इसकी भावना और अभ्यास से विहार करते हुये तुम्हें परमार्थ मिल जायगा। जाति क्षीण हुई···तुम जान लोगे।

उदायि वर्ग समाप्त

चौथा भाग

नीवरण वर्ग

§ १. पठम कुसल सुत्त (४४. ४. १)

अप्रमाद ही आधार है

भिक्षुओ ! जितने कुशल-पक्ष के (= पुण्य-पक्ष के) धर्म हैं, सभी का मूल आधार अप्रमाद ही है। अप्रमाद उन धर्मों में अग्र समझा जाता है

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु सात बोध्यंगों का अभ्यास करेगा। भिक्षुओ ! कैसे अप्रमत्त भिक्षु सात बोध्यंगों का अभ्यास करता है ?

भिक्षुओ ! विवेक··स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग का अभ्यास करता है···।

भिक्षुओ ! इसी तरह, अप्रमत्त भिक्षु सात बोध्यंगों का अभ्यास करता है।

§ २. दुतिय कुसल सुत्त (४४. ४. २)

अच्छी तरह मनन करना

भिक्षुओ ! जितने कुशल-पक्ष के धर्म हैं सभी का मूल आधार 'अच्छी तरह मनन करना' ही है। 'अच्छी तरह मनन करना' उन धर्मों में अग्र समझा जाता है।

···[ऊपर जैसा ही]

§ ३. पठम किलेस सुत्त (४४. ४. ३)

सोना के समान चित्त के पाँच मल

भिक्षुओ ! सोना के पाँच मल होते हैं, जिनसे मैला हो सोना न मृदु होता है, न सुन्दर होता है न चमक वाला होता है, और न व्यवहार के योग्य होता है। कौन से पाँच ?

भिक्षुओ ! काला लोहा (=अयस) सोना का मल होता है, जिससे मैला हो सोना न मृदु होता है···न व्यवहार के योग्य होता है।

लोहा···। त्रिपु (=जस्ता)···। सीसा···। चाँदी···।

भिक्षुओ ! सोना के यही पाँच मल होते हैं···।

भिक्षुओ ! वैसे ही, चित्त के पाँच मल (=उपक्लेश) होते हैं, जिनसे मैला हो चित्त न मृदु होता है, न सुन्दर होता है, न चमक वाला होता है, और न आश्रवों के क्षय करने के योग्य होता है। कौन से पाँच ?

भिक्षुओ ! काम-छन्द चित्त का मल है, जिससे मैला हो, चित्त···आश्रवों को क्षय करने योग्य नहीं होता है। व्यापाद···। आलस्य···। औद्धत्य-कौकृत्य···। विचिकित्सा···।

भिक्षुओ ! यही चित्त के पाँच मल हैं···।

§ ४. दुतिय किलेस सुत्त (४४. ४. ४)

बोध्यङ्ग-भावना से विमुक्ति-फल

भिक्षुओ ! यह सात आवरण, नीवरण और चित्त के उपक्लेश से रहित बोध्यंग की भावना और अभ्यास करने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग··· उपेक्षा-संबोध्यंग।

भिक्षुओ ! यही सात···बोध्यंग की भावना और अभ्यास करने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है।

§ ५. पठम योनिसो सुत्त (४४. ४. ५)

अच्छी तरह मनन न करना

भिक्षुओ ! अच्छी तरह मनन नहीं करने से अनुत्पन्न काम-छन्द उत्पन्न होता है, और उत्पन्न काम-छन्द और भी बढ़ता है।

अनुत्पन्न व्यापाद···। आलस्य···। औद्धत्य-कौकृत्य···। विचिकित्सा···।

§ ६. दुतिय योनिसो सुत्त (४४. ४. ६)

अच्छी तरह मनन करना

भिक्षुओ ! अच्छी तरह मनन करने से अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग उत्पन्न होता है, और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग वृद्धि तथा पूर्णता को प्राप्त होता है।···अनुत्पन्न उपेक्षा-संबोध्यंग···।

§ ७. वुद्धि सुत्त (४४. ४. ७)

बोध्यङ्ग-भावना से वृद्धि

भिक्षुओ ! सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करने से वृद्धि ही होती है, हानि नहीं। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···।

§ ८. नीवरण सुत्त (४४. ४. ८)

पाँच नीवरण

भिक्षुओ ! यह पाँच चित्त के उपक्लेश (=मल) (ज्ञान के) आवरण और प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाले हैं। कौन से पाँच ?

काम-छन्द··। व्यापाद··। आलस्य···। औद्धत्य-कौकृत्य···। विचिकित्सा···।

भिक्षुओ ! यह सात बोध्यंग चित्त के उपक्लेश नहीं हैं, न वे ज्ञान के आवरण और न प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाले हैं। उनके भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।···

भिक्षुओ ! जिस समय, आर्य-श्रावक कान दे, ध्यान-पूर्वक, समझ-समझ कर धर्म सुनता है, उस समय उसे पाँच नीवरण नहीं होते हैं, सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं।

उस समय कौन से पाँच नीवरण नहीं होते हैं ? काम-छन्द···विचिकित्सा।

उस समय कौन से सात बोध्यंग पूर्ण होते हैं ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग।···

§ ९. रुक्ख सुत्त (४४. ४. ९)

ज्ञान के पाँच आवरण

भिक्षुओ ! ऐसे अत्यन्त फैले हुये, ऊँचे बड़े बड़े वृक्ष हैं जिनके बीज बहुत छोटे होते हैं, जिनसे फूट-फूट कर सोई नीचे की ओर लटकी होती हैं। ऐसे वृक्ष कौन हैं ? जो पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर,

कच्छक, कपित्थ (= कइँति)। भिक्षुओ ! यह अत्यन्त फैले हुये, ऊँचे बड़े बड़े वृक्ष हैं जिनके बीज बहुत छोटे होते हैं, जिनके फूट-फूट कर सोई नीचे की ओर लटकी होती हैं।

भिक्षुओ ! कोई कुलपुत्र जैसे कामों को छोड़ घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है, वैसे ही या उनसे भी अधिक पापमय कामों के पीछे पड़ा रहता है।

भिक्षुओ ! यह चित्त से फूटनेवाले, प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाले पाँच ज्ञान के आवरण हैं। कौन से पाँच ? काम-छन्द···विचिकित्सा···।···

भिक्षुओ ! यह सात बोध्यंग चित्त से नहीं फूटने वाले हैं, और वे ज्ञान के आवरण भी नहीं होते। उनके भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

§ १०. नीवरण सुत्त (४४. ४. १०)

पाँच नीवरण

भिक्षुओ ! यह पाँच नीवरण हैं, जो अन्धा बना देते हैं, चक्षु-रहित बना देते हैं, ज्ञान को हर लेते हैं, प्रज्ञा को उत्पन्न होने नहीं देते हैं, परेशानी में डाल देते हैं, और निर्वाण की ओर से दूर हटा देते हैं। कौन से पाँच ? काम-छन्द···विचिकित्सा···।

भिक्षुओ ! यह सात बोध्यंग चक्षु देने वाले, ज्ञान देनेवाले, प्रज्ञा की वृद्धि करनेवाले, परेशानी से बचाने वाले, और निर्वाण की ओर ले जाने वाले हैं। कौन से सात ? स्मृति-संबोध्यंग···उपेक्षा-संबोध्यंग···।

नीवरण वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

चक्रवर्ती वर्ग

§ १. विधा सुत्त (४४. ५. १)

बोध्यङ्ग-भावना से अभिमान का त्याग

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने तीन प्रकार के अभिमान (=विधा)* को छोड़ा है, सभी सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करके ही। भविष्य में…। इस समय जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने तीन प्रकार के अभिमान को छोड़ा है, सभी सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करके ही।

किन सात बोध्यंग की ?…उपेक्षा-संबोध्यंग।…

§ २. चक्कवत्ती सुत्त (४४. ५. २)

चक्रवर्ती के सात रत्न

भिक्षुओ ! चक्रवर्ती राजा के होने से सात रत्न प्रकट होते हैं। कौन से सात ? चक्र-रत्न प्रकट होता है, हस्ति-रत्न…, अश्व-रत्न…, मणि-रत्न…, स्त्री-रत्न…, गृहपति-रत्न…, परिनायक-रत्न प्रकट होता है।

भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् के होने से सात बोध्यंग-रत्न प्रगट होते हैं। कौन से सात ?…उपेक्षा-संबोध्यंग-रत्न…।

§ ३. मार सुत्त (४४. ५. ३)

मार-सेना को भगाने का मार्ग

भिक्षुओ ! मार की सेना को तितर-बितर कर देने वाले मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

भिक्षुओ ! मार की सेना को तितर-बितर कर देने वाला कौन सा मार्ग है ? जो यह सात बोध्यंग…।

§ ४. दुप्पञ्ञ सुत्त (४४. ५. ४)

बेवकूफ क्यों कहा जाता है ?

तब, कोई भिक्षु…भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'बेवकूफ मुँहदब, बेवकूफ मुँहदब' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई क्यों बेवकूफ (=दुष्प्रज्ञ) मुँहदब (=एड़मूक=भेंड़ जैसा गूँगा) कहा जाता है ?"

भिक्षु ! सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास न करने से कोई बेवकूफ मुँहदब कहा जाता है। किन सात बोध्यंग की…उपेक्षा-संबोध्यंग…।

---

* घमण्ड करने के अर्थ में मान को ही 'विधा' करते हैं—अट्ठकथा।

§ ५. पञ्ञवा सुत्त (४४. ५. ५)

प्रज्ञावान् क्यों कहा जाता है ?

…भन्ते ! लोग 'प्रज्ञावान् निर्भीक, प्रज्ञावान् निर्भीक' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई कैसे प्रज्ञावान् निर्भीक कहा जाता है ?

भिक्षु ! सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करने से कोई प्रज्ञावान् निर्भीक होता है। किन सात बोध्यंग की ?…उपेक्षा-संबोध्यंग…।

§ ६. दलिद्द सुत्त (४४. ५. ६)

दरिद्र

…भिक्षु ! सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास न करने से ही कोई दरिद्र कहा जाता है…।

§ ७. अदलिद्द सुत्त (४४. ५. ७)

धनी

…भिक्षु ! सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करने से ही कोई अदरिद्र कहा जाता है…।

§ ८. आदिच्च सुत्त (४४. ५. ८)

पूर्व-लक्षण

भिक्षुओ ! जैसे आकाश में ललाई का छा जाना सूर्य के उदय होने का पूर्व-लक्षण है, वैसे ही कल्याण-मित्र का मिलना सात बोध्यंग की उत्पत्ति का पूर्व-लक्षण है।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि कल्याण-मित्र वाला भिक्षु सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करेगा।

भिक्षुओ !…कैसे… ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक…स्मृति-संबोध्यंग…उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना और अभ्यास करता है…।

§ ९. पठम अङ्ग सुत्त (४४. ५. ९)

अच्छी तरह मनन करना

भिक्षुओ ! अच्छी तरह मनन करना अपना एक आध्यात्मिक अंग बना लेने को छोड़, मैं किसी दूसरी चीज को नहीं देखता हूँ जो सात बोध्यंग उत्पन्न कर सके।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि अच्छी तरह मनन करने वाला भिक्षु सात बोध्यंग की भावना और अभ्यास करेगा।

…भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक…स्मृति-संबोध्यंग…उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना और अभ्यास करता है…।

§ १०. दुतिय अङ्ग सुत्त (४४. ५. १०)

कल्याण-मित्र

भिक्षुओ ! कल्याण-मित्र को अपना एक बाहर का अंग बना लेने को छोड़, मैं किसी दूसरी चीज को नहीं देखता हूँ जो सात बोध्यंग उत्पन्न कर सके।

भिक्षुओ ! ऐसी आशा की जाती है कि कल्याण-मित्रवाला भिक्षु…।

चक्रवर्ती वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

बोध्यङ्ग षष्टकम्

§ १. आहार सुत्त (४४. ६. १)

नीवरणों का आहार

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! पाँच नीवरणों तथा सात बोध्यंगों के आहार और अनाहार का उपदेश करूँगा। उसे सुनो…।

(क)

नीवरणों का आहार

भिक्षुओ ! अनुत्पन्न काम-छन्द की उत्पत्ति और उत्पन्न काम-छन्द की वृद्धि के लिए क्या आहार है ? भिक्षुओ ! सौन्दर्य के प्रति होनेवाली आसक्ति (=शुभनिमित्त) का बुरी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न काम-छन्द की उत्पत्ति और उत्पन्न काम-छन्द की वृद्धि के लिए आहार है।

…भिक्षुओ ! वैर-भाव (=व्यापाद) का बुरी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न वैर-भाव की उत्पत्ति और उत्पन्न वैर-भाव की वृद्धि के लिए आहार है।

…भिक्षुओ ! धर्म का अभ्यास करने में मन का न लगना (=अरति), बदन का ऐंठना और जँभाई लेना, भोजन के बाद आलस्य का होना (=भत्तसम्मद), और चित्त का न लगना—इनका बुरी तरह मनन करना अनुत्पन्न आलस्य की (=थीनमिद्ध) उत्पत्ति…के लिए आहार है।

…भिक्षुओ ! चित्त की चंचलता का बुरी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न औद्धत्य-कौकृत्य की उत्पत्ति…के लिए आहार है।

…भिक्षुओ ! विचिकित्सा को (=शंका) स्थान देने वाले जो धर्म हैं उनका बुरी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न विचिकित्सा की उत्पत्ति और उत्पन्न विचिकित्सा की वृद्धि के लिए आहार है।

(ख)

बोध्यङ्गों का आहार

भिक्षुओ ! अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की उत्पत्ति और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की भावना और पूर्णता के लिए क्या आहार है ?…

[देखो—"बोध्यंग-संयुत्त ४४. १. २ (ख)"]

(ग)

नीवरणों का अनाहार

भिक्षुओ ! अनुत्पन्न काम-छन्द की उत्पत्ति और उत्पन्न काम-छन्द की वृद्धि का अनाहार क्या है ? भिक्षुओ ! सौन्दर्य की बुराइयों का अच्छी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न काम-छन्द की उत्पत्ति और उत्पन्न काम-छन्द की वृद्धि का अनाहार है।

…भिक्षुओ ! मैत्री से चित्त की विमुक्ति का अच्छी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न वैर-भाव की उत्पत्ति और उत्पन्न वैर-भाव की वृद्धि का अनाहार है।

…भिक्षुओ ! आरम्भ-धातु, निष्क्रम-धातु और पराक्रम-धातु का अच्छी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न आलस्य की उत्पत्ति…का अनाहार है।

…भिक्षुओ ! चित्त की शान्ति का अच्छी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न औद्धत्य-कौकृत्य की उत्पत्ति…का अनाहार है।

…भिक्षुओ ! कुशल-अकुशल, सदोष-निर्दोष, अच्छे-बुरे, तथा कृष्ण-शुक्ल धर्मों का अच्छी तरह मनन करना—यही अनुत्पन्न विचिकित्सा की उत्पत्ति…का अनाहार है।

(घ)

बोध्यंगों का अनाहार

भिक्षुओ ! अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की उत्पत्ति और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की भावना और पूर्णता का क्या अनाहार है ? भिक्षुओ ! स्मृति-संबोध्यंग को स्थान देनेवाले धर्मों का मनन न करना—यही अनुत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की उत्पत्ति और उत्पन्न स्मृति-संबोध्यंग की भावना और पूर्णता का अनाहार है।…

[बोध्यंगों के आहार में जो "अच्छी तरह मनन करना" है उसके स्थान पर "मनन न करना" करके शेष छः बोध्यंगों का विस्तार समझ लेना चाहिए]

§ २. परियाय सुत्त (४४. ६. २)

दुगुना होना

तब, कुछ भिक्षु पहन और पात्र-चीवर ले पूर्वाह्न समय श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए पैठे।

तब, उन भिक्षुओं को यह हुआ—अभी श्रावस्ती में भिक्षाटन करने के लिए सबेरा है, इसलिए तब तक जहाँ दूसरे मत के साधुओं का आराम है वहाँ चलें।

तब, वे भिक्षु जहाँ दूसरे मत के साधुओं का आराम था वहाँ गये और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से दूसरे मत के साधु बोले, "आवुस ! श्रमण गौतम अपने श्रावकों को ऐसा उपदेश करते हैं—भिक्षुओ ! सुनो तुम लोग चित्त को मैला करने वाले, तथा प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले पाँच नीवरणों को छोड़ सात बोध्यंग की यथार्थतः भावना करो। आवुस ! और, हम भी अपने श्रावकों को ऐसा ही उपदेश करते हैं,…सात बोध्यंग की यथार्थतः भावना करो।

"आवुस ! तो, धर्मोपदेश करने में श्रमण गौतम और हम लोगों में क्या भेद हुआ ?"

तब, वे भिक्षु उन परिव्राजकों के कहने का न तो अभिनन्दन और न विरोध कर, आसन से उठ चले गये—भगवान् के पास चल कर इसका अर्थ समझेंगे।

तब, वे भिक्षु भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! हम लोग पूर्वाह्न समय पहन और पात्र चीवर ले···।

"भन्ते ! तब, हम उन परिव्राजकों के कहने का न तो अभिनन्दन और न विरोध कर, आसन से उठ चले आये—भगवान् के पास इसका अर्थ समझेंगे।"

भिक्षुओ ! यदि दूसरे मत के साधु ऐसा पूछें, तो उन्हें यह उत्तर देना चाहिये—आवुस ! एक दृष्टि-कोण है जिससे पाँच नीवरण दस, और सात बोध्यंग चौदह होते हैं। भिक्षुओ ! यह कहने पर दूसरे मत के साधु इसे समझा नहीं सकेंगे, बड़ी गड़बड़ी में पड़ जायेंगे।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि यह विषय से बाहर का प्रश्न है। भिक्षुओ ! देवता, मार और ब्रह्मा सहित सारे लोक में, तथा श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य वाली इस प्रजा में बुद्ध, बुद्ध के श्रावक, या इनसे सुने हुये मनुष्य को छोड़, मैं किसी दूसरे को ऐसा नहीं देखता हूँ जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके।

(क)

पाँच दस होते हैं

भिक्षुओ ! यह कौन-सा दृष्टिकोण है जिससे पाँच नीवरण दस होते हैं ?

भिक्षुओ ! जो आध्यात्म काम-छन्द है वह भी नीवरण है, और जो बाह्य काम-छन्द है वह भी नीवरण है। दोनों काम-छन्द नीवरण ही कहे जाते हैं। इस दृष्टि-कोण से एक दो हो गये।

भिक्षुओ !···आध्यात्म व्यापाद···बाह्य व्यापाद···।

भिक्षुओ ! जो स्त्यान (=शारीरिक आलस्य) है वह भी नीवरण है, और जो मृद्ध (=मानसिक आलस्य) है वह भी नीवरण है।···

भिक्षुओ ! जो औद्धत्य है वह भी नीवरण है, और जो कौकृत्य है वह भी नीवरण है। दोनों औद्धत्य-कौकृत्य नीवरण कहे जाते हैं। इस दृष्टि-कोण से एक दो हो गये।

भिक्षुओ ! जो आध्यात्म धर्मों में विचिकित्सा है वह भी नीवरण है, और जो बाह्य धर्मों में विचिकित्सा है वह भी नीवरण है। दोनों विचिकित्सा-नीवरण ही कहे जाते हैं।···

भिक्षुओ ! इस दृष्टि-कोण से पाँच नीवरण दस होते हैं।

(ख)

सात चौदह होते हैं

भिक्षुओ ! वह कौन सा दृष्टि-कोण है जिससे सात बोध्यंग चौदह होते हैं।

भिक्षुओ ! जो आध्यात्म धर्मों में स्मृति है वह भी स्मृति-संबोध्यंग है, और जो बाह्य धर्मों में स्मृति है वह भी स्मृति-संबोध्यंग है। दोनों स्मृति-संबोध्यंग ही कहे जाते हैं। इस दृष्टि-कोण से एक दो हो गये।

भिक्षुओ ! जो आध्यात्म धर्मों में प्रज्ञा से विचार करता है=चिन्तन करता है वह भी धर्म-विचय-बोध्यंग है···

भिक्षुओ ! जो शारीरिक वीर्य है वह भी वीर्य-संबोध्यंग है, और जो मानसिक वीर्य है वह भी वीर्य-संबोध्यंग है। दोनों वीर्य-संबोध्यंग ही कहे जाते हैं।···

भिक्षुओ ! जो सवितर्क-सविचार प्रीति है वह भी प्रीति-संबोध्यंग है, और जो अवितर्क-अविचार प्रीति-संबोध्यंग है। दोनों प्रीति-संबोध्यंग ही कहे जाते हैं।···

भिक्षुओ ! जो काया की प्रश्रब्धि है वह भी प्रश्रब्धि-संबोध्यंग हैं, और जो चित्त की प्रश्रब्धि है वह भी प्रश्रब्धि-संबोध्यंग है।···

भिक्षुओ ! जो सवितर्क-सविचार समाधि है वह भी समाधि-संबोध्यंग है, और जो अवितर्क-अविचार समाधि है वह भी समाधि-संबोध्यंग है।···

भिक्षुओ ! जो आध्यात्म-धर्मों में उपेक्षा है वह भी उपेक्षा-संबोध्यंग है, और जो बाह्य-धर्मों में उपेक्षा है वह भी उपेक्षा-संबोध्यंग है। दोनों उपेक्षा-संबोध्यंग ही कहे जाते हैं। इस दृष्टि-कोण से भी एक दो हो गये।

भिक्षुओ ! इस दृष्टि-कोण से सात नीवरण चौदह होते हैं।

§ ३. अग्गि सुत्त (४४. ६. ३)

समय

···[परियाय सूत्र के समान ही]

भिक्षुओ ! यदि दूसरे मत के साधु ऐसा पूछें तो उन्हें यह पूछना चाहिए—आवुस ! जिस समय चित्त लीन होता है उस समय किन बोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये, और किन बोध्यंग की भावना करनी चाहिये। आवुस ! जिस समय चित्त उद्धत (=चंचल) होता है उस समय किन बोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये, और किन बोध्यंग की भावना करनी चाहिये। भिक्षुओ ! यह पूछने पर दूसरे मत के साधु इसे समझा नहीं सकेंगे, बड़ी गड़बड़ी में पड़ जायेंगे।

सो क्यों ?···मैं किसी दूसरे को ऐसा नहीं देखता हूँ जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके।

(क)

समय नहीं है

भिक्षुओ ! जिस समय चित्त लीन होता है उस समय प्रश्रब्धि-संबोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये, समाधि-संबोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये, उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि जो चित्त लीन होता है वह इन धर्मों से उठाया नहीं जा सकता।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष कुछ आग जलाना चाहता हो। वह भीगे तृण डाले, भीगे गोबर डाले, भीगी लकड़ी डाले, पानी छींट दे, धूल बिखेर दे, तो क्या वह पुरुष आग जला सकेगा ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! वैसे ही, जिस समय चित्त लीन होता है उस समय प्रश्रब्धि-संबोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिये···। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि जो चित्त लीन होता है वह इन धर्मों से उठाया नहीं जा सकता।

(ख)

समय है

भिक्षुओ ! जिस समय चित्त लीन होता है उस समय धर्म-विचय-संबोध्यंग की···, वीर्य-

संबोध्यंग की···, और प्रीति-संबोध्यंग की भावना करनी चाहिये। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि जो चित्त लीन है वह इन धर्मों से अच्छी तरह उठाया जा सकता है।

भिक्षुओ! जैसे, कोई पुरुष कुछ आग जलाना चाहता हो। वह सूखे तृण डाले, सूखे गोबर डाले, सूखी लकड़ियाँ डाले, मुँह से फूँक लगावे, धूल नहीं बिखेरे, तो क्या वह पुरुष आग जला सकेगा?

हाँ भन्ते!

भिक्षुओ! वैसे ही, जिस समय चित्त लीन होता है उस समय धर्म-विचय-संबोध्यंग···की भावना करनी चाहिये। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि जो चित्त लीन है वह इन धर्मों से अच्छी तरह उठाया जा सकता है।

(ग)

समय नहीं है

भिक्षुओ! जिस समय चित्त उद्धत होता है उस समय धर्मविचय-सम्बोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिए, वीर्य-सम्बोध्यंग···, प्रीति-सम्बोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिए। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि जो चित्त उद्धत है वह इन धर्मों से अच्छी तरह शान्त नहीं किया जा सकता है।

भिक्षुओ! जैसे, कोई पुरुष आग की एक जलती ढेर को बुझाना चाहे। वह उसमें सूखे तृण डाले, सूखे गोबर डाले, सूखी लकड़ियाँ डाले, मुँह से फूँक लगावे, धूल नहीं बिखेरे, तो क्या वह पुरुष आग बुझा सकेगा?

नहीं भन्ते!

भिक्षुओ! वैसे ही, जिस समय चित्त उद्धत होता है उस समय धर्मविचय-संबोध्यंग की भावना नहीं करनी चाहिए···। भिक्षुओ! क्योंकि, जो चित्त उद्धत है वह इन धर्मों से अच्छी तरह शान्त नहीं किया जा सकता है।

(घ)

समय है

भिक्षुओ! जिस समय चित्त उद्धत होता है उस समय प्रश्रब्धि-संबोध्यंग···, समाधि-संबोध्यंग···, उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना करनी चाहिये। सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि जो चित्त उद्धत है वह इन धर्मों से अच्छी तरह शान्त किया जा सकता है।

भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष आग की एक जलती ढेर को बुझाना चाहे। वह उसमें भीगे तृण डाले, भीगे गोबर···, भीगी लकड़ियाँ डाले, पानी छींटे, और धूल बिखेर दे, तो क्या वह पुरुष आग बुझा सकेगा?

भिक्षुओ! वैसे ही, जिस समय चित्त उद्धत होता है उस समय प्रश्रब्धि-संबोध्यंग···की भावना करनी चाहिये।···

§ ४. मेत्त सुत्त (४४. ६. ४)

मैत्री-भावना

एक समय भगवान् कोलिय (जनपद) में हलिद्दवसन नाम के कोलियों के कस्बे में विहार करते थे।

तब कुछ भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहन, और पात्र-चीवर ले हलिद्दवसन में भिक्षाटन के लिये पैठे।···

एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से दूसरे मत के साधु बोले, 'आवुस ! श्रमण गौतम अपने श्रावकों को इस प्रकार धर्मोपदेश करते हैं—भिक्षुओ ! तुम चित्त को मैला करनेवाले, तथा प्रज्ञा को दुर्बल बना देनेवाले पाँच नीवरणों को छोड़, मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करो, वैसे ही दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा को। ऊपर, नीचे, टेढ़े-मेढ़े, सभी तरह के सारे लोक को विपुल, महान्, अप्रमाण, वैररहित तथा व्यापाद-रहित मैत्री-सहगत चित्त से व्याप्त कर विहार करो। करुणा-सहगत चित्त से···। मुदिता-सहगत चित्त से···। उपेक्षा-सहगत चित्त से···।

"आवुस ! और हम भी अपने श्रावकों को इसी प्रकार धर्मोपदेश करते हैं—आवुस ! ·· पाँच नीवरणों को छोड़, मैत्री-सहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त कर विहार करो···। करुणा-सहगत चित्त से···। मुदिता-सहगत चित्त से···। उपेक्षा-सहगत चित्त से···।

"आवुस ! तो, धर्मोपदेश करने में श्रमण गौतम और हममें क्या भेद हुआ ?"

तब, वे भिक्षु दूसरे मत के साधुओं के कहने का न तो अभिनन्दन और न विरोध कर, आसन से उठ चले गये—भगवान् के पास चलकर इसका अर्थ समझेंगे।

तब, भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के बाद वे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! हम लोग पूर्वाह्ण समय··।

"भन्ते ! तब, हम उन परिव्राजकों के कहने का न तो अभिनन्दन और न विरोध कर, आसन से उठ चले आये—भगवान् के पास चलकर इसका अर्थ समझेंगे।"

भिक्षुओ ! यदि दूसरे मत के साधु ऐसा कहें तो उनको यह पूछना चाहिये—आवुस ! किस प्रकार भावना की गई मैत्री से चित्त की विमुक्ति के क्या गति=फल=परिणाम होते हैं ?···किस प्रकार भावना की गई उपेक्षा से चित्त की विमुक्ति के क्या गति=फल=परिणाम होते हैं ? भिक्षुओ ! यह पूछने पर दूसरे मत के साधु इसे समझा न सकेंगे, बल्कि बड़ी बड़बड़ी में पड़ जायेंगे।

सो क्यों ?···मैं किसी दूसरे को ऐसा नहीं देखता हूँ जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके।

भिक्षुओ ! किस प्रकार भावना की गई मैत्री से चित्त की विमुक्ति के क्या गति=फल=परिणाम होते हैं ?

भिक्षुओ ! भिक्षु मैत्री-सहगत स्मृति-सम्बोध्यंग की भावना करता है, ···उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना करता है, जो विवेक, विराग तथा निरोध की ओर ले जाता है, और जिससे मुक्ति सिद्ध होती है। यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल में प्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'प्रतिकूल में अप्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल और प्रतिकूल में प्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल और प्रतिकूल दोनों को छोड़, उपेक्षापूर्वक स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। शुभ या विमोक्ष को प्राप्त करता है। भिक्षुओ ! मैत्री से चित्त की विमुक्ति शुभ-पर्यन्त है। वह भिक्षु इसके ऊपर की विमुक्ति को नहीं पाता है।

भिक्षुओ ! किस प्रकार भावना की करुणा से चित्त की विमुक्ति के क्या गति = फल = परिणाम होते हैं ?

भिक्षुओ ! ···(मैत्री-सहगत के समान ही करुणा-सहगत) यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल और प्रतिकूल दोनों को छोड़, उपेक्षापूर्वक स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। या, रूप-संज्ञा का बिल्कुल अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्व-

संज्ञा को मन में न ला, 'आकाश अनन्त है' ऐसे आकाशानन्त्यायतन तक होती है—ऐसा मैं कहता हूँ। वह भिक्षु इसके ऊपर की विमुक्ति को नहीं पाता है।

भिक्षुओ ! किस प्रकार भावना की गई मुदिता से चित्त की विमुक्ति के क्या गति = फल = परिणाम होते हैं ?

भिक्षुओ ! ···आकाशानन्त्यायतन का बिल्कुल अतिक्रमण कर, "विज्ञान अनन्त है" ऐसे विज्ञानानन्त्यातन को प्राप्त होकर विहार करता है। भिक्षुओ ! मुदिता से चित्त की विमुक्ति विज्ञानानन्त्यायतन तक होती है—ऐसा मैं कहता हूँ।···

भिक्षुओ ! किस प्रकार भावना की गई उपेक्षा से चित्त की विमुक्ति के क्या गति = फल = परिणाम होते हैं ?

भिक्षुओ ! ···विज्ञानानन्त्यायतन का बिल्कुल अतिक्रमण कर "कुछ नहीं है" ऐसे आकिञ्चन्यायतन प्राप्त होकर विहार करता है। भिक्षुओ ! उपेक्षा से चित्त की विमुक्ति आकिञ्चन्यायतन तक होती है···। वह भिक्षु इसके ऊपर की विमुक्ति को नहीं पाता है।

§ ५. सङ्गारव सुत्त (४४. ६. ५)

मन्त्र का न सूझना

श्रावस्ती··· जेतवन···।

तब, **संगारव** ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, संगारव ब्राह्मण भगवान् से बोला—"हे गौतम ! क्या कारण है कि कभी-कभी दीर्घकाल तक भी अभ्यास किये गये मन्त्र नहीं उठते हैं, और जो अभ्यास नहीं किये गये हैं उनका तो कहना ही क्या ? और, क्या कारण है कि कभी-कभी दीर्घकाल तक अभ्यास नहीं किये गये भी मन्त्र झट उठ आते हैं, जो अभ्यास किये गये हैं उनका तो कहना ही क्या ?

(क)

ब्राह्मण ! जिस समय चित्त काम-राग से अभिभूत रहता है, उत्पन्न काम-राग के मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है, उस समय वह अपना अर्थ भी ठीक ठीक नहीं जानता या देखता है, दूसरे का अर्थ भी···, दोनों का अर्थ भी···। उस समय, दीर्घकाल तक अभ्यास किये गये भी मन्त्र नहीं उठते हैं···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई जल-पात्र हो जिसमें लाह, या हल्दी, या नील, या मँजीठ लगा हो। उसमें कोई अपनी परछाँई देखना चाहे तो ठीक ठीक नहीं देख सकता हो।

ब्राह्मण ! वैसे ही, जिस समय चित्त काम-राग से अभिभूत रहता है,···उस समय, दीर्घकाल तक अभ्यास किये गये भी मन्त्र नहीं उठते हैं···।

ब्राह्मण ! जिस समय, चित्त व्यापाद से अभिभूत रहता है,···उस समय दीर्घकाल तक अभ्यास किये गये भी मन्त्र नहीं उठते हैं ···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई जल-पात्र आग से संतप्त, खौलता हुआ, भाप निकलता हुआ हो। उसमें कोई अपनी परछाँई देखना चाहे तो ठीक-ठीक नहीं देख सकता हो। ब्राह्मण ! वैसे ही, जिस समय चित्त व्यापाद से···।

ब्राह्मण ! जिस समय, चित्त आलस्य से···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई जल-पात्र सेवार और पंक से गँदला हो।···।

ब्राह्मण ! जिस समय, चित्त औद्धत्य-कौकृत्य से···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई जल-पात्र हवा से वेग उत्पन्न कर दिया गया, चञ्चल हो ।···।

ब्राह्मण ! जिस समय, चित्त विचिकित्सा से···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई गँदला जल-पात्र अंधकार में रक्खा हो । उसमें कोई अपनी परछाईं देखना चाहे तो ठीक-ठीक नहीं देख सकता हो । ब्राह्मण ! वैसे ही, जिस समय चित्त विचिकित्सा से अभिभूत रहता है, उत्पन्न विचिकित्सा के मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानता है, उस समय वह अपना अर्थ भी ठीक-ठीक नहीं जानता या देखता है, दूसरे का अर्थ भी···, दोनों का अर्थ भी···। उस समय, दीर्घकाल तक अभ्यास किये गये भी मन्त्र नहीं उठते हैं ।

ब्राह्मण ! यही कारण है कि कभी-कभी दीर्घकाल तक अभ्यास किये गये भी मन्त्र नहीं उठते हैं···।

(ख)

ब्राह्मण ! जिस समय चित्त कामराग से अभिभूत नहीं रहता है, उत्पन्न कामराग के मोक्ष को यथार्थतः जानता है, उस समय वह अपना अर्थ भी ठीक-ठीक जानता और देखता है, दूसरे का अर्थ भी···, दोनों का अर्थ भी···। उस समय, दीर्घकाल तक अभ्यास न किये गये मन्त्र भी झट उठ जाते हैं···।

ब्राह्मण ! जैसे, कोई जल-पात्र हो, जिसमें लाह, हल्दी, नील, या मँजीठ न लगा हो । उसमें कोई अपनी परछाईं देखना चाहे तो ठीक-ठीक देख ले । ब्राह्मण ! वैसे ही···।

···[इसी प्रकार, दूसरे चार नीवरणों के विषय में भी समझ लेना चाहिये]

ब्राह्मण ! यही कारण है कि कभी-कभी दीर्घकाल तक अभ्यास न किये गये मन्त्र भी झट उठ जाते हैं···।

ब्राह्मण ! यह सात आवरण-रहित और चित्त के उपक्लेश से रहित बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है । कौन से सात ? स्मृति-सम्बोध्यंग··· उपेक्षा-संबोध्यंग ।···

यह कहने पर, संगारव ब्राह्मण भगवान् से बोला, "भन्ते !···मुझे उपासक स्वीकार करें ।"

§ ६. अभय सुत्त (४४. ६. ६)

परमज्ञान-दर्शन का हेतु

एक समय भगवान् राजगृह में 'गृद्धकूट' पर्वत पर विहार करते थे ।

तब, राजकुमार अभय जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, राजकुमार अभय भगवान् से बोला, "भन्ते ! पूरण कस्सप कहता है कि—परम-ज्ञान के अदर्शन के हेतु=प्रत्यय नहीं हैं, बिना हेतु=प्रत्यय के ज्ञान का अदर्शन होता है । परम-ज्ञान के दर्शन के भी हेतु=प्रत्यय नहीं हैं, बिना हेतु=प्रत्यय के ज्ञान का दर्शन होता है । भन्ते ! भगवान् इस विषय में क्या कहते हैं ?"

राजकुमार ! परम-ज्ञान के अदर्शन के हेतु=प्रत्यय होते हैं, हेतु और प्रत्यय से ही उसका अदर्शन होता है । राजकुमार ! परम-ज्ञान के दर्शन के भी हेतु=प्रत्यय होते हैं, हेतु=प्रत्यय से ही उसका दर्शन होता है ।

(क)

भन्ते ! परम-ज्ञान के अदर्शन के हेतु=प्रत्यय क्या हैं, कैसे हेतु=प्रत्यय से ही उसका अदर्शन होता है ?

राजकुमार ! जिस समय चित्त कामराग से अभिभूत होता है, उस समय उत्पन्न कामराग के मोक्ष को यथार्थतः न जानता और न देखता है। राजकुमार ! यह भी हेतु=प्रत्यय है जिससे परम-ज्ञान का अदर्शन होता है। इस तरह, हेतु=प्रत्यय से ही उसका अदर्शन होता है।

व्यापाद···। आलस्य···। औद्धत्य-कौकृत्य···। विचिकित्सा··· ।

भन्ते ! यह धर्म क्या कहे जाते हैं ?

राजकुमार ! यह धर्म 'नीवरण' कहे जाते हैं।

भन्ते ! ठीक है, यह सच में नीवरण हैं। भन्ते ! यदि एक नीवरण से भी अभिभूत हो तो सत्य को जान या देख नहीं सकता है, पाँच की तो बात ही क्या !

(ख)

भन्ते ! परम-ज्ञान के दर्शन के हेतु=प्रत्यय क्या हैं,कैसे हेतु=प्रत्यय से ही उसका दर्शन होता है ?

राजकुमार ! भिक्षु विवेक···स्मृति-संबोध्यंग की भावना करता है। स्मृति-संबोध्यंग से भावित चित्त यथार्थ को जान और देख लेता है। राजकुमार ! यह भी हेतु=प्रत्यय है जिससे परम-ज्ञान का दर्शन होता है। इस तरह, हेतु=प्रत्यय से ही उसका दर्शन होता है।

धर्मविचय···। वीर्य···। प्रीति···। प्रश्रब्धि···। समाधि···। उपेक्षा···।

भन्ते ! यह धर्म क्या कहे जाते हैं ?

राजकुमार ! यह धर्म 'बोध्यंग' कहे जाते हैं।

भन्ते ! ठीक है, यह सच में बोध्यंग हैं। भन्ते ! एक बोध्यंगसे युक्त हो कर भी यथार्थ को देख और जान ले, सात की तो बात ही क्या ! गृद्धकूट पर्वत पर चलने से जो थकावट आई थी, दूर हो गई, धर्म को जान लिया।

बोध्यङ्ग षष्ठकम् समाप्त

सातवाँ भाग

आनापान वर्ग

§ १. अट्ठिक सुत्त (४४. ७. १)

अस्थिक-भावना

(क)

महत्फल-महानृशंस

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महाफल=महानृशंस होता है ।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक··· अस्थिक-संज्ञावाले स्मृति-सम्बोध्यङ्ग की भावना करता है,·· अस्थिक-संज्ञावाले उपेक्षा-सबोध्यंग की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।

भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महाफल=महानृशंस होता है ।

(ख)

परम-ज्ञान

भिक्षुओ ! अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से दो में एक फल अवश्य होता है— अपने देखते ही देखते परम ज्ञान की प्राप्ति, या उपादान के कुछ शेष रहने पर अनागामी-फल का लाभ ।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···अस्थिक-संज्ञावाले स्मृति-सम्बोध्यंग की भावना करता है,···अस्थिक-संज्ञावाले उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।

भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से दो में से एक फल अवश्य होता है···।

(ग)

महान् अर्थ

भिक्षुओ ! अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महान् अर्थ सिद्ध होता है ।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक···अस्थिक-संज्ञावाले···उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।

भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महान् अर्थ सिद्ध होता है ।

(घ)

महान् योगक्षेम

…भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महान् योग-क्षेम होता है।

(ङ)

महान्-संवेग

…भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से महान् संवेग होता है।

(च)

सुख से विहार

…भिक्षुओ ! इस तरह, अस्थिक-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से सुख से विहार होता है।

§ २. पुलवक सुत्त (४४. ७. २)

पुलवक-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! पुलवक-संज्ञा के…।

§ ३. विनीलक सुत्त (४४. ७. ३)

विनीलक-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! विनीलक-संज्ञा के…।

§ ४. विच्छिद्दक सुत्त (४४. ७. ४)

विच्छिद्रक-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! विच्छिद्रक-संज्ञा के…।

§ ५. उद्धुमातक सुत्त (४४. ७. ५)

उद्धुमातक-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! उद्धुमातक-संज्ञा के…।

§ ६. मेत्ता सुत्त (४४. ७. ६)

मैत्री-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! मैत्री के भावित और अभ्यस्त होने से…।

§ ७. करुणा सुत्त (४४. ७. ७)

करुणा-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! करुणा के…।

§ ८. मुदिता सुत्त (४४. ७. ८)

मुदिता-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! मुदिता के…।

§ ९. उपेक्खा सुत्त (४४. ७. ९)

उपेक्षा-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! उपेक्षा के…।

§ १०. आनापान सुत्त (४४. ७. १०)

आनापान-भावना

(क–च) भिक्षुओ ! आनापान (=आश्वास-प्रश्वास) स्मृति के…।

आनापान वर्ग समाप्त

आठवाँ भाग

निरोध वर्ग

§ १. असुभ सुत्त (४४. ८. १)

अशुभ-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! अशुभ-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से…।

§ २. मरण सुत्त (४४. ८. २)

मरण-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! मरण-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से…।

§ ३. पटिक्कूल सुत्त (४४. ८. ३)

प्रतिकूल-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! प्रतिकूल-संज्ञा के…।

§ ४. अनभिरति सुत्त (४४. ८. ४)

अनभिरति-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! सारे लोक में अनभिरति-संज्ञा के…।

§ ५. अनिच्च सुत्त (४४. ८. ५)

अनित्य-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! अनित्य-संज्ञा के… ।

§ ६. दुक्ख सुत्त (४४. ८. ६)

दुःख-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! दुःख-संज्ञा के…।

§ ७. अनत्त सुत्त (४४. ८. ७)

अनात्म-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! अनात्म-संज्ञा के…।

§ ८. पहाण सुत्त (४४. ८. ८)

प्रहाण-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! प्रहाण-संज्ञा के…।

§ ९. विराग सुत्त (४४. ८. ९)

विराग-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! विराग-संज्ञा के…।

§ १०. निरोध सुत्त (४४. ८. १०)

निरोध-संज्ञा

(क–च) भिक्षुओ ! निरोध-संज्ञा के भावित और अभ्यस्त होने से…।

निरोध वर्ग समाप्त

नवाँ भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १. पाचीन सुत्त (४४. ९. १)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही सात संबोध्यंग की भावना और अभ्यास करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक······उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना और अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

भिक्षुओ ! इसी तरह जैसे गंगा नदी,···भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

§ २–१२. सेस सुत्तन्ता (४४. ९. २–१२)

निर्वाण की ओर बढ़ना

···[एषणा के ऐसा विस्तार कर लेना चाहिये]

दसवाँ भाग

अप्रमाद वर्ग

§ १–१०. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १०. १–१०)

अप्रमाद आधार है

भिक्षुओ ! जितने प्राणी बिना पैर वाले, दो पैर वाले, चार पैर वाले, बहुत पैर वाले···[विस्तार कर लेना चाहिये]।

अप्रमाद वर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ भाग

बलकरणीय वर्ग

§ १–१२. सब्बे सुत्तन्ता (४४. ११. १–१२)

बल

भिक्षुओ ! जैसे, जो कुछ बल-पूर्वक काम किये जाते हैं···[विस्तार कर लेना चाहिये]।

बलकरणीय वर्ग समाप्त

बारहवाँ भाग

एषण वर्ग

§ १–१२. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १२. १–१२)

तीन एषणायें

भिक्षुओ ! एषणा तीन हैं। कौन सी तीन ? काम-एषणा, भव-एषणा, ब्रह्मचर्य-एषणा।··· [विस्तार कर लेना चाहिये]।

एषण वर्ग समाप्त

तेरहवाँ भाग

ओघ वर्ग

§ १-९. सुत्तन्तानि (४४. १३. १-९)

चार बाढ़

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! ओघ (=बाढ़) चार हैं। कौन से चार ? काम…, भव…, मिथ्या-दृष्टि…, अविद्या…।… [विस्तार कर लेना चाहिये]।

§ १०. उद्धम्भागिय सुत्त (४४. १३. १०)

ऊपरी संयोजन

भिक्षुओ ! पाँच ऊपरवाले संयोजन हैं। कौन से पाँच ? रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।…[विस्तार कर लेना चाहिये]।

ओघ वर्ग समाप्त

चौदहवाँ भाग

गङ्गा-पेय्याल

§ १. पाचीन सुत्त (४४. १४. १)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे, गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही सात बोध्यंग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु राग, द्वेष और मोह को दूर करनेवाले…उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना करता है।

भिक्षुओ ! इस तरह, जैसे गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही सात बोध्यंग का अभ्यास करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

§ २-१२. सेस सुत्तन्ता (४४. १४. २-१२)

निर्वाण की ओर बढ़ना

[इस प्रकार रागविनय करके पएणा तक विस्तार कर लेना चाहिए]

गङ्गा-पेय्याल समाप्त

पन्द्रहवाँ भाग

अप्रमाद वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १५. १-१०)

अप्रमाद ही आधार है

[बोध्यंग-संयुत्त के रागविनय करके अप्रमाद-वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये]

अप्रमाद वर्ग समाप्त

सोलहवाँ भाग

बलकरणीय वर्ग

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १७. १-१२)

बल

[बोध्यंग-संयुत्त के रागविनय करके बल-करणीय वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये]

बलकरणीय वर्ग समाप्त

सत्रहवाँ भाग

एषण वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १८. १-१०)

तीन एषणायें

[बोध्यंग-संयुत्त के रागविनय करके एषण वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये]

एषण वर्ग समाप्त

अठारहवाँ भाग

ओघ वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४४. १९. १-१०)

चार बाढ़

[बोध्यंग-संयुत्त के रागविनय करके ओघ-वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये]

ओघ वर्ग समाप्त

बोध्यङ्ग-संयुत्त समाप्त

तीसरा परिच्छेद

४५. स्मृतिप्रस्थान-संयुत्त

पहला भाग

अम्बपाली वर्ग

§ १. अम्बपालि सुत्त (४५. १. १)

चार स्मृतिप्रस्थान

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् वैशाली में अम्बपालीवन में विहार करते थे।

···भगवान् बोले, "भिक्षुओ! जीवों की विशुद्धि के लिये, शोक और परिदेव (=रोना-पीटना) के पार जाने के लिये, दुःख-दौर्मनस्य को मिटा देने के लिये, ज्ञान प्राप्त करने के लिये, और निर्वाण का साक्षात्कार करने के लिये यह एक ही मार्ग है—जो यह चार स्मृति-प्रस्थान।

"कौन से चार?"

"भिक्षुओ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है—क्लेशों को तपाते हुये (=आतापी), संप्रज्ञ, स्मृतिमान् हो, संसार में लोभ और दौर्मनस्य को दबाकर। वेदना में वेदनानुपश्यी···। चित्त में चित्तानुपश्यी···। धर्मों में धर्मानुपश्यी···।

"भिक्षुओ!···निर्वाण का साक्षात्कार करने के लिये यह एक ही मार्ग है—जो यह चार स्मृति-प्रस्थान।"

भगवान् यह बोले। सन्तुष्ट हो, भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया।

§ २. सतो सुत्त (४५. १. २)

स्मृतिमान् होकर विहरना

···अम्बपालीवन में विहार करते थे।

···भिक्षुओ! स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करो। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

भिक्षुओ! भिक्षु स्मृतिमान् कैसे होता है? भिक्षुओ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···। वेदना में वेदनानुपश्यी···। चित्त में चित्तानुपश्यी···। धर्मों में धर्मानुपश्यी··।

भिक्षुओ! इसी प्रकार भिक्षु स्मृतिमान् होता है।

भिक्षुओ! भिक्षु कैसे संप्रज्ञ होता है?

भिक्षुओ! भिक्षु जाते-आते जानकार होता है, देखते-भालते जानकार होता है, समेटते-पसारते जानकार होता है, संघाटी (=ऊपर की चादर)-पात्र-चीवर को धारण करते जानकार होता है, खाते-पीते-चबाते-चाटते जानकार होता है, पाखाना-पेशाब करते जानकार होता है, चलते-खड़ा होते-बैठते-सोते-जागते-बोलते-चुप रहते जानकार होता है।

भिक्षुओ ! इसी प्रकार भिक्षु संप्रज्ञ होता है ।

भिक्षुओ ! स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करो । तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है ।

§ ३. भिक्खु सुत्त (४५. १. ३)

चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे ।

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करते, जिसे सुनकर मैं अकेला अप्रमत्त हो संयम से विहार करूँ ।"

"इस प्रकार, कुछ मूर्ख पुरुष मेरा ही पीछा करते हैं । धर्मोपदेश किये जाने पर समझते हैं कि उन्हें मेरा ही अनुसरण करना चाहिये ।

भगवन् ! संक्षेप से धर्मोपदेश करें । सुगत ! संक्षेप से धर्मोपदेश करें, कि मैं भगवान् के उपदेश का अर्थ समझ सकूँ, भगवान् का दायाद (=सच्चा उत्तराधिकारी) बन सकूँ ।

भिक्षु ! तो, तुम कुशल धर्मों के आदि को शुद्ध करो ।

कुशल-धर्मों का आदि क्या है ? विशुद्ध शील, और सीधी (=ऋजु) दृष्टि ।

भिक्षु ! जब तुम्हारा शील विशुद्ध, और दृष्टि सीधी हो जायगी, तब तुम शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो चार स्मृति-प्रस्थान की भावना तीन प्रकार से करोगे ।

कौन से चार ?

भिक्षु ! तुम अपने भीतर के (=आध्यात्म) काया में कायानुपश्यी होकर विहार करो···, बाहर के काया में कायानुपश्यी होकर विहार करो···, भीतर के और बाहर के काया में कायानुपश्यी होकर विहार करो···।···वेदना में वेदनानुपश्यी···।···चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करो···। ···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करो···।

भिक्षु ! जब तुम शील पर प्रतिष्ठित हो इन चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना तीन प्रकार से करोगे, तब रात या दिन तुम्हारी कुशल धर्मों में वृद्धि ही होगी, हानि नहीं ।

तब, वह भिक्षु भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, प्रणाम् और प्रदक्षिण कर चला गया ।

तब, उस भिक्षु ने···जाति क्षीण हुई—जान लिया । वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ ।

§ ४. सल्ल सुत्त (४५. १. ४)

चार स्मृतिप्रस्थान

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, भगवान् कोशल (जनपद) में शाला नाम के एक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे, ।

··भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! जो नये अभी हाल ही में आकर इस धर्मविनय में प्रव्रजित हुये हैं, उन्हें बताना चाहिये कि वे चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना का अच्छी तरह अभ्यास कर-उनमें प्रतिष्ठित हो जायँ—

"किन चार की ?"

"आवुस ! तुम काया में कायानुपश्यी होकर विहार करो—क्लेशों को तपाते हुये, संप्रज्ञ, एकाग्र-चित्त हो श्रद्धायुक्त चित्त से, समाहित हो—जिससे काया का आपको यथार्थ ज्ञान हो जाय।···जिससे

वेदना का आपको यथार्थ ज्ञान हो जाय।…जिससे चित्त का आपको यथार्थ ज्ञान हो जाय।…जिससे धर्मों का आपको यथार्थ ज्ञान हो जाय।

भिक्षुओ ! जो शैक्ष्य भिक्षु अनुत्तर निर्वाण का लाभ करने में लगे हैं, वे भी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करते हैं,…जिससे काया को यथार्थतः जान लें। वेदना में वेदनानुपश्यी…। चित्त में चित्तानुपश्यी…। धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करते हैं,…जिससे धर्मों को यथार्थतः जान लें।

"भिक्षुओ ! जो भिक्षु अर्हत्, क्षीणाश्रव, जिनका ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है, कृतकृत्य, जिनका भार उतर गया है, जिनने परमार्थ को पा लिया है, जिनका भव-संयोजन क्षीण हो गया है, और जो परम-ज्ञान पा विमुक्त हो गये हैं, वे भी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करते हैं,…काया में अनासक्त हो। …वेदना में अनासक्त हो।…चित्त में अनासक्त हो। धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करते हैं… धर्मों में अनासक्त हो।

"भिक्षुओ ! जो नये, अभी हाल ही में आकर इस धर्मविनय में प्रव्रजित हुये हैं, उन्हें बताना चाहिये कि वे चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना का अच्छी तरह अभ्यास कर उनमें प्रतिष्ठित हो जायँ।"

§ ५. कुसलरासि सुत्त (४५. १. ५)

कुशल-राशि

श्रावस्ती…जेतवन…।

…भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! यदि पाँच नीवरणों को कोई अकुशल (=पाप) की राशि कहे तो उसे ठीक ही समझना चाहिये। भिक्षुओ ! यह पाँच नीवरण सारे अकुशल की एक राशि है।

"कौन से पाँच ? कामच्छन्द-नीवरण…विचिकित्सा-नीवरण।…"

"भिक्षुओ ! यदि चार स्मृति-प्रस्थानों को कोई कुशल (=पुण्य) की राशि कहे तो उसे ठीक ही समझना चाहिये। भिक्षुओ ! यह चार स्मृति-प्रस्थान सारे कुशल की एक राशि है।

"कौन से चार ? काया में कायानुपश्यी…धर्मों में धर्मानुपश्यी।…"

§ ६. सकुणग्गही सुत्त (४५. १. ६)

ठाँव छोड़कर कुठाँव में न जाना

भिक्षुओ ! बहुत पहले, एक चिड़िमार ने लोभ में आकर सहसा एक लाप पक्षी को पकड़ लिया।

तब, वह लाप पक्षी चिड़िमार से लिये जाते समय इस प्रकार विलाप करने लगा—मैं बड़ा अभागा हूँ कि अपने स्थान को छोड़ उस कुठाँव में चर रहा था। यदि आज मैं बपौती अपने ही ठाँव चरता, तो चिड़िमार से इस तरह पकड़ा नहीं जाता।

लाप ! तुम्हारा अपना बपौती ठाँव कहाँ है ?

जो यह हल से जोता ढेलों से भरा खेत है।

भिक्षुओ ! तब, वह चिड़िमार अपनी चतुराई की डींग मारते हुये लाप पक्षी को छोड़ दिया—जा रे लाप ! वहाँ भी जा कर तू मुझसे नहीं बच सकेगा।

भिक्षुओ ! तब, लाप पक्षी हल से जोते ढेलों से भरे खेत में उड़कर एक बड़े ढेले पर बैठ गया और ललकारने लगा—आ रे चिड़िमार, यहाँ आ !

भिक्षुओ ! तब, अपनी चतुराई की डींग मारते हुये चिड़िमार दोनों ओर से रोककर लाप पक्षी पर सहसा झपटा। भिक्षुओ ! जब लाप पक्षी ने देखा कि चिड़िमार बहुत नजदीक आ गया है तो झट उसी ढेले के नीचे दबक गया। भिक्षुओ ! चिड़िमार उसी ढेले पर छाती के बल गिर पड़ा।

भिक्षुओ ! वैसे ही, तुम भी अपने स्थान को छोड़ कुठाँव में मत जाओ, नहीं तो तुम्हें भी यही होगा। अपने स्थान को छोड़ कुठाँव में जाओगे तो मार तुम्हें अपने फन्दे में बझाकर वश में कर लेगा।

भिक्षुओ ! भिक्षु के लिये कुठाँव क्या है ? जो यह पाँच काम-गुण। कौन से पाँच ?

चक्षुविज्ञेय रूप···, श्रोत्रविज्ञेय शब्द···, घ्राणविज्ञेय गन्ध···, जिह्वाविज्ञेय रस···, काय-विज्ञेय स्पर्श···।

भिक्षुओ ! भिक्षु के लिये यही कुठाँव है।

भिक्षुओ ! अपने बपौती ठाँव में विचरण करो। अपने बपौती ठाँव में विचरण करने से मार तुम्हें अपने फन्दे में बझाकर वश में नहीं कर सकेगा।

भिक्षुओ ! भिक्षु के लिये अपना बपौती ठाँव क्या है ? जो यह चार स्मृति-प्रस्थान। कौनसे चार ?

···काया में कायानुपश्यी···। वेदना में वेदनानुपश्यी···। चित्त में चित्तानुपश्यी···। धर्मों में धर्मानुपश्यी···।

भिक्षुओ ! भिक्षु के लिये यही अपना बपौती ठाँव है।

§ ७. मक्कट सुत्त (४५. १. ७)

बन्दर की उपमा

भिक्षुओ ! पर्वतराज हिमालय पर ऐसे भी बीहड़ स्थान हैं जहाँ न तो मनुष्य और न बन्दर ही जा सकते हैं।

भिक्षुओ ! पर्वतराज हिमालय पर ऐसे भी बीहड़ स्थान हैं जहाँ केवल बन्दर जा सकते हैं, मनुष्य नहीं।

भिक्षुओ ! पर्वतराज हिमालय पर ऐसे भी रमणीय समतल भूमि-भाग हैं जहाँ मनुष्य और बन्दर सभी जा सकते हैं। भिक्षुओ ! वहाँ, बहेलिये बन्दर बझाने के लिये उनके आने-जाने के स्थान में लासा लगा देते हैं। भिक्षुओ ! जो बन्दर बेवकूफ और बेसमझ नहीं होते हैं वे लासा को देख कर दूर ही से निकल जाते हैं, और जो बेवकूफ और बेसमझ बन्दर होते हैं वे पास जा कर उस लासे को हाथ से पकड़ लेते हैं और बझ जाते हैं। एक हाथ छोड़ाने के लिये दूसरा हाथ लगाते हैं, वह भी बझ जाता है। दोनों हाथ छोड़ाने के लिये एक पैर ··, दूसरा पैर लगाते हैं; वह भी वहीं बझ जाता है। चारों हाथ-पैर छोड़ाने के लिये मुँह लगाते हैं; वह भी वहीं बझ जाता है।

भिक्षुओ ! इस प्रकार, पाँचों जगह से बझ कर बन्दर केंकियाता रहता है, भारी विपत्ति में पड़ जाता है, बहेलिया उसे जैसी इच्छा कर सकता है। भिक्षुओ ! तब, बहेलिया उसे मार कर वहीं लकड़ी की आग में जला देता है, और जहाँ चाहे चला जाता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, तुम भी अपने स्थान को छोड़ कुठाँव में मत जाओ, नहीं तो तुम्हें भी यही होगा···। [शेष ऊपर वाले सूत्र जैसा ही]

भिक्षुओ ! भिक्षु के लिये यही अपना बपौती ठाँव है।

§ ८. सूद सुत्त (४५. १. ८)

स्मृतिप्रस्थान

(क)

भिक्षुओ ! जैसे, कोई मूर्ख गँवार रसोइया राजा या राजमन्त्री को नाना प्रकार के सूप परोसे। खट्टे भी, तीते भी, कड़ुये भी, मीठे भी, खारे भी, नमकीन भी, बिना नमक के भी।

भिक्षुओ ! वह मूर्ख गँवार रसोइया भोजन की यह बात नहीं समझ सकता हो—आज की यह तैयारी स्वादिष्ट है, इसे खूब माँगते हैं, इसे खूब लेते हैं, इसकी तारीफ करते हैं। खट्टी स्वादिष्ट है, खट्टी खूब माँगते हैं, खट्टी को खूब लेते हैं, खट्टी की तारीफ करते हैं।···

भिक्षुओ ! ऐसा मूर्ख गँवार रसोइया न कपड़ा पाता है और न तलब या इनाम। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, वह ऐसा मूर्ख और गँवार है कि अपने भोजन की यह बात नहीं समझ सकता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कोई मूर्ख गँवार भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···, किन्तु उसका चित्त समाहित नहीं होता है, उपक्लेश क्षीण नहीं होते हैं। वेदना···। चित्त···। धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···, किन्तु उसका चित्त समाहित नहीं होता है, उपक्लेश क्षीण नहीं होते हैं। वह इस बात को नहीं समझता है।

भिक्षुओ ! वह मूर्ख गँवार भिक्षु अपने देखते ही देखते सुख-पूर्वक विहार नहीं कर पाता है, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ भी नहीं हो सकता है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, वह भिक्षु इतना मूर्ख और गँवार है कि अपने चित्त की बात को नहीं समझ सकता है।

(ख)

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पण्डित होशियार रसोइया राजा या राजमन्त्री को नाना प्रकार के सूप परोसे।···

भिक्षुओ ! वह पण्डित होशियार रसोइया भोजन की यह बात खूब समझता हो—आज की यह तैयारी···।

भिक्षुओ ! ऐसा पण्डित होशियार रसोइया कपड़ा भी पाता है, तलब और इनाम भी। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, वह ऐसा पण्डित और होशियार है कि अपने भोजन की यह बात खूब समझता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, कोई पण्डित होशियार भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···, उसका चित्त समाहित हो जाता है, उपक्लेश क्षीण होते हैं। वेदना···। चित्त···। धर्म···। वह इस बात को समझता है।

भिक्षुओ ! वह पण्डित होशियार भिक्षु अपने देखते ही देखते सुख-पूर्वक विहार करता है, स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होता है। सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि, वह भिक्षु इतना पण्डित और होशियार है कि अपने चित्त की बात को खूब समझता है।

§ ९. गिलान सुत्त (४५. १. ९)

अपना भरोसा करना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् वैशाली में वेलुव-ग्राम में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! जाओ, वैशाली के चारों ओर जहाँ-जहाँ तुम्हारे मित्र, परिचित या भक्त हैं वहाँ जा कर वर्षा-वास करो। मैं इसी वेलुवग्राम में वर्षावास करूँगा।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, वैशाली के चारों ओर जहाँ-जहाँ उनके मित्र, परिचित या भक्त थे वहाँ जा कर वर्षावास करने लगे। और, भगवान् उसी वेलुवग्राम में वर्षावास करने लगे।

तब, उस वर्षावास में भगवान् को एक बड़ी संगीन बीमारी हो गई—मरणान्तक पीड़ा होने लगी। भगवान् उसे स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो स्थिर भाव से सह रहे थे।

तब, भगवान् के मन में यह हुआ—मुझे ऐसा योग्य नहीं है कि अपने टहल करने वाले को बिना कहे और भिक्षु-संघ को बिना देखे मैं परिनिर्वाण पा लूँ। तो, मुझे उत्साह से इस बीमारी को हटा कर जीवित रहना चाहिये। तब, भगवान् उत्साह से उस बीमारी को हटा कर जीवित विहार करने लगे।

तब, भगवान् बीमारी से उठने के बाद ही, विहार से निकल, विहार के पीछे छाया में बिछे आसन पर बैठ गये।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते! भगवान् को आज भला-चंगा देख रहा हूँ। भन्ते! भगवान् की बीमारी से मैं बहुत घबड़ा गया था; दिशायें भी नहीं दीख पड़ती थीं, और धर्म भी नहीं सूझ रहा था। हाँ, कुछ आश्वास इस बात की थी, कि भगवान् तब तक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करेंगे जब तक भिक्षु-संघ से कुछ कह-सुन न लें।

आनन्द! भिक्षु-संघ मुझसे अब क्या जानने की आशा रखता है? आनन्द! मैंने बिना किसी भेद-भाव के धर्म का उपदेश कर दिया है। आनन्द! बुद्ध धर्म की कुछ बात छिपा कर नहीं रखते। आनन्द! जिसके मन में ऐसा हो—मैं भिक्षु-संघ का संचालन करूँगा, भिक्षु-संघ मेरे ही आधीन है, वही भिक्षु-संघ से कुछ कहे सुने। आनन्द! बुद्ध के मन में ऐसा नहीं होता है; भला, वे भिक्षु-संघ से क्या कुछ कहें सुनेंगे?

आनन्द! इस समय, मैं पुरनिया=बूढ़ा=महल्लक=अवस्था-प्राप्त हो गया हूँ। मेरी आयु अस्सी साल की हो गई है। आनन्द! जैसे पुरानी गाड़ी को बाँध-छानकर चलाते हैं, वैसे ही मेरा शरीर बाँध-छानकर चलाने के योग्य हो गया है।

आनन्द! जिस समय, बुद्ध सारे निमित्त को मन में न ला, वेदना के निरुद्ध हो जाने से अनिमित्त चित्त की समाधि को प्राप्त करते हैं, उस समय वे बड़े सुख से विहार करते हैं।

आनन्द! इसलिये, अपने पर आप निर्भर होओ, अपनी शरण आप बनो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो; धर्म पर ही निर्भर होओ, अपनी शरण धर्म को ही बनाओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।

आनन्द! अपने पर आप निर्भर कैसे होता है, अपनी शरण आप कैसे बनता है, किसी दूसरे के भरोसे कैसे नहीं रहता है…?

आनन्द! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है…धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है…।

आनन्द! इसी तरह, कोई अपने पर आप निर्भर होता है, अपनी शरण आप बनता है, किसी दूसरे के भरोसे नहीं रहता है…।

आनन्द! जो कोई इस समय, या मेरे बाद अपने पर आप निर्भर…हो कर विहार करेंगे, वही शिक्षा-कामी भिक्षु अग्र होंगे।

§ १०. भिक्खुनिवासक सुत्त (४५. १. १०)

स्मृतिप्रस्थानों की भावना

श्रावस्ती…जेतवन…।

तब, आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ एक भिक्षुणी-आवास था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

तब, कुछ भिक्षुणियाँ जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आईं, और अभिवादन कर एक ओर बैठ गईं।

एक ओर बैठ, वे भिक्षुणियाँ आयुष्मान् आनन्द से बोलीं, "भन्ते आनन्द ! यहाँ कुछ भिक्षुणियाँ चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित चित्त वाली हो अधिक से अधिक विशेषता को प्राप्त हो रही हैं।"

बहनें ! ऐसी ही बात है। जिन भिक्षु या भिक्षुणियों का चित्त चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित हो गया है, उनसे यही आशा की जाती है कि वे अधिक से अधिक विशेषता को प्राप्त हों।

तब, आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुणियों को धर्मोपदेश से दिखा, बता, उत्साहित कर, प्रसन्न कर, आसन से उठ चले गये।

तब, आयुष्मान् आनन्द भिक्षाटन कर श्रावस्ती से लौट, भोजन कर लेने के बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं पूर्वाह्न समय पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ एक भिक्षुणी-आवास है वहाँ गया।...। भन्ते ! तब, मैं उन भिक्षुणियों को धर्मोपदेश से दिखा...आसन से उठ चला आया।"

आनन्द ! ठीक है, ठीक है। जिन भिक्षु या भिक्षुणियों का चित्त चार स्मृतिप्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित हो गया है, उनसे यही आशा की जाती है कि वे अधिक से अधिक विशेषता को प्राप्त हों।

किन चार में ?

आनन्द ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है...। इस प्रकार विहार करते हुये काया एक आलम्बन हो जाता है। काया में क्लेश उत्पन्न होने लगते हैं। चित्त लीन (=सुस्त) हो जाता है, और बाहर इधर-उधर जाने लगता है। आनन्द ! तब, भिक्षु को किसी श्रद्धोत्पादक आधार पर अपना चित्त लगाना चाहिये। ऐसा करने से उसे प्रमोद होता है। प्रमुदित को प्रीति होती है। प्रीतियुक्त होने से शरीर प्रश्रब्ध हो जाता है। शरीर के प्रश्रब्ध हो जाने से सुख होता है। सुख होने से चित्त समाहित होता है। वह ऐसा चिन्तन करता है, "जिस उद्देश्य के लिये हमने चित्त को लगाया था वह सिद्ध हो गया। अब मैं यहाँ से अपना चित्त खींच लेता हूँ।" वह अपना चित्त खींच लेता है। क्लेशों का वितर्क या विचार नहीं करता है। वितर्क और विचार से रहित, अपने भीतर ही भीतर स्मृतिमान् हो सुख-पूर्वक विहार कर रहा हूँ—ऐसा जान लेता है।

वेदना...। चित्त...। धर्म...।

आनन्द ! इस प्रकार, प्रणिधान से (=चित्त लगाकर) भावना होती है।

आनन्द ! अप्रणिधान से भावना कैसे होती है ?

आनन्द ! भिक्षु बाहर में कहीं चित्त को प्रणिधान न कर, जानता है कि मेरा चित्त बाहर में कहीं प्रणिहित नहीं है। आगे-पीछे कहीं बँधा नहीं है, विमुक्त, और अप्रणिहित है—ऐसा जानता है। तब काया में कायानुपश्यी होकर विहार कर रहा हूँ...ऐसा जानता है।

वेदना...। चित्त...। धर्म...।

आनन्द ! इस प्रकार, अप्रणिधान से भावना होती है।

आनन्द ! यह मैंने बता दिया कि प्रणिधान और अप्रणिधान से कैसे भावना होती है। आनन्द ! शुभेच्छु और कृपालु बुद्ध को जो अपने श्रावकों के लिये करना चाहिये मैंने दया करके कर दिया। आनन्द ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, प्रमाद मत करो, ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

भगवान् यह बोले। संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन किया।

अम्बपाली वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

नालन्द वर्ग

§ १. महापुरिस सुत्त (४५. २. १)

महापुरुष

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् से बोले, "भन्ते ! लोग 'महापुरुष, महापुरुष' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई महापुरुष कैसे होता है ?"

सारिपुत्र ! चित्त के विमुक्त होने से कोई महापुरुष होता है—ऐसा मैं कहता हूँ। चित्त के विमुक्त नहीं होने से कोई महापुरुष नहीं होता है।

सारिपुत्र ! कोई विमुक्त चित्त वाला कैसे होता है ?

सारिपुत्र ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है—क्लेशों को तपाते हुये (=आतापी), संप्रज्ञ, स्मृतिमान् हो, संसार में लोभ और दौर्मनस्य को दबा कर। इस प्रकार विहार करते उसका चित्त राग-रहित हो जाता है, और उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो जाता है। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

सारिपुत्र ! इस तरह, कोई विमुक्त चित्त वाला होता है।

सारिपुत्र ! चित्त के विमुक्त होने से कोई महापुरुष होता है—ऐसा मैं कहता हूँ। चित्त के विमुक्त नहीं होने से कोई महापुरुष नहीं होता है।

§ २. नालन्द सुत्त (४५. २. २)

तथागत तुलना-रहित

एक समय भगवान् नालन्दा में पावारिक आम्रवन में विहार करते थे।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् से बोले, "भन्ते ! भगवान् पर मेरी दृढ़ श्रद्धा हो गई है। ज्ञान में भगवान् से बढ़कर कोई श्रमण या ब्राह्मण न हुआ है, न होगा, और न अभी वर्तमान है।"

सारिपुत्र ! तुमने निर्भीक हो बड़ी ऊँची बात कह डाली है, एक लपेट में सभी को ले लिया है, सिंह-नाद कर दिया है।···

सारिपुत्र ! जो अतीत काल में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हो गये हैं, सभी को क्या तुमने अपने चित्त से जान लिया है—इस शीलवाले वे भगवान् थे, या इस धर्मवाले वे भगवान् थे, या इस प्रज्ञा-वाले वे भगवान् थे, या इस प्रकार विहार करनेवाले वे भगवान् थे, या ऐसे विमुक्त वे भगवान् थे ?

नहीं भन्ते !

सारिपुत्र ! जो भविष्य में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, सभी को क्या तुमने अपने चित्त से जान लिया है—इस शीलवाले वे भगवान् होंगे,···या ऐसे विमुक्त वे भगवान् होंगे ?

नहीं भन्ते !

सारिपुत्र ! जो अभी अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हैं, क्या उन्हें तुमने अपने चित्त से जान लिया है— भगवान् इस शीलवाले हैं···या ऐसे विमुक्त हैं ?

नहीं भन्ते !

सारिपुत्र ! जब तुमने न अतीत, न भविष्य और न वर्तमान के अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धों को अपने चित्त से जाना है, तब क्यों निर्भीक हो बड़ी ऊँची बात कह डाली है, एक लपेट में सभी को ले लिया है, सिंहनाद कर दिया है···?

भन्ते ! मैंने अतीत, भविष्य और वर्तमान के अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धों को अपने चित्त से नहीं जाना है, किन्तु 'धर्म-विनय' को अच्छी तरह समझ लिया है।

भन्ते ! जैसे, किसी राजा के सीमाप्रान्त का कोई नगर हो, जिसके प्राकार और तोरण बड़े दृढ़ हों, और जिसके भीतर जाने के लिये एक ही द्वार हो। उसका द्वारपाल बड़ा चतुर और समझदार हो, जो अनजान लोगों को भीतर आने से रोक देता हो, केवल पहचाने लोगों को भीतर आने देता हो।

तब, कोई नगर की चारों ओर घूम घूम कर भी भीतर घुसने का कोई रास्ता न देखे—प्राकार में कोई फटी जगह या छेद जिससे हो कर एक बिल्ली भी जा सके। उसके मनमें ऐसा हो—जो कोई बड़े जीव इसके भीतर जाते हैं या बाहर निकलते हैं, सभी इसी द्वार से हो कर।

भन्ते ! मैंने इसी प्रकार धर्म-विनय को समझ लिया है। भन्ते ! जो अतीत काल में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हो चुके हैं, सभी ने चित्त को मैला करने वाले और प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले पाँच नीवरणों को प्रहीण कर, चार स्मृतिप्रस्थानों में चित्त को अच्छी तरह प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थतः भावना करते हुये अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व को प्राप्त किया था। भन्ते ! जो भविष्य में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे, वे भी···सात बोध्यंगों की यथार्थतः भावना करते हुये अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व को प्राप्त करेंगे। भन्ते ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् ने भी···सात बोध्यंगों की यथार्थतः भावना करते हुये अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व को प्राप्त किया है।

सारिपुत्र ! ठीक है, ठीक है ! सारिपुत्र ! धर्म की इस बात को तुम भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओं के बीच बताते रहना। सारिपुत्र, जिन अज्ञ लोगों को बुद्ध में शंका या विमति होगी उन्हें धर्म की इस बात को सुन कर दूर हो जायगी।

§ ३. चुन्द सुत्त (४५. २. ३)

आयुष्मान् सारिपुत्र का परिनिर्वाण

एक समय, भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगध में नालग्राम में बहुत बीमार पड़े थे। चुन्द श्रामणेर आयुष्मान् सारिपुत्र की सेवा कर रहे थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र उसी रोग से परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये।

तब, श्रामणेर चुन्द आयुष्मान् सारिपुत्र के पात्र और चीवर को ले जहाँ श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक का जेतवन आराम था वहाँ आयुष्मान् आनन्द के पास आये, और उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, श्रामणेर चुन्द आयुष्मान् आनन्द से बोले, "भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है।"

आवुस चुन्द ! यह समाचार भगवान् को देना चाहिये। जहाँ भगवान् हैं वहाँ हम चलें, और भगवान् से यह बात कहें।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, श्रामणेर चुन्द ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

तब, श्रामणेर चुन्द और आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! श्रामणेर चुन्द कहता है कि, 'आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है।' भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र के इस समाचार को सुन मुझे बड़ी विकलता हो रही है, दिशायें भी मुझे नहीं सूझ रही हैं, धर्म भी समझ में नहीं आ रहा है।"

आनन्द ! क्या सारिपुत्र ने शील-स्कन्ध को लिये परिनिर्वाण पाया है, या समाधि-स्कन्ध को, या प्रज्ञा-स्कन्ध को, या विमुक्ति-स्कन्ध को या विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन स्कन्ध को ?

भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र ने न शील-स्कन्ध को···और न विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन स्कन्ध को लिये परिनिर्वाण पाया है, किन्तु वे मेरे उपदेश देनेवाले थे, दिखानेवाले, बताने वाले, उत्साहित और हर्षित करनेवाले। गुरु-भाइयों के बीच जहाँ कहीं धर्म की बेसमझी को दूर करने वाले थे। मैं इस समय आयुष्मान् सारिपुत्र की धर्म में की गई कृतज्ञता का स्मरण करता हूँ।

आनन्द ! क्या मैंने पहले ही उपदेश नहीं कर दिया है कि सभी प्रिय अलग होते और छूटते रहते हैं। संसार का यही नियम है। जो उत्पन्न हुआ, बना हुआ (=संस्कृत), और नाश हो जाने के स्वभाव वाला (=प्रलोकधर्मा) है, वह न नष्ट हो—ऐसा सम्भव नहीं।

आनन्द ! जैसे, किसी सारवान् बड़े वृक्ष की जो सबसे बड़ी डाली हो गिर जाय। आनन्द ! वैसे ही, इस महान् भिक्षु-संघ के रहते बड़े सारवान् सारिपुत्र का परिनिर्वाण हो गया है। संसार का यही नियम है। जो उत्पन्न हुआ, बना हुआ, और नाश हो जाने के स्वभाव वाला है, वह न नष्ट हो—ऐसा सम्भव नहीं।

आनन्द ! इसलिये, अपने पर आप निर्भर होओ, अपनी शरण आप बनो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो; धर्म पर ही निर्भर होओ, अपनी शरण धर्म को ही बनाओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।

आनन्द ! अपने पर आप निर्भर कैसे होता है, अपनी शरण आप कैसे बनता है, किसी दूसरे के भरोसे कैसे नहीं रहता है···?

आनन्द ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी हो कर विहार करता है···धर्मों में धर्मानुपश्यी हो कर विहार करता है।

आनन्द ! इसी तरह, कोई अपने पर निर्भर होता है, अपनी शरण आप बनता है, किसी दूसरे के भरोसे नहीं रहता है···।

आनन्द ! जो कोई इस समय, मेरे बाद अपने पर आप निर्भर···हो कर विहार करेंगे, वही शिक्षा-कामी भिक्षु अग्र होंगे।

§ ४. चेल सुत्त (४५. २. ४)

अग्रश्रावकों के बिना भिक्षु-संघ सूना

एक समय, **सारिपुत्र** और **मोग्गलान** के परिनिर्वाण पाने के कुछ दिन बाद ही, **वज्जी** (जनपद) में गङ्गा नदी के तीरपर उक्काचेल में भगवान् बड़े भिक्षु-संघ के साथ विहार करते थे।

उस समय, भगवान् भिक्षु-संघ से घिरे हो कर खुली जगह में बैठे थे। तब, भगवान् ने शान्त बैठे भिक्षु-संघ की ओर देख कर आमन्त्रित किया :—

भिक्षुओ ! यह मण्डली सूनी-सी मालूम पड़ रही है। भिक्षुओ ! सारिपुत्र और मोग्गलान के परिनिर्वाण पा लेने के बाद यह मण्डली सूनी-सी हो गई है। जिस ओर सारिपुत्र और मोग्गलान रहते थे उस ओर भरा मालूम होता था।

भिक्षुओ ! जो अतीत काल में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् हो गये हैं उनके भी ऐसे ही अग्रश्रावक होते थे। जो भविष्य में अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् होंगे उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक होंगे—जैसे मेरे सारिपुत्र और मोग्गलान थे।

भिक्षुओ ! श्रावकों के लिये आश्चर्य है, अद्भुत है !! जो कि शास्ता के शासनकर तथा आज्ञाकारी होंगे और चारों परिषदों के लिये प्रिय=मनाप, गौरवनीय और सम्माननीय होंगे। और, भिक्षुओ ! तथागत के लिये भी आश्चर्य और अद्भुत है कि वैसे दोनों अग्र-श्रावकों के परिनिर्वाण पा लेने पर भी बुद्ध को कोई शोक या परिदेव नहीं है।…जो उत्पन्न हुआ, बना हुआ (=संस्कृत), और नाश हो जाने के स्वभाव वाला है वह न नष्ट हो—ऐसा सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! जैसे, किसी सारवान् बड़े वृक्ष की जो सबसे बड़ी डाली हो गिर जाय…[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! जो कोई इस समय, या मेरे बाद अपने पर आप निर्भर…होकर विहार करेंगे, वही शिक्षा-कामी भिक्षु अग्र होंगे।

§ ५. बाहिय सुत्त (४५. २. ५)

कुशल धर्मों का आदि

श्रावस्ती…जेतवन…।

…एक ओर बैठ आयुष्मान् बाहिय भगवान् से बोले, "भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करते, जिसे सुन मैं अकेला अलग अप्रमत्त हो संयम-पूर्वक प्रहितात्म चित्त से विहार करता।"

बाहिय ! तो, तुम अपने कुशल धर्मों के आदि को शुद्ध करो।

कुशल धर्मों का आदि क्या है ?

विशुद्ध शील और ऋजुदृष्टि।

बाहिय ! यदि तुम्हारा शील विशुद्ध और दृष्टि ऋजु रहेगी तो तुम शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना कर लोगे।

किन चार की ?

…काया में कायानुपश्यी…। वेदना…। चित्त…। धर्म…।

बाहिय ! इस प्रकार भावना करने से रात-दिन तुम्हारी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

तब, आयुष्मान् बाहिय ने…जाति क्षीण हुई…जान लिया।

आयुष्मान् बाहिय अर्हतों में एक हुये।

§ ६. उत्तिय सुत्त (४५. २. ६)

कुशल धर्मों का आदि

श्रावस्ती…जेतवन…।

…[ऊपर जैसा ही]

उत्तिय ! इस प्रकार भावना करने से तुम मृत्यु के वश से पार चले जाओगे।

तब आयुष्मान् उत्तिय ने…जाति क्षीण हुई…जान लिया।

आयुष्मान् उत्तिय अर्हतों में एक हुये।

§ ७. अरिय सुत्त (४५. २. ७)

स्मृतिप्रस्थान की भावना से दुःख-क्षय

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! चार आर्य मुक्तिप्रद स्मृतिप्रस्थान की भावना और अभ्यास करने से दुःख का बिल्कुल क्षय हो जाता है।

कौन से चार ?

काया…। वेदना…। चित्त…। धर्म…।

भिक्षुओ ! इन्हीं चार आर्य मुक्तिप्रद स्मृतिप्रस्थान की भावना और अभ्यास करने से दुःख का बिल्कुल क्षय हो जाता है।

§ ८. ब्रह्म सुत्त (४५. २. ८)

विशुद्धि का एकमात्र मार्ग

एक समय, बुद्धत्व लाभ करने के बाद ही, भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के चित्त में यह वितर्क उठा—जीवों की विशुद्धि के लिये, शोक-परिदेव से बचने के लिये, दुःख-दौर्मनस्य को मिटाने के लिये, ज्ञान को प्राप्त करने के लिये, और निर्वाण का साक्षात्कार करने के लिये एक ही मार्ग है—यह जो चार स्मृतिप्रस्थान।

कौन से चार ?

काया…। वेदना…। चित्त…। धर्म…।

तब, ब्रह्मा सहम्पति अपने चित्त से भगवान् के चित्त की बात को जान, जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले, वैसे ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये।

तब, ब्रह्मा सहम्पति भगवान् की ओर हाथ जोड़कर बोले, "भगवान् ! ठीक है, ऐसी ही बात है !! जीवों की विशुद्धि के लिये…एक ही मार्ग है—यह जो चार स्मृतिप्रस्थान। कौन से चार ? काया…। वेदना…। चित्त…। धर्म…।"

ब्रह्मा सहम्पति यह बोले। यह कहकर ब्रह्मा सहम्पति फिर भी बोले:—

> हित चाहने वाले, जन्म के क्षय को देखने वाले,
> यह एक ही मार्ग बताते हैं।
> इसी मार्ग से पहले लोग तर चुके हैं,
> तरेंगे, और बाढ़ को तर रहे हैं॥

§ ९. सेदक सुत्त (४५. २. ९)

स्मृतिप्रस्थान की भावना

एक समय, भगवान् सुम्भ (जनपद) में सेदक नाम के सुम्भों के कस्बे में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, भिक्षुओ ! बहुत पहले, एक खेलाड़ी बाँस को ऊपर उठा, अपने शागिर्द मेदकथालिका से बोला—मेदकथालिके ! इस बाँस के ऊपर चढ़कर मेरे कन्धे के ऊपर खड़े होओ।

"बहुत अच्छा" कह,…मेदकथालिका बाँस के ऊपर चढ़ खेलाड़ी के कन्धे के ऊपर खड़ा हो गया।

तब, खेलाड़ी अपने शागिर्द मेदकथालिका से बोला, "मेदकथालिके ! देखना, तुम मुझे बचाओ

और मैं तुम्हें बचाऊँ। इस प्रकार, सावधानी से एक दूसरे को बचाते हुये खेल दिखावें, पैसा कमावें, और कुशलता से बाँस के ऊपर चढ़कर उतरें।"

यह कहने पर, शागिर्द मेदकथालिका खेलाड़ी से बोला, "खेलाड़ी ! ऐसा नहीं होगा। आप अपने को बचावें और मैं अपने को बचाऊँ। इस प्रकार हम अपने अपने को बचाते हुये खेल दिखावें, पैसा कमावें और कुशलता से बाँस के ऊपर चढ़कर उतरें।"

भगवान् बोले, "यही वहाँ उचित था जैसा कि मेदकथालिका शागिर्द ने खेलाड़ी को कहा।"

भिक्षुओ ! अपनी रक्षा करूँगा—ऐसे स्मृतिप्रस्थान का अभ्यास करो। दूसरे की रक्षा करूँगा—ऐसे स्मृतिप्रस्थान का अभ्यास करो। भिक्षुओ ! अपनी रक्षा करने वाला दूसरे की रक्षा करता है, और दूसरे की रक्षा करने वाला अपनी रक्षा करता है।

भिक्षुओ ! कैसे अपनी रक्षा करने वाला दूसरे की रक्षा करता है? सेवन करने से, भावना करने से, अभ्यास करने से। भिक्षुओ ! इसी तरह, अपनी रक्षा करने वाला दूसरे की रक्षा करता है।

भिक्षुओ ! कैसे दूसरे की रक्षा करने वाला अपनी रक्षा करता है? क्षमा-शीलता से, हिंसा-रहित होने से, मैत्री से, दया से। भिक्षुओ ! इसी तरह, दूसरे की रक्षा करने वाला अपनी रक्षा करता है…।

§ १०. जनपद सुत्त (४५. २. १०)

जनपदकल्याणी की उपमा

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् सुम्भ (जनपद) में सेदक नाम के सुम्भों के कस्बे में विहार करते थे।

…भिक्षुओ ! जैसे जनपदकल्याणी (=वेश्या) के आने की बात सुनकर बड़ी भीड़ लग जाती है। भिक्षुओ ! जनपदकल्याणी की नाच और गीत ऐसी आकर्षक हैं। भिक्षुओ ! जब जनपदकल्याणी नाचने और गाने लगती है तब भीड़ और भी टूट पड़ती है।

तब, कोई पुरुष आवे जो जीवित रहना चाहता हो, मरना नहीं, सुख भोगना चाहता हो, और दुःख से दूर रहना। उसे कोई कहे—

हे पुरुष ! तुम्हें इस तेलसे लबालब भरे हुये पात्र को ले जनपदकल्याणी और भीड़ के बीच से हो कर जाना होगा। तुम्हारे पीछे-पीछे तलवार उठाये एक आदमी जायगा, जहाँ पात्र से कुछ भी तेल छलकेगा वहीं वह तुम्हारा शिर काट देगा।

भिक्षुओ ! तो, तुम क्या समझते हो, वह पुरुष अपने तेल-पात्र की ओर गफलत कर बाहर कहीं चित्त बाँटेगा ?

नहीं भन्ते !

भिक्षुओ ! किसी बात को समझाने के लिये ही मैंने यह उपमा कही है। बात यह है—तेल से लबालब भरे हुये पात्र से कायगता स्मृति का अभिप्राय है।

भिक्षुओ ! इसलिये, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—मैं कायगता स्मृति की भावना करूँगा, अभ्यास करूँगा, उसे अपना लूँगा, उसे सिद्ध कर लूँगा, अनुष्ठित कर लूँगा, परिचित कर लूँगा, उसे अच्छी तरह आरब्ध कर लूँगा। भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

नालन्द वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

शीलस्थिति वर्ग

§ १. सील सुत्त (४५. ३. १)

स्मृतिप्रस्थानों की भावना के लिए कुशल-शील

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् भद्र **पाटलिपुत्र** में **कुक्कुटाराम** में विहार करते थे।

तब, सन्ध्या समय ध्यान से उठ आयुष्मान् भद्र जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् भद्र आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस! भगवान् ने जो कुशल (=पुण्य) शील बताये हैं वह किस अभिप्राय से?"

आवुस भद्र! ठीक है, आपको यह बड़ा अच्छा सूझा कि ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा।······

आवुस भद्र! भगवान् ने जो कुशल-शील बताये हैं वह चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना के लिये ही।

किन चार स्मृतिप्रस्थानों की?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

आवुस भद्र! भगवान् ने जो कुशलशील बताये हैं वह इन्हीं चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना के लिये।

§ २. ठिति सुत्त (४५. ३. २)

धर्म का चिरस्थायी होना

[वही निदान]

आवुस आनन्द! बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने के बाद धर्म के चिरकाल तक स्थित रहने के क्या हेतु = प्रत्यय हैं?

आवुस भद्र! ठीक है, आपको यह बड़ा अच्छा सूझा कि ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा।···

आवुस भद्र! (भिक्षुओं के) चार स्मृति प्रस्थानों की भावना और अभ्यास नहीं करते रहने से बुद्ध के परिनिर्वाण पाने के बाद धर्म चिरकाल तक स्थित नहीं रहता। आवुस भद्र! चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना और अभ्यास करते रहने से बुद्ध के परिनिर्वाण पाने के बाद धर्म चिर काल तक स्थित रहता है।

किन चार की?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

आवुस! इन्हीं चार स्मृतिप्रस्थानों की···।

§ ३. परिहान सुत्त (४५. ३. ३.)

सद्धर्म की परिहानि न होना

पाटलिपुत्र··· कुक्कुटाराम··· ।

आवुस आनन्द ! क्या हेतु = प्रत्यय है जिससे सद्धर्म की परिहानि होती है; और क्या, हेतु = प्रत्यय है जिससे सद्धर्म की परिहानि नहीं होती है ?

···आवुस भद्र ! चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास नहीं करने से सद्धर्म की परिहानि होती है। आवुस भद्र ! चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास करने से सद्धर्म की परिहानि नहीं होती है ।

किन चार की ?

काया··· । वेदना··· । चित्त··· । धर्म··· ।

आवुस ! इन्हीं चार स्मृतिप्रस्थानों की··· ।

§ ४. सुद्धक सुत्त (४५. ३. ४)

चार स्मृतिप्रस्थान

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान चार हैं। कौन से चार ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

§ ५. ब्राह्मण सुत्त (४५. ३. ५)

धर्म के चिरस्थायी होने का कारण

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, वह ब्राह्मण भगवान् से बोला, "हे गौतम ! बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने के बाद धर्म के चिर काल तक स्थित रहने और न रहने के क्या हेतु-प्रत्यय हैं ?"

···[देखो—"४५. ३. २"]

यह कहने पर, वह ब्राह्मण भगवान् से बोला, "भन्ते !···मुझे उपासक स्वीकार करें ।"

§ ६. पदेस सुत्त (४५. ३. ६)

शैक्ष्य

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामोग्गलान और आयुष्मान् अनुरुद्ध साकेत में कण्टकीवन में विहार करते थे ।

तब, सन्ध्या समय ध्यान से उठ, आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महामोग्गलान जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे वहाँ गये, और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् अनुरुद्ध से बोले, "आवुस ! लोग 'शैक्ष्य, शैक्ष्य' कहा करते हैं । आवुस ! शैक्ष्य कैसे होता है ?"

आवुस ! चार स्मृतिप्रस्थानों की कुछ भी भावना कर लेने से शैक्ष्य होता है ।

किन चार की ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।
आवुस ! इन चार की···।

§ ७. समत्त सुत्त (४५. ३. ७)

अशैक्ष्य

···[वही निदान]
आवुस अनुरुद्ध ! लोग 'अशैक्ष्य, अशैक्ष्य' कहा करते हैं। आवुस ! अशैक्ष्य कैसे होता है ?
आवुस ! चार स्मृतिप्रस्थानों की पूरी-पूरी भावना कर लेने से अशैक्ष्य होता है।
किन चार की ?
काया··· । वेदना··· । चित्त··· । धर्म··· ।
आवुस ! इन चार की··· ।

§ ८. लोक सुत्त (४५. ३. ८)

ज्ञानी होने का कारण

···[वही निदान]
आवुस अनुरुद्ध ! किन धर्मों की भावना और अभ्यास करके आयुष्मान् इतने ज्ञानी हुए हैं ?
आवुस ! चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास करके मैंने यह बड़ा ज्ञान पाया है।
किन चार की ?···
आवुस ! इन्हीं चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास करके मैं सहस्र लोकों को जानता हूँ।

§ ९. सिरिवड्ढ सुत्त (४५. ३. ९)

श्रीवर्धन का बीमार पड़ना

एक समय आयुष्मान् आनन्द राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे।
उस समय श्रीवर्धन गृहपति बड़ा बीमार पड़ा था।

तब, श्रीवर्धन गृहपति ने किसी पुरुष को आमन्त्रित किया, "हे पुरुष ! सुनो, जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ, और आयुष्मान् आनन्द के चरणों पर मेरी ओर से प्रणाम् करो, और कहो—भन्ते ! श्रीवर्धन गृहपति बड़ा बीमार है। वह आयुष्मान् आनन्द के चरणों पर प्रणाम् करता है और कहता है, 'भन्ते ! बड़ा अच्छा होता यदि आयुष्मान् आनन्द जहाँ श्रीवर्धन गृहपति का घर है वहाँ कृपा कर चलते।'

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वह पुरुष श्रीवर्धन गृहपति को उत्तर दे जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया और आयुष्मान् आनन्द को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, वह पुरुष आयुष्मान् आनन्द से बोला, "भन्ते ! श्रीवर्धन गृहपति बड़ा बीमार पड़ा है···।"

आयुष्मान् आनन्द ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब, आयुष्मान् आनन्द पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ श्रीवर्धन गृहपति का घर था वहाँ गये, और बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठ कर, आयुष्मान् आनन्द श्रीवर्धन गृहपति से बोले, "गृहपति ! तुम्हारी तबियत कैसी है, अच्छे तो हो न, बीमारी घटती मालूम होती है न ?"

नहीं भन्ते ! मेरी तबियत बहुत खराब है, मैं अच्छा नहीं हूँ, बीमारी घटती नहीं बल्कि बढ़ती ही मालूम होती है।

गृहपति ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—काया में कायानुपश्यी होकर विहार करूँगा,...धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करूँगा...। गृहपति ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

भन्ते ! भगवान् ने जिन चार स्मृतिप्रस्थानों का उपदेश किया है, वे धर्म मुझमें लगे हैं और मैं उन धर्मों में लगा हूँ। भन्ते ! मैं काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता हूँ...धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता हूँ...।

भन्ते ! भगवान् ने जिन पाँच नीचे के (=अवरम्भागीय) संयोजन (=बन्धन) बताये हैं, उनमें मैं अपने में कुछ भी ऐसे नहीं देखता हूँ जो प्रहीण न हुये हों।

गृहपति ! तुमने बहुत बड़ी चीज पा ली। गृहपति ! तुमने अनागामी-फल की बात कही है।

§ १०. मानदिन्न सुत्त (४५. ३. १०)

मानदिन्न का अनागामी होना

...[वही निदान]

उस समय, मानदिन्न गृहपति बड़ा बीमार पड़ा था।

तब, मानदिन्न गृहपति ने किसी पुरुष को आमन्त्रित किया...।

भन्ते ! मैं इस प्रकार कठिन दुःख उठाते हुये भी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता हूँ,...धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता हूँ।

भन्ते ! भगवान् ने जिन पाँच नीचे के संयोजन बताये हैं, उनमें मैं अपने में कुछ भी ऐसे नहीं देखता हूँ जो प्रहीण न हुये हों।

गृहपति ! तुमने बहुत बड़ी चीज पा ली। गृहपति ! तुमने अनागामी फल की बात कही है।

शीलस्थिति वर्ग समाप्त

चौथा भाग

अननुश्रुत वर्ग

§ १. अननुस्सुत सुत्त (४५. ४. १)

पहले कभी न सुनी गई बातें

श्रावस्ती···जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! काया में कायानुपश्यना, यह पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में मुझे चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया, विद्या उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया। भिक्षुओ ! उस काया में कायानुपश्यना की भावना करनी चाहिये, यह पहले कभी नहीं सुने गये···। उसकी भावना मैंने कर ली, यह पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में मुझे चक्षु उत्पन्न हो गया, ज्ञान उत्पन्न हो गया, विद्या उत्पन्न हो गई, आलोक उत्पन्न हो गया।

वेदना में वेदनानुपश्यना···।

चित्त में चित्तानुपश्यना···।

धर्मों में धर्मानुपश्यना···।

§ २. विराग सुत्त (४५. ४. २)

स्मृतिप्रस्थान-भावना से निर्वाण

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! इन चार स्मृतिप्रस्थानों के भावित और अभ्यस्त होने से परम वैराग्य, निरोध, शान्ति, ज्ञान और निर्वाण सिद्ध होते हैं।

किन चार के ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इन्हीं चार स्मृतिप्रस्थानों के भावित और अभ्यस्त होने से···निर्वाण सिद्ध होते हैं।

§ ३. विरद्ध सुत्त (४५. ४. ३)

मार्ग में रुकावट

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के चार स्मृतिप्रस्थान रुके, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी मार्ग रुक गया।

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के चार स्मृतिप्रस्थान शुरू हुये, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी मार्ग शुरू हो गया।

कौन से चार ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के यह चार स्मृतिप्रस्थान रुके,···शुरू हुये···।

§ ४. भावना सुत्त (४५. ४. ४)

पार जाना

भिक्षुओ ! इन चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना और अभ्यास कर कोई अपार को भी पार कर जाता है।

किन चार की ?···

§ ५. सतो सुत्त (४५. ४. ५)

स्मृतिमान् होकर विहरना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर भिक्षु विहार करे। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ?

भिक्षुओ भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···।

भिक्षुओ ! इस तरह, भिक्षु स्मृतिमान् होता है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु संप्रज्ञ होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु के जानते हुये वेदना उठती हैं, जानते हुये रहती हैं, और जानते हुये अस्त भी हो जाती हैं। जानते हुये वितर्क उठते हैं,···जानते हुये अस्त भी हो जाते हैं। जानते हुये संज्ञा उठती हैं···जानते हुये अस्त भी हो जाती हैं।

भिक्षुओ ! इस तरह भिक्षु संप्रज्ञ होता है।

भिक्षुओ ! स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर भिक्षु विहार करे। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

§ ६. अञ्ञा सुत्त (४५. ४. ६)

परम-ज्ञान

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान चार हैं। कौन से चार ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इन चार स्मृतिप्रस्थानों के भावित और अभ्यस्त होने से दो में से एक फल सिद्ध होता है—या तो अपने देखते ही देखते परम-ज्ञान का लाभ, या उपादान के कुछ शेष रह जाने पर अनागामिता।

§ ७. छन्द सुत्त (४५. ४. ७)

स्मृतिप्रस्थान-भावना से तृष्णा-क्षय

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···। इस प्रकार विहार करते काया में उसकी जो तृष्णा है वह प्रहीण हो जाती है। तृष्णा के प्रहीण होने से उसे निर्वाण का साक्षात्कार होता है।

वेदना···। चित्त···। धर्म···।

§ ८. परिञ्ञाय सुत्त (४५. ४. ८)

काया को जानना

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···। इस प्रकार विहार करते वह काया को जान लेता है। काया को जान लेने से उसे निर्वाण का साक्षात्कार होता है।

वेदना···। चित्त···। धर्म···।

§ ९. भावना सुत्त (४५. ४. ९)

स्मृतिप्रस्थानों की भावना

भिक्षुओ ! चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···।

भिक्षुओ ! यही चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना है।

§ १०. विभङ्ग सुत्त (४५. ४. १०)

स्मृतिप्रस्थान

भिक्षुओ ! मैं स्मृतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान की भावना और स्मृतिप्रस्थान के भावनागामी मार्ग का उपदेश करूँगा। उसे सुनो··· ।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान क्या है ?

काया··· । वेदना··· । चित्त··· । धर्म··· ।

भिक्षुओ ! यही स्मृतिप्रस्थान है।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान की भावना क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में उत्पत्ति देखते विहार करता है; व्यय देखते विहार करता है; उत्पत्ति और व्यय देखते विहार करता है—क्लेशों को तपाते हुये (=आतापी)···। वेदना में···। चित्त में···। धर्म में···।

भिक्षुओ ! यही स्मृतिप्रस्थान की भावना है।

भिक्षुओ ! स्मृतिप्रस्थान का भावना-गामी मार्ग क्या है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि। भिक्षुओ ! यही स्मृतिप्रस्थान का भावनागामी मार्ग है।

अननुश्रुत वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

अमृत वर्ग

§ १. अमत सुत्त (४५. ५. १)

अमृत की प्राप्ति

भिक्षुओ ! चार स्मृतिप्रस्थानों में चित्त को अच्छी तरह प्रतिष्ठित करो। फिर अमृत (=निर्वाण) तुम्हारे पास है।

किन चार में ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

भिक्षुओ ! इन चार स्मृतिप्रस्थानों में चित्त को अच्छी तरह प्रतिष्ठित करो। फिर, अमृत तुम्हारा अपना है।

§ २. समुदय सुत्त (४५. ५. २)

उत्पत्ति और लय

भिक्षुओ ! चार स्मृतिप्रस्थानों के समुदय (=उत्पत्ति) और अस्त (=लय) होने का उपदेश करूँगा। उसे सुनो···।

भिक्षुओ ! काया का समुदय क्या है ? आहार से काया का समुदय होता है, और आहार के रुक जाने से अस्त हो जाता है।

स्पर्श से वेदना का समुदय होता है, स्पर्श के रुक जाने से वेदना अस्त हो जाती है।

नाम-रूप से चित्त का समुदय होता है, नाम-रूप के रुक जाने से चित्त अस्त हो जाता है।

मनन करने से धर्मों का समुदय होता है। मनन करने के रुक जाने से धर्म अस्त हो जाते हैं।

§ ३. मग्ग सुत्त (४५. ५. ३)

विशुद्धि का एकमात्र मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! एक समय, बुद्धत्व लाभ करने के बाद ही, मैं उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तीर पर अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करता था।

भिक्षुओ ! तब, एकान्त में ध्यान करते समय मेरे चित्त में यह वितर्क उठा—जीवों की विशुद्धि के लिये···एक ही मार्ग है—यह जो चार स्मृतिप्रस्थान···।

[देखो "४५. २. ८"]

§ ४. सतो सुत्त (४५. ५. ४)

स्मृतिमान् होकर विहरना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! भिक्षु स्मृतिमान् होकर विहार करे। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···।

भिक्षुओ ! इस प्रकार, भिक्षु स्मृतिमान् होता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु स्मृतिमान् होकर विहार करे। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा है।

§ ५. कुसलरासि सुत्त (४५. ५. ५)

कुशल-राशि

भिक्षुओ ! यदि कोई चार स्मृतिप्रस्थानों को कुसल (=पुण्य) राशि कहे तो उसे ठीक ही समझना चाहिये।

भिक्षुओ ! यह चार स्मृतिप्रस्थान सारे कुशलों की एक राशि है।

कौन से चार ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

§ ६. पातिमोक्ख सुत्त (४५. ५. ६)

कुशलधर्मों का आदि

तब, कोई भिक्षु···भगवान् से बोला, "भन्ते ! अच्छा होता यदि भगवान् मुझे संक्षेप से धर्म का उपदेश करते, जिसे सुन, मैं अकेला···विहार करता।"

भिक्षु ! तो, तुम कुशल धर्मों के आदि को ही शुद्ध करो। कुशल धर्मों का आदि क्या है ?

भिक्षु ! तुम प्रातिमोक्ष-संवर का पालन करते विहार करो—आचार-विचार से सम्पन्न हो, थोड़ी सी भी बुराई में भय देख, और शिक्षा-पदों को मानते हुये। भिक्षु ! इस प्रकार, तुम शील पर प्रतिष्ठित हो चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना कर सकोगे।

किन चार की ?

काया···। वेदना···। चित्त···। धर्म···।

भिक्षु ! इस प्रकार भावना करने से कुशल धर्मों में रात-दिन तुम्हारी वृद्धि ही होगी हानि नहीं।

तब, उस भिक्षु ने···जाति क्षीण हुई···जान लिया।

वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ७. दुच्चरित सुत्त (४५. ५. ७)

दुश्चरित्र का त्याग

···[वही निदान]

भिक्षु ! तो, तुम कुशल धर्मों के आदि को ही शुद्ध करो। कुशल धर्मों का आदि क्या है ?

भिक्षु ! तुम शारीरिक दुश्चरित्र को छोड़ सुचरित्र का अभ्यास करो। वाचसिक दुश्चरित्र को छोड़···। मानसिक दुश्चरित्र को छोड़···।

भिक्षु ! इस प्रकार अभ्यास करने से, तुम शील पर प्रतिष्ठित हो चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना कर सकोगे।···

वह भिक्षु अर्हतों में एक हुआ।

§ ८. मित्त सुत्त (४५. ५. ८)

मित्र को स्मृतिप्रस्थान में लगाना

श्रावस्ती ''' जेतवन '''।

भिक्षुओ ! तुम जिन पर प्रसन्न होओ, जिन्हें समझो कि तुम्हारी बात मानेंगे, उन मित्र या बन्धु-बान्धव को चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना बता दो, उसमें लगा दो और प्रतिष्ठित कर दो।

किन चार की ?

काया '''। वेदना '''। चित्त '''। धर्म '''।

§ ९. वेदना सुत्त (४५. ५. ९)

तीन वेदनायें

श्रावस्ती ''' जेतवन '''।

भिक्षुओ ! वेदना तीन हैं। कौन सी तीन ? सुख वेदना, दुःख वेदना, अदुःख-सुख वेदना। भिक्षुओ ! यही तीन वेदना हैं।

भिक्षुओ ! इन तीन वेदनाओं को जानने के लिये चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना करो।'''

§ १०. आसव सुत्त (४५. ५. १०)

तीन आश्रव

भिक्षुओ ! आश्रव तीन हैं। कौन से तीन ? काम-आश्रव, भव-आश्रव, अविद्या-आश्रव। भिक्षुओ! यही तीन आश्रव हैं।

भिक्षुओ ! इन तीन आश्रवों के प्रहाण के लिये चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना करो।'''

अमृत वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४५. ६. १-१२)

निर्वाण की ओर बढ़ना

भिक्षुओ ! जैसे, गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही चार स्मृतिप्रस्थानों की भावना करनेवाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

भिक्षुओ ! इस तरह,···निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

सातवाँ भाग

अप्रमाद वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४५. ७. १-१०)

अप्रमाद आधार है

[स्मृतिप्रस्थान के वश से अप्रमाद वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये।]

आठवाँ भाग

बलकरणीय वर्ग

§ १-१० सब्बे सुत्तन्ता (४५. ८. १-१०)

बल

[स्मृतिप्रस्थान के वश से बलकरणीय वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये ।]

नवाँ भाग

एषण वर्ग

§ १-११. सब्बे सुत्तन्ता (४५. ९. १-११)

चार एषणायें

[स्मृतिप्रस्थान के वश से एषण वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिए ।]

दसवाँ भाग

ओघ वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४५. १०. १-१०)

चार बाढ़

[…ओघ वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिए ।]

ओघ वर्ग समाप्त

स्मृतिप्रस्थान-संयुक्त समाप्त

चौथा परिच्छेद

४६. इन्द्रिय-संयुत्त

पहला भाग

शुद्धिक वर्ग

§ १. सुद्धिक सुत्त (४६. १. १)

पाँच इन्द्रियाँ

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भगवान् बोले, "भिक्षुओ इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच? श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय, प्रज्ञा-इन्द्रिय। भिक्षुओ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ २. पठम सोत सुत्त (४६. १. २)

स्रोतापन्न

भिक्षुओ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच? श्रद्धा···, वीर्य···, स्मृति···, समाधि···, प्रज्ञा···। भिक्षुओ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच इन्द्रियों के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है, इसलिए वह स्रोतापन्न कहा जाता है, उसका च्युत होना सम्भव नहीं, उसका परम पद पाना निश्चित होता है।

§ ३. दुतिय सोत सुत्त (४६. १. ३)

स्रोतापन्न

भिक्षुओ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच? श्रद्धा··· प्रज्ञा···।

भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है, इसलिए वह स्रोतापन्न कहा जाता है···।

§ ४. पठम अरहा सुत्त (४६. १. ४)

अर्हत्

भिक्षुओ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच? श्रद्धा··· प्रज्ञा···।

भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच इन्द्रियों के आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान, उपादान रहित हो विमुक्त हो जाता है, इसलिए वह अर्हत् कहा जाता है—क्षीणाश्रव, जिसका ब्रह्मचर्य

पूरा हो गया है, कृतकृत्य जिसका भार उत्तर गया है, जिसने परमार्थ पा लिया है, जिसका भव-संयोजन क्षीण हो गया है, परम ज्ञान को पा विमुक्त हो गया है।

§ ५. दुतिय अरहा सुत्त (४६. १. ५)

अर्हत्

···भिक्षुओ! क्योंकि आर्यश्रावक इन पाँच इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान··· ।

§ ६. पठम समणब्राह्मण सुत्त (४६. १. ६)

श्रमण और ब्राह्मण कौन ?

भिक्षुओ! इन्द्रियाँ पाँच हैं··· ।

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं, उनका न तो श्रमणों में श्रमण-भाव है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण-भाव। वे आयुष्मान् अपने देखते ही देखते श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को जान, देख और प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः जानते हैं, उनका श्रमणों में श्रमण-भाव भी है, और ब्राह्मणों में ब्राह्मण-भाव भी। वे आयुष्मान् अपने देखते ही देखते श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को जान, देख और प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ७. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (४६. १. ७)

श्रमण और ब्राह्मण कौन ?

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण श्रद्धा-इन्द्रिय को नहीं जानते हैं, श्रद्धा-इन्द्रिय के समुदय को नहीं जानते हैं, श्रद्धा-इन्द्रिय के निरोध को नहीं जानते हैं, श्रद्धा-इन्द्रिय के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते हैं··· । वीर्य···को नहीं जानते हैं··· । स्मृति···को नहीं जानते हैं··· । समाधि··· को नहीं जानते हैं··· । प्रज्ञा इन्द्रिय को नहीं जानते हैं··· । प्रज्ञा-इन्द्रिय के निरोधगामी मार्ग को नहीं जानते हैं, उनका न तो श्रमणों में श्रमण-भाव है और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण-भाव। वे आयुष्मान् अपने देखते ही देखते श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को जान, देख और प्राप्त कर नहीं विहार करते हैं।

भिक्षुओ! जो श्रमण या ब्राह्मण··· प्रज्ञा-इन्द्रिय को जानते हैं, ···प्रज्ञा-इन्द्रिय के निरोधगामी मार्ग को जानते हैं, ···वे आयुष्मान् अपने देखते ही देखते श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को जान, देख और प्राप्त कर विहार करते हैं।

§ ८. दट्ठब्ब सुत्त (४६. १. ८)

इन्द्रियों को देखने का स्थान

भिक्षुओ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ! श्रद्धा-इन्द्रिय कहाँ देखा जाता है? चार स्रोतापत्ति-अंगों में। यहाँ श्रद्धा-इन्द्रिय देखा जाता है।

भिक्षुओ! वीर्य-इन्द्रिय कहाँ देखा जाता है? चार सम्यक्-प्रधानों में। यहाँ वीर्य-इन्द्रिय देखा जाता है।

भिक्षुओ ! स्मृति-इन्द्रिय कहाँ देखा जाता है ? चार स्मृति-प्रस्थानों में। यहाँ स्मृति-इन्द्रिय देखा जाता है।

भिक्षुओ ! समाधि-इन्द्रिय कहाँ देखा जाता है ? चार ध्यानों में। यहाँ समाधि-इन्द्रिय देखा जाता है।

भिक्षुओ ! प्रज्ञा-इन्द्रिय कहाँ देखा जाता है ? चार आर्य सत्यों में। यहाँ प्रज्ञा-इन्द्रिय देखा जाता है।···

§ ९. पठम विभङ्ग सुत्त (४६. १. ९)

पाँच इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! श्रद्धा-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्यश्रावक श्रद्धालु होता है। बुद्ध के बुद्धत्व में श्रद्धा रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्याचरण-सम्पन्न, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथि के समान, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, बुद्ध भगवान्। भिक्षुओ ! इसी को श्रद्धा-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! वीर्य-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्यश्रावक अकुशल (=पाप) धर्मों के प्रहाण करने और कुशल (=पुण्य) धर्मों के पैदा करने में वीर्यवान् होता है, स्थिरता से दृढ़ पराक्रम करता है, और कुशल धर्मों में कन्धा झुका देनेवाला (=अनिक्षिप्त-धुर) नहीं होता है। इसी को वीर्य-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! स्मृति-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्य श्रावक स्मृतिमान् होता है, परम स्मृति से युक्त, चिरकाल के किये और कहे गये का भी स्मरण करनेवाला। इसी को स्मृति-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! समाधि-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्य श्रावक निर्वाण का आलम्बन करके चित्त की एकाग्रतावाली समाधि का लाभ करता है। इसी को समाधि-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! प्रज्ञा-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्यश्रावक के धर्मों के उदय और अस्त होने के स्वभाव को प्रज्ञा-पूर्वक जानता है, जिससे बन्धन कट जाते हैं और दुःखों का बिल्कुल क्षय हो जाता है। इसी को प्रज्ञा-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ १०. दुतिय विभङ्ग सुत्त (४६. १. १०)

पाँच इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! श्रद्धा-इन्द्रिय क्या है ?···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! वीर्य-इन्द्रिय क्या है ?··· और कुशल धर्मों में कन्धा झुका देनेवाला नहीं होता है। वह अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पादन के लिए हौसला करता है, कोशिश करता है, वीर्य करता है, मन लगाता है। वह उत्पन्न पापमय कुशल धर्मों के प्रहाण के लिए हौसला करता है···। अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिए···। उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, वृद्धि, भावना और पूर्णता के लिए हौसला करता है, कोशिश करता है, वीर्य करता है, मन लगाता है। भिक्षुओ ! इसी को वीर्य-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! स्मृति-इन्द्रिय क्या है ?··· चिरकाल के किये और कहे गये का स्मरण करनेवाला। वह काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है,··· धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है··· । भिक्षुओ ! इसी को स्मृति-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! समाधि-इन्द्रिय क्या है ?··· चित्त की एकाग्रतावाली समाधि का लाभ करता है। वह ···प्रथम ध्यान, ···द्वितीय ध्यान···, तृतीय ध्यान, ···चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ ! इसी को समाधि-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! प्रज्ञा-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्यश्रावक धर्मों के उदय और अस्त होने के स्वभाव को प्रज्ञापूर्वक जानता है··· । वह 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थतः जानता है, 'यह दुःखनिरोध है' इसे यथार्थतः जानता है, 'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानता है। भिक्षुओ ! इसी को प्रज्ञा-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

शुद्धिक वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

मृदुतर वर्ग

§ १. पटिलाभ सुत्त (४६. २. १)

पाँच इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।...

भिक्षुओ ! श्रद्धा-इन्द्रिय क्या है ?...[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! वीर्य-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! चार सम्यक् प्रधानों को लेकर जो वीर्य का लाभ होता है, इसे वीर्य-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! स्मृति-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! चार स्मृतिप्रस्थानों को लेकर जो स्मृति का लाभ होता है, इसे स्मृति-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! समाधि-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्य-श्रावक निर्वाण को आलम्बन कर, समाधि, चित्त की एकाग्रता का लाभ करता है। भिक्षुओ ! इसे समाधि-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! प्रज्ञा-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! आर्यश्रावक धर्मों के उदय और अस्त होने के स्वभाव को प्रज्ञा-पूर्वक जानता है, जिससे बन्धन कट जाते हैं और दुःखों का बिल्कुल क्षय हो जाता है। भिक्षुओ ! इसे प्रज्ञा-इन्द्रिय कहते हैं।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ २. पठम संक्खित सुत्त (४६. २. २)

इन्द्रियाँ यदि कम हुए तो

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।...

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है। उससे यदि कम हुआ तो अनागामी होता है। उससे भी यदि कम हुआ तो सकृदागामी होता है। उससे भी यदि कम हुआ तो स्रोतापन्न होता है। उससे भी यदि कम हुआ तो धर्मानुसारी[1] होता है। उससे भी यदि कम हुआ तो श्रद्धानुसारी[1] होता है।

§ ३. दुतिय संक्खित सुत्त (४६. २. ३)

पुरुषों की भिन्नता से अन्तर

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।...

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है।... उससे भी यदि कम हुआ तो श्रद्धानुसारी होता है।

भिक्षुओ ! इन्द्रियों की, फल की, बल की और पुरुषों की भिन्नता होने से ही ऐसा होता है।

---

१. देखो पृष्ठ ७१४ में पादटिप्पणी।

§ ४. ततिय संक्खित सुत्त (४६. २. ४)

इन्द्रिय विफल नहीं होते

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है।··· उससे भी यदि कम हुआ तो श्रद्धानुसारी होता है।

भिक्षुओ ! इस तरह इन्हें पूरा करनेवाला पूरा कर लेता है और कुछ दूर तक करनेवाला कुछ दूर तक करता है। भिक्षुओ ! पाँच इन्द्रियाँ कभी विफल नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ५. पठम वित्थार सुत्त (४६. २. ५)

इन्द्रियों की पूर्णता से अर्हत्व

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है। उससे यदि कम हुआ तो बीच में निर्वाण पानेवाला (= अन्तरापरिनिब्बायी)[१] होता है। उससे यदि कम हुआ तो 'उपहत्य परिनिर्वायी'[२] (= उपहच्चपरिनिब्बायी) होता है। उससे यदि कम हुआ तो 'असंस्कार परिनिर्वायी'[३] होता है। ···ससंस्कार परिनिर्वायी[४] होता है। ···ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठ-गामी[५] होता है। ···सकृदागामी होता है।···धर्मानुसारी होता[६] है।···श्रद्धानुसारी[७] होता है।

---

१. जो व्यक्ति पाँच निचले संयोजनों के नष्ट हो जाने पर अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने के बाद ही अथवा मध्य आयु से पूर्व ही ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है उसे 'अन्तरापरिनिब्बायी' कहते हैं।

२. जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो मध्य आयु के बीत जाने पर अथवा काल करने के समय ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे 'उपहच्च परिनिब्बायी' कहते हैं।

३. जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह अल्प प्रयत्न से ही ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर लेता है, उसे 'असंखार परिनिब्बायी' कहते हैं।

४. जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह बड़े दुःख के साथ कठिनाई से ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न करता है, उसे 'ससंखार परिनिब्बायी' कहते हैं।

५. जो व्यक्ति अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह अविह ब्रह्मलोक से च्युत होकर अतप्प ब्रह्मलोक को जाता है, अतप्प से च्युत होकर सुदस्स ब्रह्मलोक को जाता है, वहाँ से च्युत होकर सुदस्सी ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ से च्युत हो, अकनिष्ठ ब्रह्मलोक में जा ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग उत्पन्न करता है, उसे 'उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी' कहते हैं।

६. स्रोतापत्ति-फल प्राप्त करने में लगे हुए जिस व्यक्ति का प्रज्ञेन्द्रिय प्रबल होता है और प्रज्ञा को आगे करके आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे धर्मानुसारी कहते हैं।

७. स्रोतापत्ति-फल प्राप्त करने में लगे हुए जिस व्यक्ति का श्रद्धेन्द्रिय प्रबल होता है और श्रद्धा को आगे करके आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे श्रद्धानुसारी कहते हैं।

§ ६. दुतिय वित्थार सुत्त (४६. २. ६)

पुरुषों की भिन्नता से अन्तर

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है···बीच में निर्वाण पाने वाला···श्रद्धानुसारी होता है।

भिक्षुओ ! इन्द्रियों की, फल की, बल की, और पुरुषों की भिन्नता होने से ही ऐसा होता है।

§ ७. ततिय वित्थार सुत्त (४६. २. ७)

इन्द्रियाँ विफल नहीं होते

···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! इस तरह, इन्हें पूरा करने वाला पूरा कर लेता है, और कुछ दूर तक करने वाला कुछ दूर तक करता है। भिक्षुओ ! पाँच इन्द्रियाँ कभी विफल नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

§ ८. पटिपन्न सुत्त (४६. २. ८)

इन्द्रियों से रहित अज्ञ हैं

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।

भिक्षुओ ! इन्हीं इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण हो जाने से अर्हत् होता है। उससे यदि कम हुआ तो अर्हत् फल के साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नवान् होता है।···अनागामी होता है।···अनागामी-फल के साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नवान् होता है।···सकृदागामी होता है ।···सकृदागामी-फल के साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नवान् होता है।···स्रोतापन्न होता है।···स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नवान् होता है।

भिक्षुओ ! जिसे यह पाँच इन्द्रियाँ बिल्कुल किसी प्रकार से कुछ भी नहीं हैं, उसे मैं बाहर का, पृथक्-जन (=अज्ञ) कहता हूँ।

§ ९. उपसम सुत्त (४६. २. ९)

इन्द्रिय-सम्पन्न

तब, कोई भिक्षु··· भगवान् से बोला—"भन्ते ! लोग 'इन्द्रिय-सम्पन्न, इन्द्रिय-सम्पन्न' कहा करते हैं। भन्ते ! कोई कैसे इन्द्रिय-सम्पन्न होता है ?"

भिक्षुओ ! भिक्षु शान्ति और ज्ञान की ओर ले जानेवाले श्रद्धा-इन्द्रिय की भावना करता है, ···शान्ति और ज्ञान की ओर ले जानेवाले प्रज्ञा-इन्द्रिय की भावना करता है।

भिक्षुओ ! इतने से कोई इन्द्रिय-सम्पन्न होता है।

§ १०. आसवक्खय सुत्त (४६. २. १०)

आश्रवों का क्षय

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! इन पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु आश्रवों के क्षीण हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है।

मृदुतर वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

षळिन्द्रिय वर्ग

§ १. नब्भव सुत्त (४६. ३. १)

इन्द्रिय-ज्ञान के बाद बुद्धत्व का दावा

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं।···

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन पाँच इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान नहीं लिया, तब तक देव और मार के साथ इस लोक में···अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं किया।

भिक्षुओ ! जब मैंने···जान लिया, तभी देव और मार के साथ इस लोक में···अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व पाने का दावा किया।

मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गया—मेरा चित्त बिल्कुल मुक्त हो गया है। यही मेरा अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ २. जीवित सुत्त (४६. ३. २)

तीन इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ तीन हैं। कौन से तीन ? स्त्री-इन्द्रिय, पुरुष-इन्द्रिय और जीवितेन्द्रिय।

भिक्षुओ ! यही तीन इन्द्रियाँ हैं।

§ ३. आय सुत्त (४६. ३. ३)

तीन इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ तीन हैं। कौन से तीन ? अज्ञात को जानूँगा-इन्द्रिय (=स्रोतापत्ति में), ज्ञान-इन्द्रिय (=स्रोतापत्ति-फल इत्यादि छः स्थानों में), और परम-ज्ञान-इन्द्रिय (=अर्हत्-फल में)।

भिक्षुओ ! यही तीन इन्द्रियाँ हैं।

§ ४. एकाभिञ्ञ सुत्त (४६. ३. ४)

पाँच इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच ? श्रद्धा इन्द्रिय, वीर्य···, स्मृति···, समाधि···, प्रज्ञा-इन्द्रिय।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच इन्द्रियों के बिल्कुल पूर्ण होने से अर्हत् होता है। उससे यदि कम हुआ तो बीच में परिनिर्वाण पाने वाला होता है।···उपहत्य-परिनिर्वायी होता है।···असंस्कार-परिनिर्वायी होता है।···ससंस्कार-परिनिर्वायी होता है।···ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामी होता है। सकृदागामी होता है।

…एक-बीजी[1] होता है।…कोलंकोल[2] होता है।…सात बार परम[3] होता है।…धर्मानुसारी होता है। श्रद्धानुसारी होता है।

§ ५. सुद्धक सुत्त (४६. ३. ५)

छः इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ छः हैं। कौन से छः ? चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र…, घ्राण…, जिह्वा…, काया…, मन-इन्द्रिय।

भिक्षुओ ! यही छः इन्द्रियाँ हैं।

§ ६. सोतापन्न सुत्त (४६. ३. ६)

स्रोतापन्न

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ छः हैं। कौन से छः ? चक्षु-इन्द्रिय… मन-इन्द्रिय।

भिक्षुओ ! जो आर्यश्रावक इन छः इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जानता है वह स्रोतापन्न कहा जाता है, वह अब च्युत नहीं हो सकता, परम-ज्ञान लाभ करना उसका नियत होता है।

§ ७. पठम अरहा सुत्त (४६. ३. ७)

अर्हत्

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ छः हैं। कौन से छः ? चक्षु…मन।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु इन छः इन्द्रियों के…मोक्ष को यथार्थतः जान, उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाता है, वह अर्हत् कहा जाता है—क्षीणाश्रव, जिसका ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया है, कृतकृत्य, जिसका भार उतर गया है, जिसने परमार्थ को पा लिया है, जिसका भव-संयोजन क्षीण हो चुका है, जो परम-ज्ञान पा विमुक्त हो गया है।

§ ८. दुतिय अरहा सुत्त (४६. ३. ८)

इन्द्रिय-ज्ञान के बाद बुद्धत्व का दावा

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ छः हैं।…

भिक्षुओ ! जब तक मैंने इन छः इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और मोक्ष को यथार्थतः जान नहीं लिया, तब तक देव और मार के साथ इस लोक में…अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व पाने का दावा नहीं किया।

भिक्षुओ ! जब मैंने…जान लिया, तभी…अनुत्तर सम्यक्-सम्बुद्धत्व पाने का दावा किया।

---

१. जो स्रोतापत्ति-फल प्राप्त व्यक्ति केवल एक बार ही मनुष्य-लोक में उत्पन्न होकर निर्वाण पा लेता है, उसे 'एकबीजी' कहते हैं।

२. जो स्रोतापत्ति-फल प्राप्त व्यक्ति दो या तीन बार जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करता है, उसे 'कोलंकोल' कहते हैं।

३. जो स्रोतापत्ति-फल प्राप्त व्यक्ति सात बार देवलोक तथा मनुष्यलोक में जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करता है, उसे 'सत्तक्खत्तु परम' (=सात बार परम) कहते हैं।

मुझे ज्ञान दर्शन उत्पन्न हो गया—मेरा चित्त बिल्कुल विमुक्त हो गया है। यही मेरा अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ ९. पठम समणब्राह्मण सुत्त (४६. ३. ९)

इन्द्रिय-ज्ञान से श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व

…भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन छः इन्द्रियों के समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष, और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे…श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को अपने देखते ही देखते…पा कर विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो…यथार्थतः जानते हैं, वे…श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व को अपने देखते ही देखते…पा कर विहार करते हैं।

§ १०. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (४६. ३. १०)

इन्द्रिय-ज्ञान से श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण चक्षुइन्द्रिय को नहीं जानते हैं,…चक्षु-इन्द्रिय के निरोध-गामी मार्ग को नहीं जानते हैं, श्रोत्र…, घ्राण…, जिह्वा…, काया…, मन को नहीं जानते हैं,…मन के निरोध-गामी मार्ग को नहीं जानते हैं, वे…विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो…यथार्थतः जानते हैं, वे विहार करते हैं।

छळिन्द्रिय वर्ग समाप्त

चौथा भाग

सुखेद्रिय वर्ग

§ १. सुद्धिक सुत्त (४६. ४. १)

पाँच इन्द्रियाँ

भिक्षुओ ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच ? सुख-इन्द्रिय, दुःख-इन्द्रिय, सौमनस्य-इन्द्रिय, दौर्मनस्य-इन्द्रिय, उपेक्षा-इन्द्रिय।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ २. सोतापन्न सुत्त (४६. ४. २)

स्रोतापन्न

···भिक्षुओ ! जो आर्यश्रावक इन पाँच इन्द्रियों के समुदय···और मोक्ष को यथार्थतः जानता है, वह स्रोतापन्न कहा जाता है···।

§ ३. अरहा सुत्त (४६. ४. ३)

अर्हत्

···भिक्षुओ ! जो भिक्षु इन पाँच इन्द्रियों के समुदय और मोक्ष को यथार्थतः जान, उपादान-रहित हो विमुक्त हो गया है, वह अर्हत् कहा जाता है···।

§ ४. पठम समणब्राह्मण सुत्त (४६. ४. ४)

इन्द्रिय-ज्ञान से श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व

···भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच इन्द्रियों के समुदय···और मोक्ष को यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे···विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो···जानते हैं, वे···विहार करते हैं।

§ ५. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (४६. ४. ५)

इन्द्रिय-ज्ञान से श्रमणत्व या ब्राह्मणत्व

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण सुख-इन्द्रिय को,···निरोध-गामी मार्ग को, दुःख···,सौमनस्य···, दौर्मनस्य···, उपेक्षा-इन्द्रिय को···निरोधगामी मार्ग को यथार्थतः नहीं जानते हैं। वे···विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो···जानते हैं, वे···विहार करते हैं।

§ ६. पठम विभङ्ग सुत्त (४६. ४. ६)

पाँच इन्द्रियाँ

···भिक्षुओ ! सुख-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! जो कायिक सुख=सात, काय-संस्पर्श से सुखद वेदना होती है, वह सुख-इन्द्रिय कहलाता है।

भिक्षुओ ! दुःख-इन्द्रिय क्या है। जो कायिक दुःख=असात, काय-संस्पर्श से दुःखद वेदना होती है, वह दुःख-इन्द्रिय कहलाता है।

भिक्षुओ ! सौमनस्य-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! जो मानसिक सुख=सात, मनः-संस्पर्श से सुखद अनुभव वेदना होती है, वह सौमनस्य-इन्द्रिय कहलाता है।

भिक्षुओ ! दौर्मनस्य-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ ! जो मानसिक दुःख=असात, मनः-संस्पर्श से दुःखद वेदना होती है, वह दौर्मनस्य-इन्द्रिय कहलाता है।

भिक्षुओ ! उपेक्षा-इन्द्रिय क्या है ? भिक्षुओ जो कायिक या मानसिक सुख या दुःख नहीं है, वह उपेक्षा-इन्द्रिय कहलाता है।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ ७. दुतिय विभङ्ग सुत्त (४६. ४. ७)

पाँच इन्द्रियाँ

···भिक्षुओ ! सुख-इन्द्रिय क्या है ?···

भिक्षुओ ! उपेक्षा-इन्द्रिय क्या है ?···

भिक्षुओ ! जो सुख-इन्द्रिय और सौमनस्य-इन्द्रिय हैं, उनकी वेदना सुख वाली समझनी चाहिये। जो दुःख-इन्द्रिय और दौर्मनस्य-इन्द्रिय हैं, उनकी वेदना दुःख वाली समझनी चाहिये। जो उपेक्षा-इन्द्रिय है, उसकी वेदना अदुःख-सुख समझनी चाहिये।

भिक्षुओ ! यही पाँच इन्द्रियाँ हैं।

§ ८. ततिय विभङ्ग सुत्त (४६. ४. ८)

पाँच से तीन होना

···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! इस प्रकार, यह पाँच-इन्द्रियाँ पाँच हो कर भी तीन (=सुख, दुःख, उपेक्षा) हो जाते हैं, और एक दृष्टि-कोण से तीन हो कर पाँच हो जाते हैं।

§ ९. अरणि सुत्त (४६. ४. ९)

इन्द्रिय-उत्पत्ति के हेतु

भिक्षुओ ! सुख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुख-इन्द्रिय उत्पन्न होता है। वह सुखित रहते हुये जानता है कि 'मैं सुखित हूँ'। उसी सुख-वेदनीय स्पर्श के निरुद्ध हो जाने से, उससे उत्पन्न हुआ सुख-इन्द्रिय निरुद्ध=शान्त हो जाता है—ऐसा भी जानता है।

भिक्षुओ ! दुःख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःख-इन्द्रिय उत्पन्न होता है।···[ऊपर जैसा ही समझ लेना चाहिये]

भिक्षुओं ! सौमनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सौमनस्य-इन्द्रिय उत्पन्न होता है।···

भिक्षुओं ! दौर्मनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दौर्मनस्य-इन्द्रिय उत्पन्न होता है।···

भिक्षुओं ! उपेक्षा-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से उपेक्षा-इन्द्रिय उत्पन्न होता है।···

भिक्षुओ ! जैसे, दो काठ के रगड़ खाने से गर्मी पैदा होती है, और आग निकल आती है, और उन काठ को अलग-अलग फेंक देने से वह गर्मी और आग शान्त हो जाती हैं, ठंढी हो जाती हैं।

भिक्षुओं ! वैसे ही, सुख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुख-इन्द्रिय उत्पन्न होता है। वह सुखित रहते हुये जानता है कि "मैं सुखित हूँ।" उसी सुख-वेदनीय स्पर्श के निरुद्ध हो जाने से, उससे उत्पन्न हुआ सुख-इन्द्रिय निरुद्ध = शान्त हो जाता है—ऐसा भी जानता है।···

§ १०. उप्पतिक सुत्त (४६. ४. १०)

इन्द्रिय-निरोध

भिक्षुओं ! इन्द्रियाँ पाँच हैं। कौन से पाँच ? दुःख-इन्द्रिय, दौर्मनस्य···, सुख···, सौमनस्य···, उपेक्षा-इन्द्रिय।

भिक्षुओं ! आतापी (=क्लेशों को तपाने वाला), अप्रमत्त, और प्रहितात्म हो विहार करने वाले भिक्षु को दुःख-इन्द्रिय उत्पन्न होता है। वह ऐसा जानता है—मुझे दुःख-इन्द्रिय उत्पन्न हुआ है। वह निमित्त=निदान=संस्कार=प्रत्यय से ही उत्पन्न होता है। ऐसा सम्भव नहीं, कि बिना निमित्त···के उत्पन्न हो जाय। वह दुःख-इन्द्रिय को जानता है, उसके समुदय को जानता है, उसके निरोध को जानता है, और वह कैसे निरुद्ध होगा—इसे भी जानता है।

उत्पन्न दुःख-इन्द्रिय कहाँ बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु···प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। यहीं उत्पन्न दुःख-इन्द्रिय बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि—भिक्षु ने दुःख-इन्द्रिय के निरोध को जान लिया और उसके लिये चित्त लगा दिया।

···[ऊपर जैसा ही दौर्मनस्य-इन्द्रिय का भी समझ लेना चाहिये]

उत्पन्न दौर्मनस्य-इन्द्रिय कहाँ बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु···द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। यहीं उत्पन्न दौर्मनस्य-इन्द्रिय बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है।···

···[ऊपर जैसा ही सुख-इन्द्रिय का भी समझ लेना चाहिये]

भिक्षुओं ! भिक्षु···तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। यहीं उत्पन्न सुख-इन्द्रिय बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है···।

···[ऊपर जैसा ही सौमनस्य-इन्द्रिय का भी समझ लेना चाहिये।]

भिक्षुओ ! भिक्षु···चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। यहीं उत्पन्न सौमनस्य-इन्द्रिय बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है।···

···[ऊपर जैसा ही उपेक्षा-इन्द्रिय का भी समझ लेना चाहिये।]

भिक्षुओं ! भिक्षु सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयित-निरोध को प्राप्त हो विहार करता है। यहीं उपेक्षा-इन्द्रिय बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है।

भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं कि—भिक्षु ने उपेक्षा-इन्द्रिय के निरोध को जान लिया और उसके लिये चित्त लगा दिया।

सुख-इन्द्रिय वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

जरा-वर्ग

§ १. जरा सुत्त (४६. ५. १)

यौवन में वार्धक्य छिपा है !

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, भगवान् श्रावस्ती में मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे ।

उस समय, भगवान् साँझ को पच्छिम की ओर पीठ किये बैठ धूप ले रहे थे ।

तब, आयुष्मान् आनन्द भगवान् को प्रणाम् कर उनके शरीर को दबाते हुये बोले, "भन्ते ! कैसी बात है, भगवान् का शरीर अब वैसा चढ़ा और सुन्दर नहीं रहा, भगवान् के गात्र अब शिथिल हो गये हैं, चमड़े सिकुड़ गये हैं, शरीर आगे की ओर कुछ झुका मालूम होता है, चक्षु-आदि इन्द्रियाँ भी कमजोर हो गये हैं।

हाँ आनन्द ! ऐसी ही बात है । यौवन में वार्धक्य छिपा है, आरोग्य में व्याधि छिपी है, जीवन में मृत्यु छिपी है । शरीर वैसा ही चढ़ा और सुन्दर नहीं रहता है, गात्र शिथिल हो जाते हैं, चमड़े सिकुड़ जाते हैं, शरीर आगे की ओर झुक जाता है, और चक्षु आदि इन्द्रियाँ भी कमजोर हो जाते हैं ।

भगवान् ने यह कहा, यह कहकर बुद्ध फिर भी बोले—

रे वृद्धावस्था ! तुम्हें धिक्कार है,
तुम सुन्दरता को नष्ट कर देती हो,
वैसे सुन्दर शरीर को भी
तुमने मसल डाला है ॥

जो सौ वर्ष तक जीता है,
वह भी एक दिन अवश्य मरता है,
मृत्यु किसी को भी नहीं छोड़ती है,
सभी को पीस देती है ॥

§ २. उण्णाभ ब्राह्मण सुत्त (४६. ५. २)

मन इन्द्रियों का प्रतिशरण है

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, उण्णाभ ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, उण्णाभ ब्राह्मण भगवान् से बोला, "हे गौतम ! चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काया, यह पाँच इन्द्रियों के अपने भिन्न-भिन्न विषय हैं, एक दूसरे के विषय का अनुभव नहीं करता है । हे गौतम ! इन पाँच इन्द्रियों का प्रतिशरण कौन है, कौन विषयों का अनुभव करता है ?

···हे ब्राह्मण ! इन पाँच इन्द्रियों का प्रतिशरण मन है, मन ही विषयों का अनुभव करता है ।

हे गौतम ! मन का प्रतिशरण क्या है ?

हे ब्राह्मण ! मन का प्रतिशरण स्मृति है ।

हे गौतम ! स्मृति का प्रतिशरण क्या है ?

हे ब्राह्मण ! स्मृति का प्रतिशरण विमुक्ति है।

हे गौतम ! विमुक्ति का प्रतिशरण क्या है ?

हे ब्राह्मण ! विमुक्ति का प्रतिशरण निर्वाण है।

हे गौतम ! निर्वाण का प्रतिशरण क्या है ?

ब्राह्मण ! बस रहे, इसके बाद प्रश्न नहीं किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य-पालन का सबसे अन्तिम उद्देश्य निर्वाण ही है।

तब, उण्णाभ ब्राह्मण भगवान् के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम् और प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब, उण्णाभ ब्राह्मण के जाने के बाद ही भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! किसी कूटागार-शाला के पूरब की ओर के झरोखे से धूप भीतर जाकर कहाँ पड़ेगी ?"

भन्ते ! पच्छिम की दीवार पर।

भिक्षुओ ! उण्णाभ ब्राह्मण को बुद्ध के प्रति ऐसी गहरी श्रद्धा हो गई है, कि उसे कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, या ब्रह्मा भी नहीं डिगा सकता है।

भिक्षुओ ! यदि इस समय उण्णाभ ब्राह्मण मर जाय तो उसे ऐसा कोई संयोजन लगा नहीं है जिससे वह इस लोक में फिर भी आवे।

§ ३. साकेत सुत्त (४६. ५. ३)

इन्द्रियाँ ही बल हैं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् साकेत में अंजनवन मृगदाय में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! क्या कोई दृष्टि-कोण है जिससे पाँच इन्द्रियाँ पाँच बल हो जाते हैं, और पाँच बल पाँच इन्द्रियाँ हो जाते हैं ?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

हाँ भिक्षुओ ! ऐसा दृष्टि-कोण है…। जो श्रद्धा-इन्द्रिय है वह श्रद्धा-बल होता है, और जो श्रद्धा-बल है वह श्रद्धा-इन्द्रिय होता है। जो वीर्य-इन्द्रिय है वह वीर्य-बल होता है, और जो वीर्य-बल है वह वीर्य-इन्द्रिय होता है। जो प्रज्ञा-इन्द्रिय है वह प्रज्ञा-बल होता है, और जो प्रज्ञा-बल है वह प्रज्ञा-इन्द्रिय होता है।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई नदी हो जो पूरब की ओर बहती हो। उसके बीच में एक द्वीप हो। भिक्षुओ ! तो, एक दृष्टि-कोण है जिससे नदी की धारा एक ही समझी जाय, और दूसरा (दृष्टि-कोण) जिससे नदी की धारा दो समझी जाय ?

…भिक्षुओ ! जो द्वीप के आगे का जल है, और जो पीछे का, दोनों एक ही धारा बनाते हैं। इस दृष्टिकोण से नदी की धारा एक ही समझी जायगी।

…भिक्षुओ ! द्वीप के उत्तर का जल और दक्खिन का जल दो समझे जाने से नदी की धारा दो समझी जायगी।

भिक्षुओ ! इसी तरह, जो श्रद्धा-इन्द्रिय है वह श्रद्धा-बल होता है…।

भिक्षुओ ! पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है।

§ ४. पुब्बकोट्ठक सुत्त (४६. ५. ४)

इन्द्रिय-भावना से निर्वाण-प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् श्रावस्ती में पुब्बकोट्ठक में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया, "सारिपुत्र ! तुम्हें ऐसी श्रद्धा है—श्रद्धेन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है···प्रज्ञेन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है।

भन्ते ! भगवान् के प्रति श्रद्धा होने से कुछ ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। भन्ते ! जिसने इसे प्रज्ञा से न देखा, न जाना, न साक्षात्कार किया और न अनुभव किया है, वह भले इसे श्रद्धा के आधार पर मान ले। भन्ते ! किन्तु, जिसने इसे प्रज्ञा से देख, जान तथा साक्षात्कार और अनुभव कर लिया है, वे शंका=विचिकित्सा से रहित होते हैं। भन्ते ! मैंने इसे प्रज्ञा से देख, जान, तथा साक्षात्कार और अनुभव कर लिया है। मुझे इसमें कोई शंका=विचिकित्सा नहीं है कि—श्रद्धेन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है···प्रज्ञेन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है।

सारिपुत्र ! ठीक है, ठीक है !! सारिपुत्र ! जिसने इसे प्रज्ञा से न देखा, न जाना···। तुम्हें इसमें कोई शंका=विचिकित्सा नहीं है कि···निर्वाण सिद्ध होता है।

§ ५. पठम पुब्बाराम सुत्त (४६. ५. ५)

प्रज्ञेन्द्रिय की भावना से निर्वाण-प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् श्रावस्ती में मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को निमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! कितने इन्द्रियों के भावित और अभ्यास होने से भिक्षु क्षीणाश्रव हो परम-ज्ञान को घोषित करता है—जाति क्षीण हुई, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, अब यहाँ के लिये कुछ रह नहीं गया है—ऐसा मैंने जान लिया ?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही···।

भिक्षुओ ! एक इन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···—ऐसा मैंने जान लिया।

किस एक इन्द्रिय के ?

भिक्षुओ ! प्रज्ञावान् आर्य श्रावक को उससे (= प्रज्ञा से) श्रद्धा होती है। उससे वीर्य होता है। उससे स्मृति होती है। उससे समाधि होती है।

भिक्षुओ ! इसी एक इन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···—ऐसा मैंने जान लिया।

§ ६. दुतिय पुब्बाराम सुत्त (४६. ५. ६)

आर्य-प्रज्ञा और आर्य-विमुक्ति

···[वही निदान]

भिक्षुओ ! दो इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···ऐसा मैंने जान लिया। आर्य-प्रज्ञा से, और आर्य-विमुक्ति से। भिक्षुओ ! जो आर्य-प्रज्ञा है वह प्रज्ञा-इन्द्रिय है; और जो आर्य-विमुक्ति है वह समाधि-इन्द्रिय है।

भिक्षुओ ! इन दो इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···—ऐसा मैंने जान लिया।

§ ७. ततिय पुब्बाराम सुत्त (४६. ५. ७)

चार इन्द्रियों की भावना

···[वही निदान]

भिक्षुओ ! चार इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···ऐसा मैंने जान लिया।

वीर्य-इन्द्रियों के, स्मृति-इन्द्रिय के, समाधि-इन्द्रिय के, प्रज्ञा-इन्द्रिय के।

भिक्षुओ ! इन्हीं चार इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···ऐसा मैंने जान लिया।

§ ८. चतुत्थ पुब्बाराम सुत्त (४६. ५. ८)

पाँच इन्द्रियों की भावना

···[वही निदान]

भिक्षुओ ! पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···ऐसा मैंने जान लिया।

श्रद्धा-इन्द्रिय के, वीर्य··· के, स्मृति···के, समाधि···के, प्रज्ञा-इन्द्रिय के।

भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच इन्द्रिय के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु···ऐसा मैंने जान लिया।

§ ९. पिण्डोल सुत्त (४६. ५. ९)

पिण्डोल भारद्वाज को अर्हत्व-प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे।

उस समय, आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया था, "जाति क्षीण हुई···—ऐसा मैंने जान लिया।"

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया है···। भन्ते ! किस अर्थ से आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया है—जाति क्षीण हुई···ऐसा मैंने जान लिया ?"

भिक्षुओ ! तीन इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त हो जाने से आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया है—जाति क्षीण हुई···ऐसा मैंने जान लिया।

किन तीन इन्द्रियों के ?

स्मृति-इन्द्रिय के, समाधि-इन्द्रिय के, प्रज्ञा-इन्द्रिय के।

भिक्षुओ ! इन्हीं तीन इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया है—जाति क्षीण हुई···ऐसा मैंने जान लिया।

भिक्षुओ ! इन तीन इन्द्रियों का कहाँ अन्त होता है ?

क्षय में अन्त होता है।

किसके क्षय में अन्त होता है ?

जन्म, जरा और मृत्यु के।

भिक्षुओ ! जन्म, जरा और मृत्यु को क्षय हो गया देख, भिक्षु पिण्डोल भारद्वाज ने परम-ज्ञान को घोषित किया है—जाति क्षीण हुई···ऐसा मैंने जान लिया।

§ १०. आपण सुत्त (४६. ५. १०)

बुद्ध-भक्त को धर्म में शंका नहीं

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् अङ्ग (जनपद) में आपण नाम के अंगों के कस्बे में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया, "सारिपुत्र ! जो आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है, क्या वह बुद्ध या बुद्ध के धर्म में कुछ शंका कर सकता है ?"

नहीं भन्ते ! जो आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है, वह बुद्ध या बुद्ध के धर्म में कुछ शंका नहीं कर सकता है। भन्ते ! श्रद्धालु आर्यश्रावक से ऐसी आशा की जाती है कि वह वीर्यवान् होकर विहार करेगा—अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये, और कुशल धर्मों को उत्पन्न करने के लिये। कुशल धर्मों में वह स्थिर, दृढ़ पराक्रम वाला, और कन्धा न गिरा देने वाला होगा।

भन्ते ! उसका जो वीर्य है वह वीर्य-इन्द्रिय है। भन्ते ! श्रद्धालु और वीर्यवान् आर्यश्रावक से ऐसी आशा की जाती है कि वह स्मृतिमान् होगा—ज्ञानपूर्ण स्मृति से युक्त, चिरकाल के किये और कहे गये का भी स्मरण रक्खेगा।

भन्ते ! जो उसकी स्मृति है वह स्मृति इन्द्रिय है। भन्ते ! श्रद्धालु, वीर्यवान्, और उपस्थित स्मृति वाले भिक्षु से यह आशा की जाती है कि वह निर्वाण को आलम्बन करके चित्त की एकाग्रता, समाधि को प्राप्त करेगा।

भन्ते ! उसकी जो समाधि है वह समाधि-इन्द्रिय है। भन्ते ! श्रद्धालु, वीर्यवान्, उपस्थित चित्त वाले, और समाहित होनेवाले आर्यश्रावक से यह आशा की जाती है, कि वह जानेगा कि, "इस संसार का अग्र जाना नहीं जाता, पूर्व-कोटि मालूम नहीं होती। अविद्या के नीवरण में पड़े, तृष्णा के बन्धन में बँधे, आवागमन में संवरण करते जीवों को उसी अविद्या के निरोध से शान्त-पद=सभी संस्कारों का दब जाना=सभी उपधियों से मुक्ति=तृष्णा-क्षय=विराग=निरोध=निर्वाण सिद्ध होता है।"

भन्ते ! उसकी जो यह प्रज्ञा है वह प्रज्ञा-इन्द्रिय है। भन्ते ! श्रद्धालु आर्यश्रावक वीर्य करते हुए, स्मृति रखते हुये, समाधि लगाते हुए, ऐसा ज्ञान रखते हुये, ऐसी श्रद्धा करता है—यह धर्म जिन्हें पहले मैंने सुना ही था, उन्हें आज स्वयं अनुभव करते हुये विहार कर रहा हूँ, और प्रज्ञा से पैठ कर उन्हें देख रहा हूँ।

भन्ते ! उसकी जो यह श्रद्धा है वह श्रद्धा-इन्द्रिय है। सारिपुत्र ! ठीक है, ठीक है ! [ऊपर कही गई की पुनरुक्ति]

सारिपुत्र ! उसकी जो यह श्रद्धा है वह श्रद्धा-इन्द्रिय है।

जरा वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

§ १. शाला सुत्त (४६. ६. १)

प्रज्ञेन्द्रिय श्रेष्ठ है

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् कोशल में शाला नामक किसी ब्राह्मणों के ग्राम में विहार करते थे।

···भिक्षुओ ! जैसे, जितने तिरश्चीन (=पशु) प्राणी हैं सभी में मृगराज सिंह बल, तेज, और वीरता में अग्र समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने ज्ञान-पक्ष के धर्म हैं सभी में ज्ञान-प्राप्ति के लिये प्रज्ञा-इन्द्रिय ही अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पक्ष के धर्म कौन हैं ?

भिक्षुओ ! श्रद्धा-इन्द्रिय ज्ञान-पक्ष का धर्म है; उससे ज्ञान की प्राप्ति होती है। वीर्य···। समाधि···। प्रज्ञा···।

§ २. मल्लिक सुत्त (४६. ६. २)

इन्द्रियों का अपने-अपने स्थान पर रहना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् मल्ल (जनपद) में उरुवेल कल्प नामक मल्लों कस्बे में विहार करते थे।

···भिक्षुओ ! जब तक आर्यश्रावक को आर्य ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब तक चार इन्द्रियों की संस्थिति=अवस्थिति (=अपने अपने स्थान पर ठीक से बैठना) नहीं होती है।···

भिक्षुओ ! जैसे,कूटागार का कूट जब तक उठाया नहीं जाता है तब तक उसके धरण की संस्थिति =अवथस्ति नहीं होती है।

भिक्षुओ ! जब कूटागार का कूट उठा दिया जाता है तब उसके धरण की संस्थिति=अवस्थिति हो जाती है।

भिक्षुओ ! वैसे ही,···जब आर्यश्रावक को आर्य ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब चार इन्द्रियों की संस्थिति=अवस्थिति हो जाती है।

किन चार का ?

श्रद्धा-इन्द्रिय का, वीर्य-इन्द्रिय का, स्मृति-इन्द्रिय का, समाधि-इन्द्रिय का।

भिक्षुओ ! प्रज्ञावान् आर्यश्रावक को उससे (= प्रज्ञा से) श्रद्धा संस्थित हो जाती है; उससे वीर्य संस्थित हो जाता है; उससे स्मृति संस्थित हो जाती है; उससे समाधि संस्थित हो जाती है।

§ ३. सेख सुत्त (४६. ६. ३)

शैक्ष्य-अशैक्ष्य जानने का दृष्टिकोण

ऐसा मैंने सुना है।

एक समय, भगवान् कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! क्या ऐसा कोई दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं शैक्ष्य हूँ' ऐसा जान ले, और अशैक्ष्य भिक्षु अशैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं अशैक्ष्य हूँ' ऐसा जान ले ?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही'''।

भिक्षुओ ! ऐसा दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो, "मैं शैक्ष्य हूँ" ऐसा जान ले'''।

भिक्षुओ ! वह कौन-सा दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो, "मैं शैक्ष्य हूँ" ऐसा जान लेता है ?

भिक्षुओ ! शैक्ष्य भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है,'''यह दुःख का निरोध-गामी मार्ग है, इसे यथार्थतः जानता है। भिक्षुओ ! यह भी एक दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं शैक्ष्य हूँ' ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! फिर भी, शैक्ष्य भिक्षु ऐसा चिन्तन करता है, "क्या इसके बाहर भी कोई दूसरा श्रमण या ब्राह्मण है जो इस सत्य धर्म का वैसे ही उपदेश करता है जैसे कि भगवान् ? तब, वह इस निष्कर्ष पर आता है—इससे बाहर कोई दूसरा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो इस सत्य धर्म का वैसे ही उपदेश करता है जैसे कि भगवान्।" भिक्षुओ ! यह भी एक दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं शैक्ष्य हूँ' ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! फिर भी, शैक्ष्य भिक्षु पाँच इन्द्रियों को जानता है। श्रद्धा ''को'''प्रज्ञा'''को। उनका (=इन्द्रियों के) जो परम-उद्देश्य है उसे आप पा नहीं लेता है किन्तु अपनी समझ से उसमें पैठ कर जान लेता है। भिक्षुओ ! यह भी एक दृष्टि-कोण है जिससे शैक्ष्य भिक्षु शैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं शैक्ष्य हूँ' ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! वह कौन सा दृष्टि-कोण है जिससे अशैक्ष्य भिक्षु अशैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं अशैक्ष्य हूँ' ऐसा जान लेता है ?

भिक्षुओ ! अशैक्ष्य भिक्षु पाँच इन्द्रियों को जानता है। श्रद्धा'''प्रज्ञा'''। उनका जो परम-उद्देश्य है उसे आप पा भी लेता है, और प्रज्ञा से पैठ कर देख भी लेता है। भिक्षुओ ! यह भी एक दृष्टि-कोण है जिससे अशैक्ष्य भिक्षु अशैक्ष्य भूमि में स्थित हो 'मैं अशैक्ष्य हूँ' ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! फिर भी, अशैक्ष्य भिक्षु छः इन्द्रियों को जानता है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन। उसके यह छः इन्द्रियाँ बिलकुल सभी तरह से पूरा-पूरा निरुद्ध हो जायँगी, और अन्य छः इन्द्रियाँ कहीं भी किसी में उत्पन्न नहीं होंगे—इसे जानता है। भिक्षुओ ! यह भी एक दृष्टि-कोण है जिससे अशैक्ष्य भिक्षु अशैक्ष्य-भूमि में स्थित हो 'मैं अशैक्ष्य हूँ' ऐसा जानता है।

§ ४. पाद सुत्त (४६. ६. ४)

प्रज्ञेन्द्रिय सर्वश्रेष्ठ

भिक्षुओ ! जैसे, जितने जानवर हैं सभी के पैर हाथी के पैर में चले आते हैं। बड़े होने में हाथी का पैर सभी में अग्र समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, ज्ञान को बतानेवाले जितने पद हैं सभी में 'प्रज्ञेन्द्रिय' पद अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ज्ञान को बताने वाले कितने पद हैं ? भिक्षुओ ! श्रद्धेन्द्रिय पद ज्ञान को बताने वाला है'''प्रज्ञेन्द्रिय पद ज्ञान को बताने वाला है।'''

§ ५. सार सुत्त (४६. ६. ५)

प्रज्ञेन्द्रिय अग्र है

भिक्षुओ ! जैसे, जितने सार-गन्ध हैं सभी में लाल चन्दन ही अग्र समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, जितने ज्ञान-पक्ष के धर्म हैं, सभी में ज्ञान लाभ करने के लिये 'प्रज्ञेन्द्रिय' अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पक्ष के धर्म कौन हैं ? श्रद्धा-इन्द्रिय···प्रज्ञा-इन्द्रिय।···

§ ६. पतिट्ठित सुत्त (४६. ६. ६)

अप्रमाद

श्रावस्ती···जेतवन···

भिक्षुओ ! एक धर्म में प्रतिष्ठित होने से भिक्षु को पाँच इन्द्रियाँ भावित हो जाते हैं, अच्छी तरह भावित हो जाते हैं।

किस एक धर्म में ?

अप्रमाद में।

भिक्षुओ ! अप्रमाद क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु आश्रववाले धर्मों में अपने चित्त की रक्षा करता है। इस प्रकार, उसके श्रद्धेन्द्रिय की भावना पूर्ण हो जाती है···प्रज्ञेन्द्रिय की भावना पूर्ण हो जाती है।

भिक्षुओ ! इस तरह, एक धर्म में प्रतिष्ठित होने से भिक्षु को पाँच इन्द्रियाँ भावित हो जाते हैं, अच्छी तरह भावित हो जाते हैं।

§ ७. ब्रह्म सुत्त (४६. ६. ७)

इन्द्रिय-भावना से निर्वाण की प्राप्ति

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, बुद्धत्व लाभ करने के बाद ही, भगवान् उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के किनारे अजपाल निग्रोध के नीचे विहार करते थे।

तब, एकान्त में ध्यान करते समय भगवान् के मन में ऐसा वितर्क उठा—पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है। किन पाँच के ? श्रद्धा···प्रज्ञा···।

तब, ब्रह्मा सहम्पति···ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रगट हुये।

तब, ब्रह्मा सहम्पति उपरनी को एक कन्धे पर सँभाल, भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर बोले, "भगवन् ! ठीक है, ऐसी ही बात है !! ···इन पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है।

भन्ते ! बहुत पहले, मैंने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् काश्यप के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया था। उस समय मुझे लोग 'सहक भिक्षु, सहक भिक्षु' करके जानते थे। भन्ते ! सो मैं इन्हीं पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से लौकिक कामों में विरक्त हो मरने के बाद ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हुआ। यहाँ भी मैं 'ब्रह्मा सहम्पति, ब्रह्मा सहम्पति' करके जाना जाता हूँ।

भगवान् ! ठीक है, ऐसी ही बात है !! मैं इसे जानता हूँ, मैं इसे देखता हूँ, कि इन पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से निर्वाण सिद्ध होता है।

§ ८. सूकरखाता सुत्त (४६. ६. ८)

अनुत्तर योग-क्षेम

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर सूकरखता में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र को आमन्त्रित किया, "सारिपुत्र ! किस उद्देश्य से क्षीणाश्रव भिक्षु बुद्ध या बुद्ध के शासन पर माथा टेकते हैं ?"

भन्ते ! अनुत्तर योग-क्षेम के उद्देश्य से क्षीणाश्रव भिक्षु बुद्ध या बुद्ध के शासन पर माथा टेकते हैं।

सारिपुत्र ! ठीक है, तुमने ठीक ही कहा। अनुत्तर योग-क्षेम के उद्देश्य से ही क्षीणाश्रव भिक्षु बुद्ध या बुद्ध के शासन पर माथा टेकते हैं।

सारिपुत्र ! वह अनुत्तर योग-क्षेम क्या है···?

भन्ते ! क्षीणाश्रव भिक्षु शान्ति और ज्ञान की ओर ले जानेवाले श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है, ···प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है। भन्ते ! यही अनुत्तर योग-क्षेम है···।

सारिपुत्र ! ठीक कहा है, यही अनुत्तर योग-क्षेम है···।

सारिपुत्र ! वह माथा टेकना क्या है···?

भन्ते ! क्षीणाश्रव भिक्षु बुद्ध के प्रति गौरव और सम्मान रखते विहार करता है। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। शिक्षा के प्रति···। समाधि के प्रति गौरव और सम्मान रखते विहार करता है। भन्ते ! यही माथा का टेकना है।

सारिपुत्र ! ठीक कहा है, यही माथा का टेकना है···।

§ ९. पठम उप्पाद सुत्त (४६. ६. ९)

पाँच इन्द्रियाँ

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! बिना अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् के प्रादुर्भाव के न उत्पन्न हुये भावित और अभ्यस्त पाँच इन्द्रियाँ नहीं उत्पन्न होते हैं।

कौन से पाँच ?

श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य···, स्मृति···, समाधि···, प्रज्ञा-इन्द्रिय।

भिक्षुओ ! यही न उत्पन्न हुये भावित और अभ्यस्त पाँच इन्द्रियाँ बिना अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् के प्रादुर्भाव के नहीं उत्पन्न होते हैं।

§ १०. दुतिय उप्पाद सुत्त (४६. ६. १०)

पाँच इन्द्रियाँ

श्रावस्ती···जेतवन···।

बिना बुद्ध के विनय के न उत्पन्न हुये भावित और अभ्यस्त पाँच इन्द्रियाँ नहीं उत्पन्न होते हैं···।

छठाँ भाग समाप्त

सातवाँ भाग

बोधि पाक्षिक वर्ग

§ १. संयोजन सुत्त (४६. ७. १)

संयोजन

श्रावस्ती…जेतवन…।

भिक्षुओ ! यह पाँच भावित और अभ्यस्त इन्द्रियाँ संयोजनों (=बन्धन) के प्रहाण के लिये होते हैं।

§ २. अनुसय सुत्त (४६. ७. २)

अनुशय

…अनुशय को निर्मूल करने के लिये होतो हैं।

§ ३. परिञ्ञा सुत्त (४६. ७. ३)

मार्ग

…मार्ग (= अद्धान) को जानने के लिये…।

§ ४. आसवक्खय सुत्त (४६. ७. ४)

आश्रव-क्षय

…आश्रवों के क्षय के लिये होते हैं।

कौन से पाँच ? श्रद्धा-इन्द्रिय…प्रज्ञा-इन्द्रिय।

§ ५. द्वे फला सुत्त (४६. ७. ५)

दो फल

…भिक्षुओ ! इन पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से दो में से एक फल अवश्य होता है—अपने देखते ही देखते परम ज्ञान की प्राप्ति, या उपादान के कुछ शेष रहने पर अनागामिता।

§ ६. सत्तानिसंस सुत्त (४६. ७. ६)

सात सुपरिणाम

…भिक्षुओ ! इन पाँच इन्द्रियों के भावित और अभ्यस्त होने से सात अच्छे फल=सुपरिणाम होते हैं।

कौन से सात ?

अपने देखते ही देखते पैठकर परम ज्ञान को सिद्ध कर लेता है। यदि देखते ही देखते नहीं तो मरने के समय अवश्य परम-ज्ञान का लाभ करता है। यदि वह भी नहीं, तो पाँच नीचे के संयोजनों के क्षय हो जाने से बीच ही में परिनिर्वाण पाने वाला (=अन्तरा-परिनिर्वायी)* होता है।···उपहच्च परि-निर्वायी* होता है।···असंस्कार-परिनिर्वायी* होता है।···ससंस्कार परिनिर्वायी* होता है।···ऊर्ध्व-स्रोत अकनिष्ठगामी* होता है।···

§ ७. पठम रुक्ख सुत्त (४६. ७. ७)

ज्ञान पाक्षिक धर्म

भिक्षुओ ! जैसे, जम्बूद्वीप में जितने वृक्ष हैं सभी में जम्बू अग्र समझा जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, ज्ञान-पक्ष के जितने धर्म हैं सभी में ज्ञान-साधन के लिये प्रज्ञेन्द्रिय अग्र समझा जाता है।

भिक्षुओ ! ज्ञान-पक्ष के धर्म कौन हैं ? भिक्षुओ ! श्रद्धेन्द्रिय ज्ञान-पक्ष का धर्म है, वह ज्ञान का साधक है। वीर्य···। स्मृति···। समाधि···। प्रज्ञा···।

§ ८. दुतिय रुक्ख सुत्त (४६. ७. ८)

ज्ञान-पाक्षिक धर्म

भिक्षुओ ! जैसे, त्रयस्त्रिंश देवलोक में जितने वृक्ष हैं, सभी में पारिच्छत्रक अग्र समझा जाता है।···[ऊपर जैसा ही]

§ ९. ततिय रुक्ख सुत्त (४६. ७. ९)

ज्ञान-पाक्षिक धर्म

भिक्षुओ ! जैसे, असुर-लोक में जितने वृक्ष हैं सभी में चित्रपाटली अग्र समझा जाता है।···

§ १०. चतुत्थ रुक्ख सुत्त (४६. ७. १०)

ज्ञान-पाक्षिक धर्म

भिक्षुओ ! जैसे, सुपर्ण-लोक में जितने वृक्ष हैं, सभी में कूटसिम्बलि अग्र समझा जाता है।···

बोधि पाक्षिक वर्ग समाप्त

---

* इन सबकी व्याख्या के लिये देखो ४६. २. ५।

आठवाँ भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १. पाचीन सुत्त (४६. ८. १)

निर्वाण की ओर अग्रसर होना

भिक्षुओ ! जैसे, गङ्गा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही पाँच इन्द्रियों की भावना और अभ्यास करनेवाला निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाले श्रद्धेन्द्रिय की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है। वीर्य…। स्मृति…। समाधि…। प्रज्ञा…।

§ २-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४६. ८. २-१२)

[मार्ग-संयुत्त के ऐसा ही इस 'इन्द्रिय-संयुत्त' में भी]

नवाँ भाग

अप्रमाद वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (४६. ९. १-१०)

[मार्ग-संयुत्त के ऐसा ही 'इन्द्रिय' लगाकर अप्रमाद वर्ग का विस्तार कर लेना चाहिये]।
[इसी तरह, शेष विवेक…और राग…का भी मार्ग संयुत्त के समान ही समझ लेना चाहिये]

गङ्गा पेय्याल समाप्त

इन्द्रिय-संयुत्त समाप्त

पाँचवाँ परिच्छेद

४७. सम्यक् प्रधान-संयुत्त

पहला भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४७. १-१२)

चार सम्यक् प्रधान

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भिक्षुओ ! सम्यक् प्रधान चार हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशलधर्मों के अनुत्पाद के लिये हौसला करता है, कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन लगाता है।

···उत्पन्न पापमय अकुशलधर्मों के प्रहाण के लिये···।

···अनुत्पन्न कुशलधर्मों के उत्पाद के लिये···।

···उत्पन्न कुशलधर्मों की स्थिति, वृद्धि, विपुलता, भावना और पूर्णता के लिये···।

भिक्षुओ ! यही चार सम्यक् प्रधान हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, गङ्गा नदी पूरब की ओर बहती है, वैसे ही इन चार सम्यक् प्रधानों की भावना और अभ्यास करने से भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशलधर्मों के अनुत्पाद के लिये हौसला करता है, कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन लगाता है···।

भिक्षुओ ! इस तरह, जैसे गंगा नदी···।

[इसी तरह, शेष वर्गों का भी मार्ग-संयुत्त के समान ही समझ लेना चाहिये]

सम्यक् प्रधान-संयुत्त समाप्त

छठाँ परिच्छेद

४८. बल-संयुत्त

पहला भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४८. १-१२)

पाँच बल

भिक्षुओ ! बल पाँच हैं ? कौन से पाँच ? श्रद्धा-बल, वीर्य-बल स्मृति-बल, समाधि-बल, प्रज्ञा-बल भिक्षुओ ! यही पाँच बल हैं ।

भिक्षुओ ! जैसे, गङ्गा नदी पूरब की ओर बहती है वैसे ही इन पाँच बलों की भावना और अभ्यास करने वाला निर्वाण की ओर अग्रसर होता है ।

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जाने वाले श्रद्धा-बल की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।…

भिक्षुओ ! इस प्रकार, जैसे गंगा नदी…।

[इस तरह, शेष वर्गों में भी विवेक…, राग…का मार्ग-संयुत्त के समान ही समझ लेना चाहिये] ।

बल-संयुत्त समाप्त

सातवाँ परिच्छेद

४९. ऋद्धिपाद-संयुत्त

पहला भाग

चापाल वर्ग

§ १. अपरा सुत्त (४९. १. १)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! चार ऋद्धि-पाद भावित और अभ्यस्त होने से आगे की ओर अधिकाधिक बढ़ने के लिये होते हैं।

कौन से चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है। वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है। चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है। मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है।

भिक्षुओ ! यह चार ऋद्धिपाद भावित और अभ्यस्त होने से आगे की ओर अधिकाधिक बढ़ने के लिये होते हैं।

§ २. विरद्ध सुत्त (४९. १. २)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के चार ऋद्धि-पाद रुके उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य मार्ग रुका। भिक्षुओ ! जिन किन्हीं के चार ऋद्धि-पाद शुरू हुये उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य मार्ग शुरू हुआ।

कौन से चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त…। वीर्य…। चित्त…। मीमांसा…।

§ ३. अरिय सुत्त (४९. १. ३)

ऋद्धिपाद मुक्तिप्रद हैं

भिक्षुओ ! चार आर्य मुक्तिप्रद ऋद्धि-पाद भावित और अभ्यस्त होने से दुःख का बिल्कुल क्षय होता है।

कौन से चार ?

छन्द…। वीर्य…। चित्त…। मीमांसा…।

§ ४. निब्बिदा सुत्त (४९. १. ४)

निर्वाण-दायक

भिक्षुओ ! यह चार ऋद्धि-पाद भावित और अभ्यस्त होने से बिल्कुल निर्वेद, विराग, निरोध, शान्ति, ज्ञान और निर्वाण के लिये होते हैं ।

कौन से चार ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

§ ५. पदेस सुत्त (४९. १. ५)

ऋद्धि की साधना

भिक्षुओ ! जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने अतीत काल में ऋद्धि का कुछ भी साधन किया है, सभी चार ऋद्धि-पादों को भावित और अभ्यस्त होने से ही । भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण भविष्य में ऋद्धि का कुछ भी साधन करेंगे, सभी चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से ही । भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण वर्तमान में ऋद्धि का कुछ भी साधन करते हैं, सभी चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से ही ।

किन चार के ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

§ ६. समत्त सुत्त (४९. १. ६)

ऋद्धि की पूर्ण साधना

भिक्षुओ ! जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने अतीत काल में ऋद्धि का पूरा-पूरा साधन किया है, सभी चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से ही ।···भविष्य में···।···वर्तमान में···।

किन चार के ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

§ ७. भिक्खु सुत्त (४९. १. ७)

ऋद्धिपादों की भावना से अर्हत्व

भिक्षुओ ! जिन भिक्षुओंने अतीत कालमें आश्रवोंके क्षय होनेसे अनाश्रव चित्त और प्रज्ञाकी विमुक्ति को देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार किया है, सभी चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होनेसे ही । ···भविष्य में···।···वर्तमान में···।

किन चार के ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

§ ८. अरहा सुत्त (४९. १. ८)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धि-पाद चार हैं । कौन से चार ? छन्द···, वीर्य···, चित्त···, मीमांसा···।

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होते हैं ।

§ ९. ञाण सुत्त (४९. १. ९)

ज्ञान

भिक्षुओ ! यह "छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद" ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। भिक्षुओ ! इस "छन्द···ऋद्धि-पाद की भावना करनी चाहिए"···। भिक्षुओ ! यह "छन्द···ऋद्धि-पाद भावित हो गया" ऐसा मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

···वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद···।

···चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद···।

···मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद।

§ १०. चेतिय सुत्त (४९. १. १०)

बुद्ध द्वारा जीवन-शक्ति का त्याग

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

तब, भगवान् पूर्वाह्न समय पहन और पात्र-चीवर ले वैशाली में भिक्षाटन के लिए पैठे। भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! आसन ले चलो, जहाँ चापाल चैत्य है वहाँ दिन के विहार के लिए चलें।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे, आसन उठा, भगवान् के पीछे-पीछे हो लिए।

तब, भगवान् जहाँ चापाल चैत्य था वहाँ गये, और बिछे आसन पर बैठ गये। आयुष्मान् आनन्द भी भगवान् को प्रणाम् कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! वैशाली रमणीय है, उदयन-चैत्य रमणीय है, गौतमक चैत्य रमणीय है, सत्ताम्र-चैत्य रमणीय है, बहुपुत्रक-चैत्य रमणीय है, सारंदद-चैत्य रमणीय है, चापाल-चैत्य रमणीय है।

आनन्द ! जिस किसी के चार ऋद्धिपाद भावित, अभ्यस्त, अपना लिये गये, सिद्ध कर लिये गये, अनुष्ठित, परिचित, अच्छी तरह आरम्भ किये हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर रहे या बचे कल्प तक।

आनन्द ! बुद्ध के चार ऋद्धि-पाद भावित, अभ्यस्त, अपना लिये गये, सिद्ध कर लिये गये, अनुष्ठित, परिचित, अच्छी तरह आरम्भ किये हैं, यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर रहें, या बचे कल्प तक।

भगवान् के इतना स्पष्ट और महत्त्व-पूर्ण संकेत दिये जाने पर भी आयुष्मान् आनन्द समझ नहीं सके; भगवान् से ऐसी याचना नहीं की कि, "लोगों के हित के लिये, सुख के लिये, लोक पर अनुकम्पा कर के, देवता और मनुष्यों के अर्थ, हित, और सुख के लिये भगवान् कल्प भर ठहरें।" मानो, उनके चित्त में मार पैठ गया हो।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! जिसके चार ऋद्धि-पाद···।" मानो उनके चित्त में मार पैठ गया हो।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! जाओ, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम् और प्रदक्षिणा कर पास ही में किसी वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये।

तब, आयुष्मान् आनन्द के जाने के बाद ही, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और बोला, "भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें। सुगत ! परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् के परिनिर्वाण पाने का समय आ गया। भन्ते ! भगवान् ने ही यह बात कही थी, "रे पापी ! तब तक मैं परिनिर्वाण नहीं पाऊँगा जब तक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त, विनीत, विशारद, प्राप्त-योगक्षेम, बहुश्रुत, धर्मधर, धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न, अच्छे मार्ग पर आरूढ़, धर्मानुकूल आचरण करनेवाले, आचार्य से सीखकर धर्म उपदेश करनेवाले, बतानेवाले, सिद्ध करनेवाले, खोल देनेवाले, विश्लेषण करनेवाले, साफ कर देनेवाले न हो लें।" भन्ते ! भगवान् के श्रावक भिक्षु अब वैसे हो गये हैं। भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें। सुगत ! परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् के परिनिर्वाण पाने का समय आ गया है।

भन्ते ! भगवान् ने ही यह बात कही थी—"रे पापी ! तब तक मैं परिनिर्वाण नहीं पाऊँगा जब तक मेरी भिक्षुणियाँ···मेरे उपासक···मेरी उपासिकायें···।"

भन्ते ! भगवान् की भिक्षुणियाँ···उपासक···उपासिकायें वैसी हो गई हैं। भन्ते ! भगवान् परिनिर्वाण पावें। सुगत ! परिनिर्वाण पावें। भन्ते ! भगवान् के परिनिर्वाण पानेका समय आ गया है।"

ऐसा कहने पर, भगवान् पापी मार से बोले, "मार ! घबड़ा मत, बुद्ध शीघ्र ही परिनिर्वाण पावेंगे। आज से तीन मास के बाद बुद्ध का परिनिर्वाण होगा।

तब, भगवान् ने चापाल चैत्य में स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो आयु-संस्कार (=जीवन-शक्ति) को छोड़ दिया। भगवान् के आयु-संस्कार को छोड़ते ही बड़ा डरावना रोमाञ्चित कर देनेवाला भू-चाल हो उठा। देवताओं ने दुन्दुभी बजायी।

तब, इस बात को जान, भगवान् ने उस समय यह उदान कहा:—

निर्वाण (=अतुल) और भव को तौलते हुये,
ऋषि ने भव-संस्कार को छोड़ दिया,
आध्यात्म-रत और समाहित हो,
आत्म-सम्भव को कवच के ऐसा काट डाला ॥

चापाल वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

प्रासाद कम्पन वर्ग

§ १. हेतु सुत्त (४९. २. १)

ऋद्धिपाद की भावना

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व लाभ करने के पहले, मेरे बोधि-सत्व रहते ही मेरे मन में यह हुआ। "ऋद्धि-पादकी भावना का हेतु=प्रत्यय क्या है ?" भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ :—

भिक्षुओ ! छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करता है। इस तरह, मेरा छन्द न तो बहुत कमजोर और न बहुत तेज होगा; न अपने भीतर ही भीतर बन्द रहेगा, और न बाहर इधर-उधर बहुत फैल जायगा। पीछे और आगे संज्ञा के साथ विहार करता है—जैसे पीछे वैसे आगे, जैसे आगे वैसे पीछे, जैसे ऊपर वैसे नीचे, जैसे नीचे वैसे आगे, जैसे दिन वैसे रात, जैसे रात वैसे दिन। इस तरह, खुले चित्त से प्रभा के साथ चित्त की भावना करता है।

वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त···।
चित-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त···।
मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त···।

इस प्रकार, चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त हो जाने पर अनेक प्रकार की ऋद्धियों का लाभ करता है। एक होकर बहुत हो जाता है; बहुत होकर एक हो जाता है। प्रगट हो जाता है; अन्तर्धान हो जाता है; दीवार के बीच से भी निकल जाता है; प्राकार के बीच से भी निकल जाता है। पर्वत के बीच से भी निकल जाता है—बिना लगे हुये जाता है, जैसे आकाश में। पृथ्वी में गोते लगाता है—जैसे जल में। जल पर बिना धँसे जाता है—जैसे पृथ्वी पर। आकाश में भी पालथी मारे घूमता है—जैसे कोई पक्षी। ऐसे बड़े तेजवाले सूरज और चाँद को भी हाथ से स्पर्श करता है। ब्रह्मलोक तक को अपने शरीर से वश में ले आता है।

इस प्रकार, चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त हो जाने पर दिव्य, विशुद्ध और अलौकिक श्रोत्र-धातु से दोनों शब्दों को सुनता है—देवताओं के भी और मनुष्यों के भी, जो दूर हैं उन्हें भी और जो नजदीक हैं उन्हें भी।

·· दूसरे लोगों के चित्त को अपने चित्त से जान लेता है—सराग चित्त को सराग चित्त के ऐसा जान लेता है; वीतराग चित्तको वीतराग चित्त के ऐसा जान लेता है; द्वेष-युक्त चित्त को···; द्वेष-रहित चित्त को···; मोह-युक्त चित्त को···; मोह-रहित चित्त को...; दबे हुये चित्त को···; बिखरे हुये चित्त को ; महद्गत (= लोकोत्तर) चित्त को···; अमहद्गत (= लौकिक) चित्त को···; साधारण (= सोत्तर) चित्त को···; असाधारण (= अनुत्तर) चित्त को···; असमाहित चित्त को···; समाहित चित्त को···; अविमुक्त चित्त को···; विमुक्त चित्त को···।

···अनेक प्रकार से पूर्व जन्मों की बातें याद करता है। जैसे, एक जन्म भी, दो जन्म भी···पाँच जन्म भी, दस जन्म भी, बीस जन्म भी···पचास जन्म भी, सौ जन्म भी, हजार जन्म भी, लाख जन्म भी, अनेक संवर्तकल्प भी, अनेक विवर्त कल्प भी, अनेक संवर्त-विवर्त कल्प भी,—वहाँ इस नाम

का था, इस गोत्र का, इस शकल का, इस आहार का, इस प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव करनेवाला, इस आयु तक जीनेवाला। सो, वहाँ से मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ भी इस नाम का था···इस आयु तक जीनेवाला। सो, वहाँ से मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। इस प्रकार आकार-प्रकार से अनेक पूर्व-जन्मों की बातें याद करता है।

···दिव्य, विशुद्ध और अलौकिक चक्षु से जीवों को देखता है। मरते-जीते, हीन-प्रणीत, सुन्दर, कुरूप, सुगति को प्राप्त, दुर्गति को प्राप्त, तथा अपने कर्म के अनुसार अवस्था को प्राप्त जीवों को देखता है। यह जीव शरीर, वचन और मन से दुराचार करते हुए, सत्पुरुषों की निन्दा करनेवाले, मिथ्या-दृष्टि वाले, अपनी मिथ्या-दृष्टि के कारण मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होंगे। यह जीव शरीर, वचन और मन से सदाचार करते हुए, सत्पुरुषों की निन्दा न करनेवाले, सम्यक्-दृष्टि वाले, अपनी सम्यक्-दृष्टि के कारण मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, दिव्य, विशुद्ध और अलौकिक चक्षु से जीवों को देखता है।

भिक्षुओ! इस प्रकार, चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त हो जाने पर आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है।

§ २. महप्फल सुत्त (४९. २. २)

ऋद्धिपाद-भावना के महाफल

भिक्षुओ! चार ऋद्धिपाद भावित और अभ्यस्त होने से बड़े अच्छे फल=परिणाम वाले होते हैं।

भिक्षुओ! यह चार ऋद्धि-पाद कैसे भावित और अभ्यस्त हो बड़े अच्छे फल=परिणाम वाले होते हैं?

भिक्षुओ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है—इस तरह मेरा छन्द न तो बहुत कमजोर हो जायगा और न बहुत तेज, न तो अपने भीतर ही भीतर दबा रहेगा और न बाहर इधर-उधर बिखर जायगा। पहले और पीछे का ख्याल रखते हुये विहार करता है। जैसा पहले वैसा पीछे और जैसा पीछे वैसा पहले। जैसा नीचे वैसा ऊपर और जैसा ऊपर वैसा नीचे। जैसा दिन वैसा रात, और जैसा रात वैसा दिन। इस प्रकार खुले चित्त से प्रभा के साथ चित्त की भावना करता है।

वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

भिक्षुओ! इस प्रकार, यह चार ऋद्धि-पाद भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन करता है। एक होकर बहुत हो जाता है···।

भिक्षुओ!···चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है।

§ ३. छन्द सुत्त (४९. २. ३)

चार ऋद्धिपादों की भावना

भिक्षुओ! भिक्षु छन्द (=इच्छा=हौसला) के आधार पर समाधि, चित्त की एकाग्रता पाता है। यह "छन्द-समाधि" कही जाती है।

वह अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये हौसला (=छन्द) करता है, कोशिश करता है, उत्साह करता है, मन लगाता है।

…उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिए…।

…अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिए…।

…उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, वृद्धि, भावना, और पूर्णता के लिए…।

इन्हें 'प्रधान-संस्कार' कहते हैं।

इस प्रकार, यह छन्द हुआ, यह छन्द-समाधि हुई, और यह प्रधान-संस्कार हुए।

भिक्षुओ ! इसको कहते हैं "छन्द-समाधि प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद"।

भिक्षुओ ! भिक्षु वीर्य के आधार पर समाधि, चित्त की एकाग्रता पाता है। यह "वीर्य-समाधि" कही जाती है।

…["छन्द" के समान ही]

भिक्षुओ ! इसको कहते हैं "वीर्य-समाधि, प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद"।

भिक्षुओ ! चित्त के आधार पर समाधि, चित्त की एकाग्रता पाता है। यह 'चित्त-समाधि' कही जाती है।

…भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "चित्त-समाधि, प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद"।

भिक्षुओ ! मीमांसा के आधार पर समाधि, चित्त की एकाग्रता पाता है। यह "मीमांसा-समाधि" कही जाती है।

…भिक्षुओ ! इसी को कहते हैं "मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद"।

§ ४. मोग्गलान सुत्त (४९. २. ४)

मोग्गलान की ऋद्धि

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् श्रावस्ती में मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे।

उस समय, मृगारमाता के प्रासाद के नीचे उद्धत, नीच, चपल, बकबकवे, अशिष्ट बोलनेवाले, मूढ़ स्मृति वाले, असम्प्रज्ञ, असमाहित, भ्रान्त चित्तवाले और असंयत कुछ भिक्षु विहार करते थे।

तब, भगवान् ने आयुष्मान् महामोग्गलान को आमन्त्रित किया, "मोग्गलान ! मृगारमाता के प्रासाद के नीचे यह तुम्हारे गुरुभाई भिक्षु उद्धत…हो विहार करते हैं। जाओ उन्हें कुछ संविग्न कर दो।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् महा-मोग्गलान ने वैसी ऋद्धि लगाई कि अपने पैर के अंगूठे से सारे मृगारमाता के प्रासाद को कँपा दिया, हिला दिया, डोला दिया।

तब, वे भिक्षु संविग्न और रोमाञ्चित हो एक ओर खड़े हो गये। आश्चर्य है रे, अद्भुत है रे ! मृगारमाता का यह प्रासाद इतना गम्भीर, दृढ़ और पुष्ट है, सो भी काँप रहा है, हिल रहा है, डोल रहा है !!

तब, भगवान् जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये, और उनसे बोले, "भिक्षुओ ! तुम ऐसे संविग्न और रोमाञ्चित हो एक ओर क्यों खड़े हो ?"

भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है !! मृगारमाता का यह प्रासाद इतना गम्भीर, दृढ़ और पुष्ट है, सो भी काँप रहा है, हिल रहा है, डोल रहा है !!

भिक्षुओ ! तुम्हें ही संविग्न करने के लिये मोग्गलान भिक्षु ने अपने पैर के अंगूठे से सारे मृगार-माता के प्रासाद को कँपा दिया है, हिला दिया है, डोला दिया है। भिक्षुओ ! क्या समझते हो, किन धर्मों को भावित और अभ्यस्त कर मोग्गलान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है ?

भन्ते ! धर्मों के मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! तो सुनो । भिक्षुओ ! चार ऋद्धिपादों को भावित और अभ्यस्त कर मोग्गलान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है ।

किन चार को ?

भिक्षुओ ! मोग्गलान भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करता है । वीर्य ···। चित्त···। मीमांसा···।···

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धि-पादों को भावित और अभ्यस्त कर मोग्गलान भिक्षु अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन करता है···। ब्रह्मलोक तक को अपने शरीर से वश में किये रहता है ।

भिक्षुओ !···मोग्गलान भिक्षु···चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते स्वयं जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है ।

इसे जान, तुम्हें इसी तरह विहार करना चाहिये ।

§ ५. ब्राह्मण सुत्त (४९. २. ५)

छन्द-प्रहाण का मार्ग

ऐसा मैंने सुना ।

एक समय, आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी में घोषिताराम में विहार करते थे ।

तब, उण्णाभ ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ आया, और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठ, उण्णाभ ब्राह्मण आयुष्मान् आनन्द से बोला, "हे आनन्द ! किस उद्देश्य से श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है ?"

ब्राह्मण ! इच्छा (=छन्द) का प्रहाण करने के लिये भगवान् के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है ।

आनन्द ! क्या छन्द के प्रहाण करने का मार्ग है ?

हाँ ब्राह्मण ! छन्द के प्रहाण करने का मार्ग है ।

आनन्द ! छन्द के प्रहाण करने का कौनसा मार्ग है ?

ब्राह्मण ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है । वीर्य···। चित्त···। मीमांसा । ब्राह्मण ! छन्द के प्रहाण करने का यही मार्ग है ।

आनन्द ! ऐसा होने से तो यह और नजदीक होगा, दूर नहीं । ऐसा तो सम्भव नहीं है कि छन्द से छन्द हराया जा सके ।

ब्राह्मण ! तो, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ, जैसा समझो उत्तर दो ।

ब्राह्मण ! तुम्हें पहले ऐसा छन्द हुआ कि 'आराम चलूँगा' ? सो, तुम्हारा वह छन्द यहाँ आकर शान्त हो गया ?

हाँ ।

ब्राह्मण ! तुम्हें पहले ऐसा वीर्य हुआ कि 'आराम चलूँगा' । सो, तुम्हारा वह वीर्य यहाँ आ कर शान्त हो गया ।

हाँ ।

ब्राह्मण ! तुम्हें पहले ऐसा चित्त हुआ कि 'आराम चलूँगा' सो तुम्हारा वह चित्त यहाँ आकर शान्त हो गया ?

हाँ ।

ब्राह्मण ! तुम्हें पहले ऐसी मीमांसा हुई कि 'आराम चलूँगा' सो, तुम्हारी वह मीमांसा यहाँ आकर कर शान्त हो गई ?

हाँ ।

ब्राह्मण ! वैसे ही, जो भिक्षु अर्हत् क्षीणाश्रव…है, उसका जो पहले अर्हत्-पद पाने का छन्द था वह अर्हत्-पद पा लेने पर शान्त हो जाता है । वीर्य…। चित्त…। मीमांसा…।

ब्राह्मण ! तो, क्या समझते हो, ऐसा होने पर नजदीक होता है या दूर ?

आनन्द ?…मुझे उपासक स्वीकार करें ।

§ ६. पठम समणब्राह्मण सुत्त (४९. २. ६)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जितने श्रमण या ब्राह्मण बड़ी ऋद्धिवाले महानुभाव हो गये हैं, सभी इन चार ऋद्धि-पादों के भावित होने से ही । भविष्य में…। वर्तमान काल में…।

किन चार के ?

छन्द…।…

§ ७. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (४९. २. ७)

चार ऋद्धिपादों की भावना

भिक्षुओ ! जिन श्रमण या ब्राह्मणों ने अतीतकाल में अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन किया है—जैसे, एक होकर अनेक हो जाना…—सभी इन चार ऋद्धि-पादों को भावित और अभ्यस्त करके ही ।

भविष्य…। वर्तमान काल में…।…

§ ८. भिक्खु सुत्त (४९. २. ८)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! भिक्षु चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से आश्रवों के क्षय होने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को देखते ही देखते जान, देख, और प्राप्त कर विहार करता है ।

किन चार के ?…

§ ९. देसना सुत्त (४९. २. ९)

ऋद्धि और ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धि, ऋद्धि-पाद, ऋद्धि-पाद-भावना और ऋद्धि-पाद-भावना-गामी मार्ग का उपदेश करूँगा । उसे सुनो ।

भिक्षुओ ! ऋद्धि क्या है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन करता है । जैसे, एक होकर बहुत हो जाता है…। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'ऋद्धि' ।

भिक्षुओ ! ऋद्धिपाद क्या है ? भिक्षुओ ! ऋद्धियाँ सिद्ध करने का जो मार्ग है उसे ऋद्धि-पाद कहते हैं ।…

भिक्षुओ ! ऋद्धि-पाद-भावना क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त···। ···भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'ऋद्धि-पाद-भावना'।

भिक्षुओ ! ऋद्धि-पाद-भावना-गामी मार्ग क्या है ? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो, सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'ऋद्धि-पाद-भावना-गामी मार्ग'।

§ १०. विभङ्ग सुत्त (४९. २. १०)

चार ऋद्धिपादों की भावना

(क)

भिक्षुओ ! चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम होता है। भिक्षुओ ! चार ऋद्धि-पादों के कैसे भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है—न तो मेरा छन्द बहुत कमजोर होगा और न बहुत तेज··· [देखो पृष्ठ ७४०]

(ख)

भिक्षुओ ! बहुत कमजोर (=अति लीन) छन्द क्या है ? भिक्षुओ ! जो कुसीद-भाव (=चित्त का हलका-पन) से युक्त छन्द। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'बहुत कमजोर छन्द'।

भिक्षुओ ! बहुत तेज (=अतिप्रगृहीत) छन्द क्या है ? भिक्षुओ ! जो औद्धत्य से युक्त छन्द। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'बहुत तेज छन्द'।

भिक्षुओ ! अपने भीतर ही दबा छन्द क्या है ? भिक्षुओ ! जो भारीपन और आलस्य से युक्त छन्द। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'अपने भीतर ही दबा (=अध्यात्म संक्षिप्त) छन्द'।

भिक्षुओ ! बाहर इधर-उधर बिखरा छन्द क्या है ? भिक्षुओ ? जो बाहर पाँच काम-गुणों में लगा छन्द। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं 'बाहर इधर-उधर बिखरा छन्द'।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु पीछे और पहले का ख्याल करके विहार करता है...जैसा पीछे वैसा पहले···? भिक्षुओ ! पीछे और पहले भिक्षु की संज्ञा (=ख्याल) प्रज्ञा से अच्छी तरह गृहीत होती है, मन में लाई हुई होती है, धारण कर ली गई होती है, पैठी होती है। भिक्षुओ ! इस तरह, भिक्षु पीछे और पहले का ख्याल करके विहार करता है जैसा पीछे वैसा पहले, और जैसा पहले वैसा पीछे।

भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु जैसा नीचे वैसा ऊपर और जैसा ऊपर वैसा नीचे विहार करता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु तलवे से ऊपर और केश से नीचे, चमड़े से लपेटे हुए अपने शरीर को नाना प्रकार की गन्दगियों से भरा देखकर चिन्तन करता है—इस शरीर में हैं केश, लोम, नख, दन्त, त्वक्, मांस, धमनियाँ, हड्डियाँ, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), पप्फास (=फुप्फुस), आँत, बड़ी आँत, उदरस्थ, मैला, पित्त, कफ, पीब, लहू, पसीना, चर्बी, आँसू, तेल, थूक, पोंटा, लस्सी, मूत्र। भिक्षुओ ! इस प्रकार, भिक्षु जैसा नीचे वैसा ऊपर और जैसा ऊपर वैसा नीचे विहार करता है।

भिक्षुओ ! कैसे, भिक्षु जैसा दिन वैसा रात और जैसा रात वैसा दिन विहार करता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु जिन आकार, लिङ्ग और निमित्त से दिन में छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है, उन्हीं आकार, लिङ्ग, और निमित्त से रात में भी वही भावना करता है।···। भिक्षुओ ! इस प्रकार, भिक्षु जैसा दिन वैसा रात और जैसा रात वैसा दिन विहार करता है।

भिक्षुओ ! कैसे, भिक्षु खुले चित्त से प्रभावाले चित्त की भावना करता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु को

आलोक-संज्ञा और दिवा-संज्ञा अच्छी तरह गृहीत और अधिष्ठित होती हैं। भिक्षुओ ! इस प्रकार, भिक्षु खुले चित्त से प्रभावाले चित्त की भावना करता है।

(ग)

भिक्षुओ ! बहुत कमजोर वीर्य क्या है ? भिक्षुओ ! जो कुसीद-भाव से युक्त वीर्य। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं बहुत कमजोर वीर्य।

…['छन्द' के समान ही 'वीर्य' का भी समझ लेना चाहिये]

(घ)

भिक्षुओ ! बहुत कमजोर चित्त क्या है ?…

['छन्द' के समान ही 'चित्त' का भी समझ लेना चाहिये]

(ङ)

भिक्षुओ ! बहुत कमजोर मीमांसा क्या है ?…

['छन्द' के समान ही]

प्रासाद-कम्पन वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

अयोगुल वर्ग

§ १. मग्ग सुत्त (४९. ३. १)

ऋद्धिपाद-भावना का मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! बुद्धत्व लाभ करने के पहले मेरे बोधिसत्त्व ही रहते मेरे मन में यह हुआ—ऋद्धि-पाद की भावना का मार्ग क्या है ?

भिक्षुओ ! तब, मेरे मन में यह हुआ—वह भिक्षु छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धि-पाद की भावना करता है—यह मेरा छन्द न तो बहुत कमजोर होगा और न बहुत तेज···।

वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धि-पादों के भावित और अभ्यस्त होने से भिक्षु नाना प्रकार की ऋद्धियों का साधन करता है। एक भी होकर बहुत हो जाता है···।

···चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति की···प्राप्त कर विहार करता है।

[छः अभिज्ञाओं का विस्तार कर लेना चाहिये]

§ २. अयोगुल सुत्त (४९. ३. २)

शरीर से ब्रह्मलोक जाना

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! क्या भगवान् ऋद्धि के द्वारा मनोमय शरीर से ब्रह्मलोक तक जा सकते हैं ?"

हाँ आनन्द ! जा सकता हूँ।

भन्ते ! क्या भगवान् ऋद्धि के द्वारा इस चार महाभूतों के बने शरीर से ब्रह्मलोक तक जा सकते हैं ?

'हाँ आनन्द ! जा सकता हूँ।

भन्ते ! भगवान् ऋद्धि के द्वारा मनोमय शरीर से और चार महाभूतों के बने शरीर से भी ब्रह्म-लोक तक जा सकते हैं यह बड़ा आश्चर्य और अद्भुत है।

आनन्द ! बुद्धों की बात आश्चर्य-जनक होती ही है। बुद्ध आश्चर्य-जनक धर्मों से युक्त होते हैं। आनन्द ! बुद्ध अपूर्व होते हैं। बुद्ध अपूर्व धर्मों से युक्त होते हैं।

आनन्द ! जिस समय बुद्ध चित्त को काया में और काया को चित्त में लगाते हैं, तथा काया में सुख-संज्ञा और लघु-संज्ञा करके विहार करते हैं, उस समय उनका शरीर बहुत हलका हो जाता है, मृदु, सुखद और देदीप्यमान।

आनन्द ! जैसे, दिन भर का तपाया लोहे का गोला हलका हो जाता है, मृदु, सुखद और देदीप्य-मान वैसे ही, जिस समय बुद्ध चित्त को काया में और काया को चित्त में···।

आनन्द !···उस समय बुद्ध का शरीर बिना किसी बल के लगाये पृथ्वी से आकाश में उठ जाता

है। वे अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन करते हैं—एक हो करके बहुत···ब्रह्मलोक तक को अपने शरीर से वश में कर लेते हैं।

आनन्द ! जैसे, रूई या कपास का फाहा बड़ी आसानी से पृथ्वी से आकाश में उठ जाता है। आनन्द ! वैसे ही,···उस समय बुद्ध का शरीर···।

§ ३. भिक्खु सुत्त (४९. ३. ३)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धिपाद चार हैं। कौन से चार ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

भिक्षुओ ! भिक्षु इन चार ऋद्धिपादों के भावित और अभ्यस्त होने से आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को अपने देखते ही देखते जान, देख और प्राप्त कर विहार करता है।

§ ४. सुद्धक सुत्त (४९. ३. ४)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धिपाद चार हैं। कौन से चार ?

छन्द···। वीर्य···। चित्त···। मीमांसा···।

§ ५. पठम फल सुत्त (४९. ३. ५)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धिपाद चार हैं।···

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धिपादों के भावित और अभ्यस्त होने से दो में से एक फल अवश्य सिद्ध होता है—देखते ही देखते, परम-ज्ञान की प्राप्ति, या उपादान के कुछ शेष रहने से अनागामिता।

§ ६. दुतिय फल सुत्त (४९. ३. ६)

चार ऋद्धिपाद

भिक्षुओ ! ऋद्धि-पाद चार हैं।···

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धिपादों के भावित और अभ्यस्त होने से सात बड़े अच्छे फल=परिणाम हो सकते हैं। कौन से सात ?

देखते ही देखते परम-ज्ञान का लाभ कर लेता है। यदि नहीं तो मरने के समय से परम-ज्ञान का लाभ करता है। यदि नहीं, तो पाँच नीचेवाले संयोजनों के क्षय हो जाने से बीच ही में परिनिर्वाण पानेवाला होता है···[देखो ४६. २. ५]

§ ७. पठम आनन्द सुत्त (४९. ३. ७)

ऋद्धि और ऋद्धिपाद

श्रावस्ती···जेतवन।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! ऋद्धि क्या है; ऋद्धि-पाद क्या

है; ऋद्धि-पाद-भावना क्या है; और ऋद्धि-पाद-भावना-गामी मार्ग क्या है ?"

…[देखो ४९. २. ९]

§ ८. दुतिय आनन्द सुत्त (४९. ३. ८)

ऋद्धि और ऋद्धिपाद

…एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! ऋद्धि क्या है…?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।…[देखो ४९. २. ९]

§ ९. पठम भिक्खु सुत्त (४९. ३. ९)

ऋद्धि और ऋद्धिपाद

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये…। एक ओर बैठ, वे भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! ऋद्धि क्या है…?"

…[देखो ४९. २. ९]

§ १०. दुतिय भिक्खु सुत्त (४९. ३. १०)

ऋद्धि और ऋद्धिपाद

…एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! ऋद्धि क्या है…?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

…[देखो ४९. २. ९]

§ ११. मोग्गलान सुत्त (४९. ३. ११)

मोग्गलान की ऋद्धिमत्ता

भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! क्या समझते हो, किन धर्मों के भावित और अभ्यस्त होने से मोग्गलान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है ?

भन्ते ! धर्मके मूल भगवान् ही…।

भिक्षुओ ! चार ऋद्धिपादों के भावित और अभ्यस्त होने से मोग्गलान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है ।

किन चार के ?

छन्द…। वीर्य…। चित्त…। मीमांसा…।

भिक्षुओ ! इन चार ऋद्धिपादों के भावित और अभ्यस्त होने से मोग्गलान भिक्षु अनेक प्रकार की ऋद्धियों का साधन करता है—एक होकर बहुत हो जाता है…।

भिक्षुओ !…मोग्गलान भिक्षु…चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को…प्राप्त कर विहार करता है ।

§ १२. तथागत सुत्त (४९. ३. १२)

बुद्ध की ऋद्धिमत्ता

…भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! क्या समझते हो, किन धर्मों के भावित और अभ्यस्त होने से बुद्ध इतने बड़े ऋद्धिशाली और महानुभाव हुए हैं ?

…['मोग्गलान' के स्थान पर 'बुद्ध' करके ऊपर जैसा ही] ।

अयोगुल वर्ग समाप्त

चौथा भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (४९. ४. १-१२)

निर्वाण की ओर अग्रसर होना

भिक्षुओ ! जैसे गंगा नदी पूरब की ओर बहती है वैसे ही इन चार ऋद्धिपादों को भावित और अभ्यस्त करने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।...

[इसी तरह, ऋद्धिपाद के अनुसार अप्रमाद-वर्ग, बलकरणीय-वर्ग, एषण-वर्ग और ओघ-वर्ग का मार्ग-संयुत्त के ऐसा विस्तार कर लेना चाहिये]।

गङ्गा पेय्याल समाप्त

ऋद्धिपाद-संयुत्त समाप्त

आठवाँ परिच्छेद

५०. अनुरुद्ध-संयुत्त

पहला भाग

रहोगत वर्ग

§ १. पठम रहोगत सुत्त (५०. १. १)

स्मृति-प्रस्थानों की भावना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन नामक आराम में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् अनुरुद्ध को एकान्त में एकाग्र-चित्त होने पर मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ। जिन किन्हीं के चार स्मृति-प्रस्थान रुक गये, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य मार्ग भी रुक गया। और, जिन किन्हीं के चार स्मृति-प्रस्थान आरब्ध (=परिपूर्ण) हो गये, उनका सम्यक्-दुःख-क्षय-गामी आर्य मार्ग भी आरब्ध हो गया।

तब, आयुष्मान् महा-मोग्गलान आयुष्मान् अनुरुद्ध के मन के वितर्क को अपने चित्त से जान, जैसे बलवान पुरुष समेटी बाँह को फैलाये या फैलायी बाँह को समेटे, वैसे ही आयुष्मान् अनुरुद्ध के सम्मुख प्रगट हुए।

तब, आयुष्मान् महा-मोग्गलान ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यह कहा—'आवुस अनुरुद्ध ! कैसे भिक्षु के चार स्मृति-प्रस्थान आरब्ध (=पूर्ण) होते हैं ?'

आवुस ! भिक्षु उद्योगी, सम्प्रज्ञ, स्मृतिमान्, संसार में लोभ तथा वैर-भाव को छोड़कर भीतरी काया में समुदय-धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।···भीतरी काया में व्यय-धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है। भीतरी काया में समुदय-व्यय-धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

···बाहरी काया में व्यय-धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है···।

···भीतरी और बाहरी काया में···।···●

यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल में प्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'प्रतिकूल में अप्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल और प्रतिकूल में प्रतिकूल की संज्ञा से विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है। यदि वह चाहता है कि 'अप्रतिकूल और प्रतिकूल दोनों को छोड़, उपेक्षा-पूर्वक स्मृतिमान् और संप्रज्ञ होकर विहार करूँ' तो वैसा ही विहार करता है।

भीतरी वेदनाओं में···।···चित्त में···।···धर्मों में···।

आवुस ! ऐसे भिक्षु के चार स्मृति-प्रस्थान आरब्ध होते हैं।

§ २. दुतिय रहोगत सुत्त (५०. १. २)

चार स्मृति-प्रस्थान

श्रावस्ती···जेतवन···।

···तब, आयुष्मान् महा-मोग्गलान ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यह कहा—'आवुस अनुरुद्ध ! कैसे भिक्षु के चार स्मृति-प्रस्थान आरब्ध (=पूर्ण) होते हैं ?'

भिक्षु उद्योगी, सम्प्रज्ञ, स्मृतिमान्, संसार में लोभ तथा वैर-भाव को छोड़कर भीतरी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।···बाहरी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।···भीतरी-बाहरी काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।···

···वेदनाओं में···।···चित्त में···।···धर्मों में···।

आवुस ! ऐसे भिक्षु के चार स्मृति-प्रस्थान आरब्ध (=पूर्ण) होते हैं।

§ ३. सुतनु सुत्त (५०. १. ३)

स्मृति-प्रस्थानों की भावना से अभिज्ञा-प्राप्ति

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में सुतनु के तीर पर विहार कर रहे थे।

तब, बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे, वहाँ गये। और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यह कहा—'आवुस अनुरुद्ध ! किन धर्मों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से आपने महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है ?'

आवुस ! चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से मैंने महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है। किन चार ? आवुस ! मैं उद्योगी, सम्प्रज्ञ, स्मृतिमान् हो सांसारिक लोभ और वैर-भाव को छोड़कर काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता हूँ···वेदनाओं में···। चित्त में···। धर्मों में···। आवुस ! मैंने इन्हीं चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाने से महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है।

आवुस ! मैंने इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने से···हीन धर्म को हीन के रूप में जाना। मध्यम धर्म को मध्यम के रूप में जाना। प्रणीत (=उत्तम) धर्म को प्रणीत के रूप में जाना।

§ ४. पठम कण्टकी सुत्त (५०. १. ४)

चार स्मृति-प्रस्थान प्राप्त कर विहरना

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महा-मोग्गलान साकेत में कण्टकी-वन* में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महा-मोग्गलान सन्ध्या समय ध्यान से उठ कर जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे, वहाँ गये और, कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्र ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यह कहा—'आवुस अनुरुद्ध ! शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त करके विहरना चाहिए ?'

आवुस सारिपुत्र ! शैक्ष्य भिक्षु को चार स्मृति-प्रस्थानों को प्राप्त कर विहरना चाहिए। किन चार ?

···काया में कायानुपश्यी···। वेदनाओं में···। चित्त में···। धर्मों में···।

---

* महाकरमण्ड वन में—अट्ठकथा।

§ ५. दुतिय कण्टकी सुत्त (५०. १. ५)

चार स्मृति-प्रस्थान

साकेत…।

…'आवुस अनुरुद्ध ! अ-शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त कर विहरना चाहिए ?'

…चार स्मृति-प्रस्थानों को…।…।

[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ६. ततिय कण्टकी सुत्त (५०. १. ६)

सहस्र-लोक को जानना

साकेत…।

…आवुस अनुरुद्ध ! किन धर्मों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से आपने महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है ?

चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने से…। किन चार ?…

आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाने से ही मैं सहस्र लोक‡ को जानता हूँ।

§ ७. तण्हक्खय सुत्त (५०. १. ७)

स्मृति-प्रस्थान-भावना से तृष्णा का क्षय

श्रावस्ती…।

वहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।…आवुस ! चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से तृष्णा का क्षय होता है। किन चार ?

आवुस ! भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।…। वेदनाओं में…। चित्त में…। धर्मों में…।

आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाने से तृष्णा का क्षय होता है।

§ ८. सलळागार सुत्त (५०. १. ८)

गृहस्थ होना सम्भव नहीं

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में सलळागार* में विहार करते थे।

वहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया।…

आवुस ! जैसे गंगा नदी पूरब की ओर बहती है। तब, आदमियों का एक जत्था कुदाल और टोकरी लिये आये और कहे—हम लोग गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा देंगे।

आवुस ! तो क्या समझते हो, वे गंगा नदी को पच्छिम की ओर बहा सकेंगे ?

नहीं आवुस !

सो क्यों ?

---

‡ इससे स्थविर का सतत-विहार प्रगट है। स्थविर प्रातः मुख धोकर भूत-भविष्य के सहस्र कल्पों का अनुस्मरण करते थे। वर्तमानकालिक दस सहस्री चक्रवाल (= ब्रह्माण्ड) उन्हें एक चिन्तन मात्र में दिखाई देने लगते थे—अट्ठकथा।

* द्वार पर सलळ वृक्ष होने के कारण इस विहार का नाम सलळागार पड़ा था।

—अट्ठकथा

आवुस ! गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, उसे पच्छिम बहा देना आसान नहीं। वे लोग व्यर्थ में परेशानी उठावेंगे।

आवुस ! वैसे ही, चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने वाले, चार स्मृति-प्रस्थानों को बढ़ानेवाले भिक्षु को राजा, राज-मन्त्री, मित्र, सलाहकार, या कोई बन्धु-बान्धव सांसारिक भोगों का लोभ दिखा कर बुलावें—अरे ! यहाँ आओ, पीले कपड़े में क्या रखा है, क्या माथा मुड़ा कर घूम रहे हो ! आओ, घर पर रह कामों को भोगो और पुण्य करो।

तो आवुस ! यह सम्भव नहीं कि वह शिक्षा को छोड़ कर गृहस्थ बन जायगा। सो क्यों ? आवुस ! ऐसा सम्भव नहीं है कि दीर्घकाल तक जो चित्त विवेक की ओर लगा रहा है, वह गृहस्थी में पड़ेगा।

आवुस ! भिक्षु कैसे चार स्मृति-प्रस्थान की भावना करता है ?···

भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।···वेदनाओं में···।···चित्त में···। धर्मों में···।

§ ९. सब्ब सुत्त (५०. १. ९)

अनुरुद्ध द्वारा अर्हत्व-प्राप्ति

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् सारिपुत्र वैशाली में अम्बपालि के आम्रवन में विहार करते थे।

···एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्र ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यह कहा—

आवुस अनुरुद्ध ! आपकी इन्द्रियाँ निर्मल हैं, मुख का रंग परिशुद्ध है और स्वच्छ है। आवुस अनुरुद्ध ! इस समय आप प्रायः किस विहार से विहरते हैं ?

आवुस ! मैं इस समय प्रायः चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित-चित्त होकर विहरता हूँ। किन चार ?

आवुस ! काया में कायानुपश्यी होकर विहरता हूँ।···। वेदनाओं में··· चित्त में···। धर्मों में···।

आवुस ! जो कोई भिक्षु अर्हत्, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचर्य-वास पूर्ण किया हुआ, कृतकृत्य, भार उतरा हुआ, निर्वाण-प्राप्त, भव-बन्धनरहित, भली प्रकार जानकर विमुक्त है, वह इन चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित-चित्त होकर प्रायः विहार करता है।

आवुस ! हमें लाभ है ! आवुस ! हमें सु-लाभ है !! जो कि मैंने आयुष्मान् अनुरुद्ध के मुख से ही उत्तम वचन कहते सुना।

§ १०. बाल्हगिलान सुत्त (५०. १. १०)

अनुरुद्ध का बीमार पड़ना

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अन्धवन में बड़े बीमार पड़े थे।

तब, बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् अनुरुद्ध से यह बोले—'आयुष्मान् अनुरुद्ध को किस विहार से विहरते हुए उत्पन्न हुई शारीरिक दुःख-वेदना चित्त को पकड़कर नहीं रहती है ?'

आवुस ! चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठित-चित्त होकर विहरते समय मेरे चित्त को उत्पन्न हुई शारीरिक दुःखवेदना पकड़ कर नहीं रहती है। किन चार ?

आवुस ! मैं काया में कायानुपश्यी होकर विहरता हूँ।···वेदनाओं में···। चित्त में···। धर्मों में···।

रहोगत वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

सहस्र वर्ग

§ १. सहस्स सुत्त (५०. २. १)

हजार कल्पों को स्मरण करना

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध थे वहाँ गये और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्ध से ऐसा बोले—'आयुष्मान् अनुरुद्ध ने किन धर्मों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया है?'

···चार स्मृति-प्रस्थानों की··· ।

आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाने से मैं हजार कल्पों का अनुस्मरण करता हूँ।

§ २. पठम इद्धि सुत्त (५०. २. २)

ऋद्धि

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाने से मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूँ। एक होकर बहुत भी हो जाता हूँ।···ब्रह्मलोक तक को काया से वश में कर लेता हूँ।

§ ३. दुतिय इद्धि सुत्त (५०. २. ३)

दिव्य श्रोत्र

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं अलौकिक शुद्ध दिव्य श्रोत्र (=कान) से दोनों (प्रकार के) शब्द सुनता हूँ, देवताओं के भी, मनुष्यों के भी, दूर के भी और निकट के भी।

§ ४. चेतोपरिच्च सुत्त (५०. २. ४)

पराये के चित्त को जानने का ज्ञान

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं दूसरे सत्वों के, दूसरे लोगों के चित्त को अपने चित्त से जान लेता हूँ—राग सहित चित्त को रागसहित जान लेता हूँ···विमुक्त चित्त को विमुक्त चित्त जान लेता हूँ।

§ ५. पठम ठान सुत्त (५०. २. ५)

स्थान का ज्ञान होना

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से स्थान को स्थान के रूप में और अ-स्थान को अ-स्थान के रूप में यथार्थतः जान लेता हूँ।

§ ६. दुतिय ठान सुत्त (५०. २. ६)

दिव्य चक्षु

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं भूत, भविष्यत् और वर्तमान के कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु के अनुसार यथार्थतः जानता हूँ।

§ ७. पटिपदा सुत्त (५०. २. ७)

मार्ग का ज्ञान

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं सर्वत्र-गामी-प्रतिपद् (=मार्ग) को यथार्थतः जानता हूँ।

§ ८. लोक सुत्त (५०. २. ८)

लोक का ज्ञान

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं अनेक-धातु, नाना-धातुवाले लोक को यथार्थतः जानता हूँ।

§ ९. नानाधिमुत्ति सुत्त (५०. २. ९)

धारणा को जानना

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं प्राणियों की नाना प्रकार की अधिमुक्ति (=धारणा) को जानता हूँ।

§ १०. इन्द्रिय सुत्त (५०. २. १०)

इन्द्रियों का ज्ञान

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं दूसरे सत्त्वों के, दूसरे व्यक्तियों के इन्द्रिय-विभिन्नता को यथार्थतः जानता हूँ।

§ ११. ज्ञान सुत्त (५०. २. ११)

समापत्ति का ज्ञान

···आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना···से मैं ध्यान-विमोक्ष-समाधि-समापत्ति के संक्लेश, पारिशुद्धि और उत्थान को यथार्थतः जानता हूँ।

§ १२. पठम विज्जा सुत्त (५०. २. १२)

पूर्वजन्मों का स्मरण

…आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना…से मैं अनेक पूर्व जन्मों को स्मरण करता हूँ। जैसे, एक जन्म, दो…। इस तरह आकार प्रकार के साथ मैं अनेक पूर्व जन्मों को स्मरण करता हूँ।

§ १३. दुतिय विज्जा सुत्त (५०. २. १३)

दिव्य चक्षु

…आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना…से मैं शुद्ध और अलौकिक दिव्य चक्षु से… अपने-अपने कर्म के अनुसार अवस्था को प्राप्त प्राणियों को जान लेता हूँ।

§ १४. ततिय विज्जा सुत्त (५०. २. १४)

दुःख-क्षय ज्ञान

…आवुस ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना…से मैं आश्रवों के क्षय हो जाने से आश्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं ज्ञान से साक्षात्कार करके प्राप्त कर विहार करता हूँ।

सहस्र वर्ग समाप्त

अनुरुद्ध-संयुक्त समाप्त

नवाँ परिच्छेद

५१. ध्यान-संयुत्त

पहला भाग

गङ्गा पेय्याल

§ १. पठम सुद्धिय सुत्त (५१. १. १)

चार ध्यान

श्रावस्ती···।

भिक्षुओ ! चार ध्यान हैं। कौन चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु कामों (=सांसारिक भोगों की इच्छा) को छोड़, पापों को छोड़ स-वितर्क स-विचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

वितर्क और विचार के शान्त हो जाने से भीतरी प्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त किन्तु वितर्क और विचार से रहित समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख वाले दूसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है।

प्रीति और विराग से भी उपेक्षायुक्त (=अन्यमनस्क) हो स्मृति और संप्रजन्य से युक्त हो विहार करता है। और शरीर से आर्यों (=पण्डितों) के कहे हुए सभी सुखों का अनुभव करता है; और उपेक्षा के साथ, स्मृतिमान् और सुख-विहारवाले तीसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है।

सुख को छोड़, दुःख को छोड़ पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से न-दुःख-न-सुखवाले, तथा स्मृति और उपेक्षा से शुद्ध चौथे ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

भिक्षुओ ! ये चार ध्यान हैं।

भिक्षुओ ! जैसे गंगा नदी पूरब की ओर बहती है, भिक्षुओ ! वैसे ही भिक्षु चार ध्यानों की भावना करते, इन्हें बढ़ाते निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

भिक्षुओ ! भिक्षु किन चार ध्यानों की भावना करते···?

भिक्षुओ !···प्रथम ध्यान···। दूसरे ध्यान···। तीसरे ध्यान···। चौथे ध्यान···।

§ २-१२. सब्बे सुत्तन्ता (५१. १. २-१२)

['स्मृति प्रस्थान' की भाँति शेष सबका विस्तार जानना चाहिये।]

गङ्गा पेय्याल समाप्त

दूसरा भाग

अप्रमाद वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (५१. २. १-१०)

अप्रमाद

[सम्पूर्ण वर्ग 'मार्ग-संयुत्त' के 'अप्रमाद-वर्ग' ४३'५ के समान जानना चाहिये। देखो, पृष्ठ ६४०]।

अप्रमाद वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

बलकरणीय वर्ग

§ १-१२. सब्बे सुत्तन्ता (५१. ३. १-१२)

बल

भिक्षुओ ! जैसे, जितने बल से कर्म किये जाते हैं सभी पृथ्वी के आधार पर ही खड़े होकर किये जाते हैं...। [विस्तार करना चाहिये]।

[सम्पूर्ण वर्ग 'मार्ग संयुत्त' के बलकरणीय-वर्ग ४३. ६ के समान जानना चाहिये। देखो, पृष्ठ ६४२]।

बलकरणीय वर्ग समाप्त

चौथा भाग

एषण वर्ग

§ १-१०. सब्बे सुत्तन्ता (५१. ४. १-१०)

तीन एषणायें

भिक्षुओ ! एषणा तीन हैं।...

[सम्पूर्ण वर्ग 'मार्ग संयुत्त' के 'एषण वर्ग, ४३. ७ के समान जानना चाहिये। देखो, पृष्ठ ६४६]।

एषण वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

ओघ वर्ग

§ १. ओघ सुत्त (५१. ५. १)

चार बाढ़

भिक्षुओ ! बाढ़ चार हैं। कौन से चार ? काम-बाढ़, भव-बाढ़, मिथ्या-दृष्टि-बाढ़, अविद्या-बाढ़, ।... [विस्तार करना चाहिये]।

§ २-९. योग सुत्त (५१. ५. २-९)

चार योग

[सूत्र २ से ९ तक 'मार्ग संयुत्त' के 'ओघ वर्ग' ४३.८ के सूत्र २ से ९ तक के समान जानना चाहिये। देखो, पृष्ठ ६४८-६४९]।

§ १०. उद्धम्भागिय सुत्त (५१. ५. १०)

ऊपरी पाँच संयोजन

भिक्षुओ ! ऊपरवाले पाँच संयोजन हैं। कौन से पाँच ? रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।...

भिक्षुओ ! इन पाँच ऊपरवाले संयोजनों को जानने, अच्छी तरह जानने, क्षय और प्रहाण के लिये चार ध्यानों की भावना करनी चाहिये। किन चार ?

भिक्षुओ ! भिक्षु कामों को छोड़...प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।...

[शेष "५१. १. १" के समान]।

ओघ वर्ग समाप्त

ध्यान-संयुत्त समाप्त

दसवाँ परिच्छेद

५२. आनापान-संयुत्त

पहला भाग

एकधर्म वर्ग

§ १. एकधम्म सुत्त (५२. १. १)

आनापान-स्मृति

श्रावस्ती···जेतवन···।

···भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! एक धर्म के भावित और अभ्यस्त हो जाने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम (आनिसंस) होता है। किस एक धर्म के ? आनापान-स्मृति के। भिक्षुओ ! कैसे आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त हो जाने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में, या वृक्ष के नीचे, या शून्य गृह में आसन जमा, शरीर को सीधा किये, सावधान होकर बैठता है। वह ख्याल से साँस लेता है, और ख्याल से साँस छोड़ता है।

वह लम्बी साँस लेते हुये जानता है कि, 'मैं लम्बी साँस ले रहा हूँ'। लम्बी साँस छोड़ते हुये जानता है कि, 'मैं लम्बी साँस छोड़ रहा हूँ'। छोटी साँस लेते हुये जानता है कि, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'। छोटी साँस छोड़ते हुये जानता है कि, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ'।

सारे शरीर पर ध्यान रखते हुये साँस लूँगा—ऐसा सीखता है। सारे शरीर पर ध्यान रखते हुये साँस छोडूँगा—ऐसा सीखता है। काय-संस्कार (=आश्वास-प्रश्वास की क्रिया) को शान्त करते हुये साँस लूँगा—ऐसा सीखता है। काय-संस्कार को शान्त करते हुये साँस छोडूँगा—ऐसा सीखता है।

प्रीति का अनुभव करते हुये साँस लूँगा—ऐसा सीखता है। प्रीति का अनुभव करते हुये साँस छोडूँगा—ऐसा सीखता है। सुख का अनुभव करते हुए साँस लूँगा—ऐसा सीखता है। सुख का अनुभव करते हुए साँस छोडूँगा—ऐसा सीखता है।

चित्त-संस्कार (= नाना प्रकार की चित्तोत्पत्ति) का अनुभव करते हुए साँस छोडूँगा···। चित्त-संस्कार को शान्त करते हुए साँस लूँगा···, साँस छोडूँगा···। चित्त का अनुभव करते हुए साँस लूँगा···, साँस छोडूँगा···।

चित्त को प्रमुदित करते हुए···। चित्त को समाहित करते हुए···। चित्त को विमुक्त करते हुए···।

अनित्यता का चिन्तन करते हुए···। विराग का चिन्तन करते हुए···। निरोध का चिन्तन करते हुए···। त्याग (= प्रतिनिसर्ग) का चिन्तन करते हुए···।

भिक्षुओ ! इस तरह अनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त हो जाने से बड़ा अच्छा फल = परिणाम होता है।

§ २. बोज्झङ्ग सुत्त (५२. १. २)

आनापान-स्मृति

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! कैसे आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल = परिणाम होता है ?

भिक्षुओ ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाले आनापान-स्मृति से युक्त स्मृति-संबोध्यंग की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।··· आनापान-स्मृति से युक्त धर्म-विचय-सम्बोध्यंग···, वीर्य···, प्रीति···, प्रश्रब्धि···, समाधि···, उपेक्षा-सम्बोध्यंग की भावना करता है, जिससे मुक्ति सिद्ध होती है ।

भिक्षुओ ! इस तरह, आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल = परिणाम होता है ।

§ ३. सुद्धक सुत्त (५२. १. ३)

आनापान-स्मृति

श्रावस्ती···जेतवन···।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में···सावधान होकर बैठता है ।···[५२.१.१ के जैसा ही]

§ ४. पठम फल सुत्त (५२. १. ४)

आनापान-स्मृति-भावना का फल

[५२. १. १ के जैसा ही]

भिक्षुओ ! इस तरह, आनापान-स्मृति भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम होता है ।

भिक्षुओ ! इस प्रकार आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से दो में से एक फल अवश्य सिद्ध होता है—या तो अपने देखते ही देखते परम-ज्ञान का साक्षात्कार या उपादान के कुछ शेष रहने से अनागामिता ।

§ ५. दुतिय फल सुत्त (५२. १. ५)

आनापान-स्मृति-भावना का फल

···भिक्षुओ ! इस प्रकार आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से सात फल सिद्ध होते हैं ।

कौन से सात ?

देखते ही देखते पैठकर परम-ज्ञान को देख लेता है । यदि यह नहीं तो मृत्यु के समय परम-ज्ञान को देख लेता है ।···[देखो ४६. २. ५]

भिक्षुओ ! इस प्रकार आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से यह सात फल सिद्ध होते हैं ।

§ ६. अरिट्ठ सुत्त (५२. १. ६)

भावना-विधि

श्रावस्ती···जेतवन··· ।

···भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! तुम आनापान-स्मृति की भावना करो ।"

यह कहने पर आयुष्मान् अरिट्ठ भगवान् से बोले, "भन्ते ! मैं आनापान-स्मृति की भावना करता हूँ" ।

अरिट्ठ ! तुम आनापान-स्मृति की भावना कैसे करते हो ?

भन्ते ! अतीत के कामों के प्रति मेरी जो चाह थी वह प्रहीण हो गई, और आनेवाले कामों के प्रति मेरी कोई चाह रह नहीं गई । आध्यात्म और बाह्य धर्मों में विरोध के सारे भाव (= प्रतिघ-संज्ञा) दबा दिये गये हैं । भन्ते ! सो मैं ख्याल से साँस लेता हूँ, और ख्याल से साँस छोड़ता हूँ । भन्ते ! इसी प्रकार मैं आनापान-स्मृति की भावना करता हूँ ।

अरिट्ठ ! मैं कहता हूँ कि यही आनापान-स्मृति है; यह आनापान-स्मृति नहीं है सो नहीं कहता । तो भी, आनापान-स्मृति जैसे विस्तार से परिपूर्ण होती है उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् अरिट्ठ ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् बोले, "अरिट्ठ ! कैसे आनापान-स्मृति विस्तार से परिपूर्ण होती है ?

"अरिट्ठ ! भिक्षु आरण्य में···[देखो "५२. १. १"]

"अरिट्ठ ! इस तरह, आनापान-स्मृति विस्तार से परिपूर्ण होती है ।"

§ ७. कप्पिन सुत्त (५२. १. ७)

चंचलता-रहित होना

श्रावस्ती···जेतवन··· ।

उस समय, आयुष्मान् महा-कप्पिन पास ही में आसन जमाये, शरीर को सीधा किये सावधान हो बैठे थे ।

भगवान् ने आयुष्मान् महा-कप्पिन को पास ही में आसन जमाये, शरीर को सीधा किये सावधान होकर बैठे देखा । देखकर, भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! तुम इस भिक्षु के शरीर को चञ्चल या हिलते-डोलते देखते हो ?"

भन्ते ! जब कभी हम इन आयुष्मान् को संघ के बीच या एकान्त में अकेले बैठे देखते हैं, इनके शरीर को चंचल या हिलते-डोलते नहीं पाते हैं ।

भिक्षुओ ! जिस समाधि के भावित और अभ्यस्त हो जाने से शरीर तथा मन में चंचलता या हिलना-डोलना नहीं होता है उसे इसने पूरा-पूरा लाभ कर लिया है ।

भिक्षुओ ! किस समाधि के भावित और अभ्यस्त हो जाने से शरीर तथा मन में चंचलता या हिलना-डोलना नहीं होता है ।

भिक्षुओ ! आनापान-समाधि के भावित और अभ्यस्त हो जाने से शरीर तथा मनमें चञ्चलता या हिलना-डोलना नहीं होता है।

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में…[देखो "५२. १. १"]।

भिक्षुओ ! इस प्रकार आनापान-समाधि के भावित और अभ्यस्त हो जाने से शरीर तथा मन में चंचलता या हिलना-डोलना नहीं होता है।

§ ८. दीप सुत्त (५२. १. ८)

आनापान-समाधि की भावना

श्रावस्ती…जेतवन…।

…भिक्षुओ ! आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल = परिणाम होता है।

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में…।

भिक्षुओ ! इस प्रकार आनापान-स्मृति के भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल= परिणाम होता है।

भिक्षुओ ! मैं भी बुद्धत्व लाभ करने के पहले, बोधि-सत्व रहते हुए ही इस समाधि को प्राप्त हो विहार किया करता था। भिक्षुओ ! इस प्रकार विहार करते हुए न तो मेरा शरीर थकता था और न मेरी आँखें। उपादान-रहित हो मेरा चित्त आश्रवों से मुक्त हो गया था।

भिक्षुओ ! इसलिये, यदि कोई भिक्षु चाहे कि न तो मेरा शरीर और न मेरी आँखें थकें, तथा मेरा चित्त उपादान-रहित हो आश्रवों से मुक्त हो जाय, तो उसे आनापान-समाधि का अच्छी तरह मनन करना चाहिये।

भिक्षुओ ! इसलिये, यदि कोई भिक्षु चाहे कि मेरे सांसारिक-संकल्प प्रहीण हो जायँ…, अप्रतिकूल के प्रति प्रतिकूल के भाव से विहार करूँ…, प्रतिकूल के प्रति अप्रतिकूल के भाव से विहार करूँ…, प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनों के प्रति प्रतिकूल के भाव से विहार करूँ…, प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनों के प्रति अप्रतिकूल के भाव से विहार करूँ…, प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनोंके भाव को हटा, उपेक्षा-पूर्वक स्मृतिमान् और संप्रज्ञ हो कर विहार करूँ…, …प्रथम ध्यान को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन को प्राप्त हो कर विहार करूँ…, …संज्ञा-वेदयित-निरोध को प्राप्त हो कर विहार करूँ, तो उसे आनापान-समाधि का अच्छी तरह मनन करना चाहिये।

भिक्षुओ ! इस प्रकार अनापान-समाधि के भावित और अभ्यस्त हो जाने से यदि उसे सुख की वेदना होती है तो वह जानता है कि यह (= सुख की वेदना) अनित्य है। वह जानता है कि इसमें आसक्त होना नहीं चाहिये; इसका अभिनन्दन करना नहीं चाहिये। यदि उसे दुःख की वेदना होती है तो वह जानता है कि यह अनित्य है…। यदि उसे अदुःख-सुख वेदना होती है तो वह जानता है कि यह अनित्य है…।

यदि वह सुख की वेदना का अनुभव करता है तो उससे बिल्कुल अनासक्त रहता है। …दुःख की वेदना…। अदुःख-सुख वेदना…।

वह काया-पर्यन्त वेदना का अनुभव करते हुये जानता है कि मैं काया-पर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ। वह जीवित-पर्यन्त वेदना का अनुभव करते हुये जानता है कि मैं जीवित-पर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ। शरीर गिरने, तथा जीवन के अन्त होते ही यहीं सारी वेदनायें ठंढी हो जायेंगी—ऐसा जानता है।

भिक्षुओ ! जैसे, तेल और बत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है। उसी तेल और बत्ती के न रहने से प्रदीप बुझ जाता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, वह काया-पर्यन्त वेदना का अनुभव करते हुये जानता है···। ···यहीं सारी वेदनायें ठंढ़ी हो जायेंगी—ऐसा जानता है।

§ ९. वेसाली सुत्त (५२. १. ९)

सुख-विहार

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागार-शाला में विहार करते थे।

उस समय, भगवान् भिक्षुओं के बीच अनेक प्रकार से अशुभ-भावना की बातें कह रहे थे। अशुभ-भावना की बड़ी बड़ाई कर रहे थे।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! मैं आधा महीना एकान्त-वास करना चाहता हूँ। भिक्षान्न लानेवाले को छोड़ मेरे पास कोई आने न पावे।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह वे भिक्षु भगवान् को उत्तर दे भिक्षान्न ले जानेवाले को छोड़ कोई पास नहीं जाते थे।

···वे भिक्षु भी अशुभ-भावना के अभ्यास में लगकर विहार करने लगे। उन्हें अपने शरीर से इतनी घृणा हो उठी कि वे आत्म-हत्या के लिये बधक की खोज करने लगे। एक दिन दस भिक्षु भी आत्म-हत्या कर लेते थे। बीस भी···। तीस भी···।

तब, आधा महीना के बीत जाने पर एकान्त-वास से निकल भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया, "आनन्द ! क्या बात है कि भिक्षु-संघ इतना घटता सा प्रतीत हो रहा है?"

भन्ते ! भगवान् भिक्षुओं के बीच अनेक प्रकार से अशुभ-भावना की बातें कह रहे थे; अशुभ-भावना की बड़ी बड़ाई कर रहे थे। अतः वे भिक्षु भी अशुभ-भावना के अभ्यास में लगकर विहार करने लगे। उन्हें अपने शरीर से इतनी घृणा हो उठी कि वे आत्म-हत्या के लिये बधक की खोज करने लगे। एक दिन दस भिक्षु भी आत्म-हत्या कर लेते हैं। बीस भी···। तीस भी···। भन्ते ! अच्छा होता कि भगवान् किसी दूसरे प्रकार से समझाते जिसमें भिक्षु-संघ रहे।

आनन्द ! तो, वैशाली के पास जितने भिक्षु रहते हैं सभी को सभा-गृह (=उपस्थान-शाला) में एकत्रित करो।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे, वैशाली के पास जितने भिक्षु रहते थे सभी को सभा-गृह में एकत्रित कर, भगवान् के पास गये और बोले, "भन्ते ! भिक्षु-संघ एकत्रित है, भगवान् अब जिसका समय समझें।"

तब, भगवान् जहाँ सभा-गृह था वहाँ गये और बिछे आसन पर बैठ गये। बैठ कर, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! यह आनापान-स्मृति-समाधि भी भावित और अभ्यस्त होने से शान्त सुन्दर, सुख का विहार होता है। इससे उत्पन्न होनेवाले पाप-मय अकुशलधर्म दब जाते हैं, शान्त हो जाते हैं।

भिक्षुओ ! जैसे, गर्मीके पिछले महीने में उड़ती धूल अचानक खूब पानी पड़ जाने से दब जाती है, शान्त हो जाती है। भिक्षुओ ! वैसे ही, आनापान-स्मृति-समाधि भी भावित और अभ्यस्त होने से शान्त सुन्दर सुखका विहार होता है। इससे उत्पन्न होनेवाले पाप-मय अकुशल धर्म दब जाते हैं, शान्त हो जाते हैं।

···कैसे···?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में···।

भिक्षुओ ! इस प्रकार,···पाप-मय अकुशल धर्म दब जाते हैं, शान्त हो जाते हैं।

§ १०. किम्बिल सुत्त (५२. १. १०)

आनापान-स्मृति-भावना

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् किम्बिला में वेलुवन में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने आयुष्मान् किम्बिल को आमन्त्रित किया, "किम्बिल ! कैसे आनापान-स्मृति-समाधि भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल=परिणाम होता है ?"

यह कहने पर आयुष्मान् किम्बिल चुप रहे।

दूसरी बार भी···।

तीसरी बार भी···। आयुष्मान् किम्बिल चुप रहे।

तब, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भगवन् ! यह अच्छा अवसर है कि भगवान् आनापान-स्मृति-समाधि का उपदेश करते। भगवान् से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।

आनन्द ! तो सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले, "आनन्द !···भिक्षु आरण्य में···। आनन्द ! इस प्रकार आनापान-स्मृति-समाधि भावित और अभ्यस्त होने से बड़ा अच्छा फल = परिणाम होता है ?

"आनन्द ! जिस समय भिक्षु लम्बी साँस लेते हुये जानता है कि मैं लम्बी साँस ले रहा हूँ; लम्बी साँस छोड़ते हुये जानता है कि मैं लम्बी साँस छोड़ रहा हूँ; छोटी साँस···; सारे शरीर का अनुभव करते साँस लूँगा—ऐसा सीखता है; सारे शरीर का अनुभव करते साँस छोड़ूँगा—ऐसा सीखता है; काय-संस्कार को शान्त करते हुये···उस समय वह क्लेशों को तपाते हुये, संप्रज्ञ, स्मृतिमान् तथा संसार के लोभ और दौर्मनस्य को दबा काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है। सो क्यों ?

आनन्द ! क्योंकि मैं आश्वास-प्रश्वास को एक काया ही बताता हूँ, इसीलिये उस समय भिक्षु··· काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।

आनन्द ! जिस समय भिक्षु प्रीति का अनुभव करते साँस लूँगा ऐसा सीखता है···; सुख का अनुभव करते···; चित्त-संस्कार का अनुभव करते···; चित्त-संस्कार को शान्त करते···; आनन्द ! उस समय, भिक्षु···वेदना में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है। सो क्यों ?

आनन्द ! क्योंकि, आश्वास-प्रश्वास का जो अच्छी तरह मनन करता है उसे मैं एक वेदना ही बताता हूँ। आनन्द ! इसलिए, उस समय भिक्षु···वेदना में वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है।

आनन्द ! जिस समय, भिक्षु 'चित्त का अनुभव करते साँस लूँगा' ऐसा सीखता है···; चित्त को प्रमुदित करते···; चित्त को समाहित करते···; चित्त को विमुक्त करते···; आनन्द ! उस समय, भिक्षु··· चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है। सो क्यों ?

आनन्द ! मूढ़ स्मृति वाला तथा असंप्रज्ञ आनापान-स्मृति-समाधि का अभ्यास कर लेगा—ऐसा मैं नहीं कहता। आनन्द ! इसलिए, उस समय भिक्षु···चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहार करता है।

आनन्द ! जिस समय, भिक्षु 'अनित्यता का चिन्तन करते साँस लूँगा' ऐसा सीखता है···; विराग का चिन्तन करते···; निरोध का चिन्तन करते···; त्याग का चिन्तन करते···; आनन्द ! उस समय, भिक्षु··· धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है। वह लोभ और दौर्मनस्य के प्रहाण को प्रज्ञा-पूर्वक अच्छी तरह देख लेनेवाला होता है। आनन्द ! इसलिए, उस समय भिक्षु···धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है।

आनन्द ! जैसे, किसी चौराहे पर धूल की एक बड़ी ढेर हो। तब, यदि पूरब की ओर से कोई बैलगाड़ी आवे तो उस धूल की ढेर को कुछ न कुछ बिखेर दे। पच्छिम की ओर से···। उत्तर की ओर से···। दक्खिन की ओर से···।

आनन्द ! वैसे ही, भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करते हुए अपने पाप-मय अकुशल धर्मों को कुछ न कुछ बिखेर देता है। वेदना में वेदनानुपश्यी होकर···। चित्त में चित्तानुपश्यी होकर···। धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर···

एकधर्म वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

द्वितीय वर्ग

§ १. इच्छानङ्गल सुत्त (५२. २. १)

बुद्ध-विहार

एक समय भगवान् इच्छानङ्गल में इच्छानङ्गल वन-प्रान्त में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! मैं तीन महीने एकान्त-वास करना चाहता हूँ। एक भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ मेरे पास दूसरा कोई आने न पावे"।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वे भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, एक भिक्षान्न ले जाने वाले को छोड़ दूसरा कोई भगवान् के पास नहीं जाने लगे।

तब, उन तीन महीने के बीत जाने के बाद एकान्त-वास से निकल कर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! यदि दूसरे मत वाले साधु तुमसे पूछें कि 'आवुस ! वर्षावास में श्रमण गौतम किस विहार से विहार कर रहे थे ?' तो तुम उन्हें उत्तर देना कि 'आवुस ! वर्षावास में भगवान् आनापान-स्मृति-समाधि से विहार कर रहे थे।

भिक्षुओ ! मैं ख्याल से साँस लेता हूँ, और ख्याल से साँस छोड़ता हूँ। लम्बी साँस लेते हुये मैं जानता हूँ कि मैं लम्बी साँस ले रहा हूँ···।···। त्याग का चिन्तन करते हुये साँस लूँगा—ऐसा जानता हूँ। त्याग का चिन्तन करते हुये साँस छोड़ूँगा—ऐसा जानता हूँ।

भिक्षुओ ! यदि कोई ठीक-ठीक कहना चाहे तो आनापान-स्मृति-समाधि को ही आर्य-विहार, कह सकता है, या ब्रह्म-विहार भी, या बुद्ध-विहार भी।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु अभी शैक्ष्य हैं, जिनने अपने उद्देश्य को अभी नहीं पाया है, जो अनुत्तर योग-क्षेम (=निर्वाण) के लिये प्रयत्न-शील हैं उनके आनापान-स्मृति-समाधि के भावित और अभ्यस्त होने से आश्रवों का क्षय होता है।

भिक्षुओ ! जो भिक्षु अर्हत् हो चुके हैं, क्षीणाश्रव, जिनका ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो चुका है, कृतकृत्य, जिनका भार उतर गया है, जिनने परमार्थ को पा लिया है, जिनका भव-संयोजन परिक्षीण हो चुका है, और जो परम-ज्ञान को प्राप्त कर विमुक्त हो चुके हैं, उनको आनापान-स्मृति-समाधि भावित और अभ्यस्त होने से अपने सामने ही सुख-पूर्वक विहार तथा स्मृति और संप्रज्ञता के लिये होती है।

भिक्षुओ ! यदि कोई ठीक-ठीक कहना चाहे तो आनापान-स्मृति-समाधि को ही आर्य-विहार कह सकता है, या ब्रह्म-विहार भी, या बुद्ध-विहार भी।

§ २. कङ्खेय्य सुत्त (५२. २. २)

शैक्ष्य और बुद्ध-विहार

एक समय, आयुष्मान् लोमसवङ्गीश शाक्य (जनपद) में कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे।

तब, महानाम शाक्य जहाँ आयुष्मान् लोमसवङ्गीश थे वहाँ आया, और प्रणाम् करके एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, महानाम शाक्य आयुष्मान् लोमसवङ्गीश से बोला, "भन्ते ! जो शैक्ष्य-विहार है वही बुद्ध-विहार है, या शैक्ष्य-विहार दूसरा है और बुद्ध-विहार दूसरा ?"

आवुस महानाम ! जो शैक्ष्य-विहार है वही बुद्ध-विहार नहीं है; शैक्ष्य-विहार दूसरा है और बुद्ध-विहार दूसरा।

आवुस महानाम ! जो भिक्षु अभी शैक्ष्य हैं जिनने अपने उद्देश्य को अभी नहीं पाया है, जो अनुत्तर योग-क्षेम (= निर्वाण) के लिये प्रयत्न-शील हैं वे पाँच नीवरणों के प्रहाण के लिये विहार करते हैं। किन पाँच के ? काम-छन्द नीवरण के प्रहाण के लिये विहार करते हैं; व्यापाद···; आलस्य···; औद्धत्यकौकृत्य···; विचिकित्सा···।

आवुस महानाम ! जो भिक्षु अर्हत् हो चुके हैं···उनके यह पाँच नीवरण प्रहीण होते हैं, उच्छिन्न-मूल होते हैं, शिर कटे ताड़ के समान होते हैं, मिटा दिये गये होते हैं जो फिर कभी उग नहीं सकते।···

आवुस महानाम ! इस तरह समझना चाहिये कि शैक्ष्य-विहार दूसरा है और बुद्ध-विहार दूसरा।

आवुस महानाम ! एक समय भगवान् इच्छानंगल में इच्छानंगल वन-प्रान्त में विहार करते थे।

आवुस ! वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया···। मैं लम्बी साँस लेते हुये···। भिक्षुओ ! जो भिक्षु अभी शैक्ष्य हैं···। [ऊपर जैसा ही]

आवुस महानाम ! इससे भी समझना चाहिये कि शैक्ष्य-विहार दूसरा है और बुद्ध-विहार दूसरा।

§ ३. पठम आनन्द सुत्त (५२. २. ३)

आनापान-स्मृति से मुक्ति

श्रावस्ती···जेतवन···।

···एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! कोई एक धर्म है जिसके भावित और अभ्यस्त होने से चार धर्म पूरे हो जाते हैं; चार धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से सात धर्म पूरे हो जाते हैं; तथा सात धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से दो धर्म पूरे हो जाते हैं ?"

हाँ आनन्द ! ऐसा एक धर्म है···; तथा सात धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से दो धर्म पूरे हो जाते हैं।

भन्ते ! किस एक धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से···?

आनन्द ! आनापान-स्मृति-समाधि एक धर्म के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृति-प्रस्थान पूरे हो जाते हैं। चार स्मृतिप्रस्थान के भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूरे हो जाते हैं। सात बोध्यंग के भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूरी हो जाती हैं।

(क)

कैसे आनापान-स्मृति-समाधि के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृति-प्रस्थान पूरे हो जाते हैं ?

आनन्द ! भिक्षु आरण्य में···त्याग का चिन्तन करते हुये साँस लूँगा—ऐसा सीखता है···।

आनन्द ! जिस समय, भिक्षु लम्बी साँस लेते हुये जानता है कि मैं लम्बी साँस ले रहा हूँ,··· काय-संस्कार को शान्त करते साँस लूँगा—ऐसा सीखता है···, आनन्द ! उस समय भिक्षु···काया में कायानुपश्यी हो कर विहार करता है। सो क्यों ?

…[देखो "५२. १. १०"। चौराहे पर धूल की ढेर की उपमा यहाँ नहीं है]

आनन्द ! इस प्रकार, आनापान-स्मृति-समाधि के भावित और अभ्यस्त होने से चार स्मृति-प्रस्थान पूरे हो जाते हैं।

(ख)

आनन्द ! कैसे चार स्मृति-प्रस्थान के भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूरे हो जाते हैं ?

आनन्द ! जिस समय भिक्षु सावधान (=उपस्थित स्मृति) हो काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, उस समय भिक्षु की स्मृति संमूढ़ नहीं होती है। आनन्द ! जिस समय भिक्षु की उपस्थित स्मृति असंमूढ़ होती है, उस समय उस भिक्षु के स्मृति-बोध्यंग का आरम्भ होता है। आनन्द ! उस समय भिक्षु स्मृति-बोध्यंग की भावना करता है, और उसे पूरा कर लेता है। वह स्मृतिमान् हो विहार करते प्रज्ञा-पूर्वक उस धर्म का चिन्तन करता है।

आनन्द ! जिस समय, वह स्मृतिमान् हो विहार करते प्रज्ञा-पूर्वक उस धर्म का चिन्तन करता है, उस समय उसके धर्मविचय-संबोध्यंग का आरम्भ होता है। उस समय भिक्षु धर्मविचय-संबोध्यंग की भावना करता है और उसे पूरा कर लेता है। प्रज्ञा-पूर्वक धर्म का चिन्तन करते उसे वीर्य (=उत्साह) होता है।

आनन्द ! जिस समय भिक्षु को प्रज्ञा-पूर्वक धर्म का चिन्तन करते वीर्य होता है, उस समय उसके वीर्य-संबोध्यंग का आरम्भ होता है। उस समय भिक्षु वीर्य-संबोध्यंग की भावना करता है और उसे पूरा कर लेता है। वीर्यवान् होने से उसे निरामिष प्रीति उत्पन्न होती है।

आनन्द ! जिस समय भिक्षु को वीर्यवान् होने से निरामिष प्रीति उत्पन्न होती है उस समय उसके प्रीति-संबोध्यंग का आरम्भ होता है। उस समय भिक्षु प्रीति-संबोध्यंग की भावना करता है और उसे पूरा कर लेता है। मन के प्रीति-युक्त होने से शरीर भी शान्त हो जाता है और चित्त भी।

आनन्द ! जिस समय मन के प्रीति-युक्त होने से शरीर भी शान्त हो जाता है और चित्त भी, उस समय भिक्षु के प्रश्रब्धि-संबोध्यंग का आरम्भ होता है…। शरीर के शान्त हो जाने पर सुख से चित्त समाहित हो जाता है।

आनन्द ! जिस समय शरीर के शान्त हो जाने पर सुख से चित्त समाहित हो जाता है, उस समय भिक्षु के समाधि-संबोध्यंग का आरम्भ होता है।…। चित्त समाहित हो सभी ओर से उदासीन रहता है।

आनन्द ! जिस समय चित्त समाहित हो सभी ओर से उदासीन रहता है, उस समय भिक्षु के उपेक्षा-संबोध्यंग का आरम्भ होता है। उस समय भिक्षु उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना करता है और उसे पूरा कर लेता है।

…[इसी तरह, 'वेदना में वेदनानुपश्यी', चित्त में चित्तानुपश्यी, और धर्मों में धर्मानुपश्यी को भी मिलाकर समझ लेना चाहिए।

आनन्द ! इस प्रकार, चार स्मृति-प्रस्थान भावित और अभ्यस्त होने से सात बोध्यंग पूरे हो जाते हैं।

(ग)

आनन्द ! कैसे सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूरी हो जाती है ?

आनन्द ! भिक्षु विवेक, विराग और निरोध की ओर ले जानेवाले स्मृति-संबोध्यंग की भावना

करता है जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।…उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना करता है जिससे मुक्ति सिद्ध होती है।

आनन्द ! इस प्रकार, सात बोध्यंग भावित और अभ्यस्त होने से विद्या और विमुक्ति पूरी हो जाती है।

§ ४. दुतिय आनन्द सुत्त (५२. २. ४)

एकधर्म से सबकी पूर्ति

…एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले, "आनन्द ! क्या कोई एक धर्म है जिसके भावित और अभ्यस्त होने से…?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही…।

हाँ आनन्द ! ऐसा एक धर्म है…[ऊपर जैसा ही]।

§ ५. पठम भिक्खु सुत्त (५२. २. ५)

आनापान-स्मृति

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये… । एक ओर बैठ वे भिक्षु भगवान् से बोले, भन्ते ! क्या कोई एक धर्म है…[ऊपर जैसा ही]

§ ६. दुतिय भिक्खु सुत्त (५२. २. ६)

आनापान-स्मृति

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान्का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् बोले, "भिक्षुओ ! क्या कोई एक धर्म है… ?"

भन्ते ! धर्म के मूल भगवान् ही… ।

हाँ भिक्षुओ ! ऐसा एक धर्म है… [ऊपर जैसा ही]

§ ७. संयोजन सुत्त (५२. २. ७)

आनापान-स्मृति

भिक्षुओ ! आनापान-स्मृति-समाधि के भावित और अभ्यस्त होने से संयोजनों का प्रहाण होता है।…

§ ८. अनुसय सुत्त (५२. २. ८)

अनुशय

…अनुशय मूल से उखड़ जाते हैं।…

§ ९. अद्धान सुत्त (५२. २. ९)

मार्ग

…मार्ग की जानकारी होती है।…

§ १०. आसवक्खय सुत्त (५२. २. १०)

आश्रव-क्षय

…आश्रवों का क्षय होता है।…

…कैसे…?

भिक्षुओ ! भिक्षु आरण्य में…।

आनापान-संयुत्त समाप्त

ग्यारहवाँ परिच्छेद

५३. स्रोतापत्ति-संयुत्त

पहला भाग

वेलुद्वार वर्ग

§ १. राज सुत्त (५३. १. १)

चार श्रेष्ठ धर्म

श्रावस्ती ··· जेतवन ··· ।

भिक्षुओ ! भले ही चक्रवर्ती राजा चारों द्वीप पर अपना ऐश्वर्य और आधिपत्य स्थापित कर राज करके मरने के बाद स्वर्ग में त्रायस्त्रिंश देवों के बीच उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होता है; वह वहाँ नन्दनवन में अप्सराओं से घिरा रह दिव्य पाँच काम-गुणों का उपभोग करता है। वह चार धर्मों से युक्त नहीं होता है; अतः वह नरक से मुक्त नहीं है, तिरश्चीन-योनि में पड़ने से मुक्त नहीं है, प्रेत-योनि में पड़ने से मुक्त नहीं है, नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होने से मुक्त नहीं है।

भिक्षुओ ! भले ही, आर्यश्रावक भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करता है और फटी-पुरानी गुदड़ी पहनता है। वह चार धर्मों से युक्त होता है; अतः वह नरक से मुक्त है, तिरश्चीन-योनि में पड़ने से मुक्त है। प्रेत-योनि में पड़ने से मुक्त है, नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होने से मुक्त है।

किन चार (धर्मों) से ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-चरण-सम्पन्न, अच्छी गति को प्राप्त (=सुगत), लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने में सारथी के समान, देवता और मनुष्यों के गुरु, बुद्ध भगवान्।

धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात (=अच्छी तरह बताया गया)। सांदृष्टिक (=जिसका फल सामने देख लिया जाता है)। अकालिक (=बिना अधिक काल के सफल होने वाला), जिसकी सचाई लोगों को बुला-बुलाकर दिखाई जा सकती है (=एहिपस्सिक), निर्वाण की ओर ले जानेवाला, विज्ञोंके द्वारा अपने भीतर ही भीतर समझ लेने योग्य है।

संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—भगवान् का श्रावक-संघ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है, भगवान् का श्रावक-संघ सीधे मार्ग पर आरूढ़ है, भगवान् का श्रावक-संघ ज्ञान के मार्ग पर आरूढ़ है, भगवान् का श्रावक-संघ सच्चे मार्ग पर आरूढ़ है। जो यह पुरुषों का चार जोड़ा, आठ पुरुष हैं, यही भगवान् का श्रावक-संघ है; स्वागत करने के योग्य, सत्कार करने के योग्य, पूजा करने के योग्य, प्रणाम् करने के योग्य, संसार का अलौकिक पुण्य-क्षेत्र।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त होता है, अखण्ड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्बाध, विज्ञोंसे प्रशस्त, अमिश्रित, समाधि-साधन के अनुकूल।

इन चार धर्मों से युक्त होता है।

भिक्षुओ ! जो यह चार द्वीपों का प्रतिलाभ है, और जो यह चार धर्मों का प्रतिलाभ है, इनमें चार द्वीपों का प्रतिलाभ चार धर्मों के प्रतिलाभ की एक कला के बराबर भी नहीं है।

§ २. ओगध सुत्त (५३. १. २)

चार धर्मों से स्रोतापन्न

भिक्षुओ ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है, फिर वह मार्गभ्रष्ट नहीं हो सकता, परमार्थ तक पहुँच जाना उसका नियत होता है, परम-ज्ञान की प्राप्ति उसे अवश्य होती है।

किन चार से ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···

धर्म के प्रति···

संघ के प्रति···

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···

भिक्षुओ ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है···।

भगवान् ने यह कहा; यह कह कर बुद्ध फिर भी बोले:—

जिन्हें श्रद्धा, शील, और स्पष्ट धर्म-दर्शन प्राप्त हैं,

वे काल (=समय) में नहीं पड़ते हैं,

परम-पद ब्रह्मचर्य के अन्तिम फल को उनने पा लिया है॥

§ ३. दीघायु सुत्त (५३. १. ३)

दीर्घायु का बीमार पड़ना

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे।

उस समय दीर्घायु उपासक बड़ा बीमार पड़ा था।

तब, दीर्घायु उपासक ने अपने पिता जोतिक गृहपति को आमन्त्रित किया, "गृहपति ! सुनें, जहाँ भगवान् हैं वहाँ आप जायँ और भगवान् के चरणों में मेरी ओर से वन्दना करें—भन्ते ! दीर्घायु उपासक बड़ा बीमार पड़ा है, सो भगवान् के चरणों में शिर से वन्दना करता है। और कहें—भन्ते ! यदि भगवान् दया करके जहाँ दीर्घायु उपासक का घर है वहाँ चलते तो बड़ी कृपा होती।"

"तात ! बहुत अच्छा" कह जोतिक गृहपति, दीर्घायु उपासकको उत्तर दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, जोतिक गृहपति भगवान् से बोला—भन्ते ! दीर्घायु उपासक बड़ा बीमार पड़ा है। वह भगवान् के चरणों में शिर से वन्दना करता है···।

भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब, भगवान् पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ दीर्घायु उपासक का घर था वहाँ गये; जा कर बिछे आसन पर बैठ गये। बैठ कर, भगवान् दीर्घायु उपासक से बोले, "दीर्घायु ! कहो, तुम्हारी तबियत अच्छी है न, बीमारी बढ़ती नहीं, घटती तो जान पड़ती है न ?"

भन्ते ! मेरी तबियत अच्छी नहीं है; बिमारी बढ़ती ही जान पड़ती है, घटती नहीं।

दीर्घायु ! तो तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होऊँगा···; धर्म के प्रति···; संघ के प्रति···; श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

भन्ते ! भगवान् ने स्रोतापत्ति के जिन चार अंगों का उपदेश किया है वे धर्म मुझमें वर्तमान

हैं, मैंने उनकी साधना कर ली है। भन्ते ! मैं बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त हूँ···; धर्म के प्रति···; संघ के प्रति···; श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

दीर्घायु ! तो तुम इन चार स्रोतापत्ति के अंगों में प्रतिष्ठित हो आगे छः विद्या-भागीय धर्मों की भावना करो।

दीर्घायु ! तुम सभी संस्कारों में अनित्यता का चिन्तन करते हुये विहार करो। अनित्य में दुःख, और दुःख में अनात्म, प्रहाण, विराग और निरोध समझो। दीर्घायु ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

भन्ते ! भगवान् ने जिन छः विद्या-भागीय धर्मों का उपदेश किया है वे धर्म मुझमें वर्तमान हैं···। भन्ते ! बल्कि, मुझे ऐसा होता है—यह जोतिक गृहपति मेरे मरने के बाद बहुत व्यग्र न होजाय।

तात दीर्घायु ! ऐसा मत समझो। तात दीर्घायु ! भगवान् ने जो अभी बताया है उसी का मनन करो।

तब, भगवान् दीर्घायु उपासक को इस प्रकार उपदेश दे आसन से उठकर चले गये।

तब, भगवान् के चले जाने के कुछ देर बाद ही दीर्घायु उपासक की मृत्यु हो गई।

तब, कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, और भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ, भिक्षु भगवान् से बोले, "भन्ते ! दीर्घायु उपासक, जिसे भगवान् ने अभी संक्षेप से धर्मोपदेश किया था, मर गया। भन्ते ! उसकी अब क्या गति होगी ?"

भिक्षुओ ! दीर्घायु उपासक पण्डित था, वह धर्म के मार्ग पर आरूढ़ था, उसने धर्म को विफल नहीं बनाया। भिक्षुओ ! दीर्घायु उपासक पाँच नीचेवाले संयोजनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हुआ है। वह उस लोक से बिना लौटे वहीं परिनिर्वाण पा लेगा।

§ ४. पठम सारिपुत्त सुत्त (५३. १. ४)

चार बातों से युक्त स्रोतापन्न

एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, संध्या समय आयुष्मान् आनन्द ध्यान से उठ···। एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सारिपुत्र से बोले, "आवुस सारिपुत्र ! कितने धर्मोंसे युक्त होने से भगवान् ने किसी को स्रोतापन्न बतलाया है, जो मार्ग से च्युत नहीं हो सकता है, जिसका परम-पद तक पहुँचना निश्चय है, जिसे परम-ज्ञान की प्राप्ति होना अवश्य है।"

आवुस आनन्द ! धर्मों से युक्त होने से भगवान् ने किसी को स्रोतापन्न बताया है···।

आवुस ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

आवुस ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से···।

§ ५. दुतिय सारिपुत्त सुत्त (५३. १. ५)

स्रोतापत्ति-अङ्ग

···एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र से भगवान् बोले, "सारिपुत्र ! जो स्रोतापत्ति-अङ्ग, स्रोतापत्ति अङ्ग कहा जाता है, वह स्रोतापत्ति-अङ्ग क्या है ?"

भन्ते ! सत्पुरुष का सहवास ही स्रोतापत्ति-अंग है। सद्धर्म का श्रवण ही स्रोतापत्ति-अंग है। अच्छी तरह मनन करना ही स्रोतापत्ति-अंग है। धर्मानुकूल आचरण करना ही स्रोतापत्ति-अंग है।

ठीक है सारिपुत्र ! ठीक है !! सत्पुरुष का सहवास ही···।

सारिपुत्र ! जो 'स्रोत, स्रोत' कहा जाता है, वह स्रोत क्या है ?

भन्ते ! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत है। जो सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि ।

ठीक है सारिपुत्र ! ठीक है !! यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही स्रोत है···।

सारिपुत्र ! जो 'स्रोतापन्न, स्रोतापन्न' कहा जाता है, वह स्रोतापन्न क्या है ?

भन्ते ! जो इस आर्य अष्टांगिक मार्ग से युक्त है वही स्रोतापन्न कहा जाता है—जो आयुष्मान् इस नाम के, इस गोत्र के हैं।

§ ६. थपति सुत्त (५३. १. ६)

घर झंझटों से भरा है

श्रावस्ती···जेतवन···।

उस समय, कुछ भिक्षु भगवान् के लिये चीवर बना रहे थे कि—तेमासा के बीत जाने पर भगवान् बने चीवर को लेकर चारिका के लिये प्रस्थान करेंगे।

उस समय, ऋषिदत्तपुराण कारीगर साधुक में कुछ काम से रह रहे थे। उन कारीगर ने सुना कि कुछ भिक्षु भगवान् के लिये चीवर बना रहे हैं कि—तेमासा के बीत जाने पर भगवान् बने चीवर को लेकर चारिका के लिये प्रस्थान करेंगे।

तब, उन कारीगर ने मार्ग पर एक पुरुष तैनात कर दिया—जब अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् को इधर से जाते देखो तो हमें सूचित करना।

दो या तीन दिन रहने के बाद उस पुरुष ने भगवान् को दूर ही से आते देखा। देख कर, जहाँ ऋषिदत्तपुराण कारीगर थे वहाँ गया और बोला—भन्ते ! यह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध आ रहे हैं, अब आप जिसका काल समझें।

तब, ऋषिदत्तपुराण कारीगर जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर पीछे-पीछे हो लिये।

तब, भगवान् मार्ग से उतर एक वृक्ष के नीचे जाकर बिछे आसन पर बैठ गये। ऋषिदत्तपुराण कारीगर भी भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, ऋषिदत्तपुराण कारीगर भगवान् से बोले, "भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् श्रावस्ती से कोशल की ओर चारिका के लिये प्रस्थान करेंगे, तब हमें बड़ा असंतोष और दुःख होता है, कि—भगवान् हमसे दूर जा रहे हैं। भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् ने श्रावस्ती से कोशल की ओर चारिका के लिये प्रस्थान कर दिया है, तब हमें बड़ा असंतोष और दुःख होता है, कि—भगवान् हमसे दूर जा रहे हैं।

"भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् कोशल से मल्लों की ओर चारिका के लिये प्रस्थान करेंगे, तब हमें बड़ा असंतोष और दुःख होता है, कि—भगवान् हमसे दूर जा रहे हैं। भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् ने कोशल से मल्लों की ओर चारिका के लिये प्रस्थान कर दिया है, तब हमें बड़ा असंतोष और दुःख होता है, कि—भगवान् हमसे दूर जा रहे हैं।

"भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् मल्लों से वज्जियों की ओर चारिका के लिये···।

"भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् वज्जियों से काशी की ओर चारिका के लिये···।

"भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् काशी से मगध की ओर चारिका के लिये···।

"भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि भगवान् मगध से काशी की ओर चारिका के लिये प्रस्थान करेंगे, तब हमें बड़ा संतोष और आनन्द होता है, कि—भगवान् हमारे निकट आ रहे हैं। भन्ते ! जब हम

सुनते हैं कि भगवान् ने मगध से काशी की ओर चारिका के लिये प्रस्थान कर दिया है, तब हमें बड़ा संतोष और आनन्द होता है, कि—भगवान् हमारे निकट आ रहे हैं।

काशी से वज्जियों की ओर...।

वज्जियों से मल्लों की ओर...।

मल्लों से कोशल की ओर...

कोशल से श्रावस्ती की ओर...। भन्ते ! जब हम सुनते हैं कि इस समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते हैं तो हमें अत्यधिक संतोष और आनन्द होते हैं कि—भगवान् हमारे निकट चले आये।

हे कारीगर ! इसलिये, घर में रहना झंझटों से भरा है, राग का मार्ग है। प्रव्रज्या खुले आकाश के समान है। हे कारीगर ! तुम्हें अब प्रमाद-रहित हो जाना चाहिये।

भन्ते ! इस झंझट से बढ़ा-चढ़ा दूसरा और झंझट है।

हे कारीगर ! इस झंझट से बढ़ा-चढ़ा दूसरा और क्या झंझट है ?

भन्ते ! जब कोशलराज प्रसेनजित् हवा खाने निकलना चाहते हैं, तब हम राजा की सवारी के हाथी को साज़, उनकी लाड़ली प्यारी रानियों को आगे-पीछे बैठा देते हैं। भन्ते ! उन भगिनियों का ऐसा गन्ध होता है जैसे कोई सुगन्धियों की पिटारी खोल दी गई हो, ऐसे गन्ध से वे राज-कन्यायें विभूषित होती हैं। भन्ते ! उन भगिनियों के शरीर का संस्पर्श ऐसा (कोमल) होता है जैसे किसी रूई के फाहे का, ऐसे सुख से वे पोसी-पाली गई हैं।

भन्ते ! उस समय हाथी को भी सम्हालना होता है, उन देवियों को भी सम्हालना होता है, और अपने को भी सम्हालना होता है। भन्ते ! हम उन भगिनियों के प्रति पापमय चित्त उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। भन्ते ! यही उस झंझट से बढ़ा-चढ़ा दूसरा और झंझट है।

हे कारीगर ! इसलिये, घर में रहना झंझटों से भरा है, राग का मार्ग है। प्रव्रज्या खुले आकाश के समान है। हे कारीगर ! तुम्हें अब प्रमाद-रहित हो जाना चाहिये।

हे कारीगर ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है... । किन चार से ?

हे कारीगर ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा... । धर्म के प्रति... । संघ के प्रति... । श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त... ।

हे कारीगर ! तुम लोग बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त...। धर्म के प्रति...। संघ के प्रति...। श्रेष्ठ सुन्दर शीलों से युक्त...हो।

हे कारीगर ! तो क्या समझते हो, कोशल में दान-संविभाग में तुम्हारे समान कितने मनुष्य हैं ?

भन्ते ! हम लोगों को बड़ा लाभ हुआ, सुलाभ हुआ कि भगवान् हमें ऐसा समझते हैं ?

§ ७. वेलुद्वारेय्य सुत्त (५३. १. ७)

गार्हस्थ्य धर्म

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् कोशल में चारिका करते हुये बड़े भिक्षु-संघ के साथ जहाँ कोशलों का वेलुद्वार नामक ब्राह्मण-ग्राम है, वहाँ पहुँचे।

वेलुद्वार के ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना—शाक्य पुत्र श्रमण गौतम शाक्य-कुल से प्रव्रजित हो कोशल में चारिका करते हुयें बड़े भिक्षु-संघ के साथ वेलुद्वार में पहुँचे हुये हैं। उन भगवान् गौतम की ऐसी अच्छी कीर्ति फैली हुई है—ऐसे वे भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध...। वे देवताओं के साथ, मार के

साथ···लोक को स्वयं ज्ञान से जान और साक्षात्कार कर उपदेश कर रहे है। वे धर्म का उपदेश करते हैं—आदि कल्याण, मध्य-कल्याण···। ऐसे अर्हतों का दर्शन बड़ा अच्छा होता है।

तब, वेलुद्वार के वे ब्राह्मण गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, कुछ भगवान् को प्रणाम् कर एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान् से कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर एक ओर बैठ गये; कुछ भगवान् के पास अपने नाम और गोत्र सुना कर एक ओर बैठ गये, कुछ चुप-चाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, वेलुद्वार के वे ब्राह्मण गृहपति भगवान् से बोले, "हे गौतम! हम लोगों को यह कामना=अभिप्राय है—हम लड़के-बाले के झंझट में पड़े रहते हैं; काशी के चन्दन का प्रयोग करते हैं; माला, गन्ध और लेप को धारण करते हैं; सोना-चाँदी के लोभ में रहते हैं; सो हम मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होवें। हे गौतम! अतः, हमें ऐसा धर्मोपदेश करें कि हम मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होवें।

हे गृहपति! आपको आत्मोपनायिक धर्म की बात का उपदेश करूँगा, उसे सुनें···।

···भगवान् बोले, "गृहपति! आत्मोपनायिक धर्म की बात क्या है?

गृहपति! आर्यश्रावक ऐसा चिन्तन करता है—मैं जीना चाहता हूँ, मरना नहीं चाहता, सुख पाना चाहता हूँ, दुःख से दूर रहना चाहता हूँ। ऐसे मुझको जो जान से मार दे वह मेरा प्रिय नहीं होगा। यदि मैं भी किसी ऐसे दूसरे को जान से मारूँ तो उसे भी यह प्रिय नहीं होगा। जो बात हमें अप्रिय है वह दूसरे को भी वैसा ही है। जो हमें स्वयं अप्रिय है उसमें दूसरे को हम कैसे डाल सकते हैं!

वह ऐसा चिन्तन कर अपने स्वयं जीव-हिंसा से विरत रहता है; दूसरे को भी जीव-हिंसा से विरत रहने का उपदेश करता है; जीव-हिंसा से विरत रहने की बड़ाई करता है। इस प्रकार का आचरण शुद्ध होता है।

गृहपति! फिर भी, आर्यश्रावक ऐसा चिन्तन करता है—यदि कोई मेरा कुछ चुरा ले तो वह मुझे प्रिय नहीं होगा। यदि मैं भी किसी दूसरे का कुछ चुरा लूँ तो वह उसे प्रिय नहीं होगा। ···चोरी से विरत रहने की बड़ाई करता है। इस प्रकार उसका कायिक आचरण शुद्ध होता है।

गृहपति! फिर भी, आर्यश्रावक ऐसा चिन्तन करता है—यदि कोई मेरी स्त्री के साथ व्यभिचार करे तो वह मुझे प्रिय नहीं होगा।···पर-स्त्री-गमन से विरत रहने की बड़ाई करता है।···

···यदि कोई मुझे झूठ कहकर ठग दे तो मुझे वह प्रिय नहीं होगा···।···झूठ से विरत रहने की बड़ाई करता है। इस प्रकार, उसका वाचसिक आचरण शुद्ध होता है।

···यदि कोई चुगली खा कर मुझे अपने मित्रों से लड़ा दे तो मुझे वह प्रिय नहीं होगा···। ···इस प्रकार, उसका वाचसिक आचरण शुद्ध होता है।

···यदि कोई मुझे कुछ कठोर बात कह दे तो वह मुझे प्रिय नहीं होगा···।

···यदि कोई मुझसे बड़ी बड़ी बातें बनावे तो वह मुझे प्रिय नहीं होगा···।···बातें बनाने से विरत रहने की बड़ाई करता है। इस प्रकार, उसका वाचसिक आचरण शुद्ध होता है।

वह बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

गृहपति! जो आर्यश्रावक इन सात सद्धर्मों से और इन चार श्रेष्ठ स्थानों से युक्त होता है, वह यदि चाहे तो अपने अपने विषय में ऐसा कह सकता है—मेरा निरय (=नरक) क्षीण हो गया, मेरी तिरश्चीनयोनि क्षीण हो गई, मेरा प्रेत-लोक में जन्म लेना क्षीण हो गया, मेरा नरक में पड़ कर दुर्गति को प्राप्त होना क्षीण हो गया। मैं स्रोतापन्न हूँ···परम-ज्ञान प्राप्त करना अवश्य है।

यह कहने पर वेलुद्वार के ब्राह्मण गृहपति भगवान् से बोले, "हे गौतम !···मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

§ ८. पठम गिञ्जकावसथ सुत्त (५३. १. ८)

धर्मादर्श

एक समय भगवान् आतिक में गिञ्जकावसथ में विहार कर रहे थे।

तब, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और बोले, "भन्ते ! साल्ह नाम का भिक्षु मर गया है; उसकी अब क्या गति होगी ? भन्ते ! नन्दा नाम की एक भिक्षुणी मर गई है; उसकी अब क्या गति होगी ? भन्ते ! सुदत्त नाम का उपासक मर गया है; उसकी अब क्या गति होगी ? भन्ते ! सुजाता नाम की उपासिका मर गई है; उसकी अब क्या गति होगी ?"

आनन्द ! साल्ह नाम का जो भिक्षु मर गया है वह आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को स्वयं जान, साक्षात्कार और प्राप्त कर लिया है। आनन्द ! नन्दा नाम की भिक्षुणी जो मर गई है वह पाँच नीचे के संयोजनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हो उस लोक से बिना लौटे वहीं परिनिर्वाण पा लेगी। आनन्द ! सुदत्त नाम का जो उपासक मर गया है वह तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से तथा राग-द्वेष और मोहके अत्यन्त दुर्बल हो जाने से सकृदागामी हो इस संसार में केवल एक बार जन्म लेकर दुःखों का अन्त कर लेगा। आनन्द ! सुजाता नाम की जो उपासिका मर गई है वह तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से स्रोतापन्न हो गई है।

आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरने पर तथागत के पास आकर इस बात को पूछा जाय। आनन्द ! इसलिये, मैं तुम्हें धर्मादर्श नामक धर्म का उपदेश करूँगा, जिससे युक्त हो आर्यश्रावक यदि चाहे तो अपने विषय में ऐसा कह सकता है—मेरा निरय क्षीण हो गया···। मैं स्रोतापन्न हूँ··· परमज्ञान प्राप्त करना अवश्य है।

आनन्द ! वह धर्मादर्श नामक धर्म का उपदेश क्या है··· ?

आनन्द ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से···।

आनन्द ! धर्मादर्श नामक धर्म का उपदेश यही है, जिससे युक्त हो आर्यश्रावक यदि चाहे तो अपने विषय में ऐसा कह सकता है···।

§ ९. दुतिय गिञ्जकावसथ सुत्त (५३. १. ९)

धर्मादर्श

[निदान—ऊपर जैसा ही]

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! अशोक नाम का भिक्षु मर गया है; उसकी अब क्या गति होगी ? भन्ते ! अशोका नाम की भिक्षुणी मर गई है···? भन्ते ! अशोक नाम का उपासक···? भन्ते ! अशोका नाम की उपासिका···?"

···[ऊपरवाले सूत्र के ऐसा ही लगा लेना चाहिये]

§ १०. ततिय गिञ्जकावसथ सुत्त (५३. १. १०)

धर्मादर्श

[निदान—ऊपर जैसा ही]

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! ञातिक में कक्कट नाम का उपासक मर गया है···? भन्ते ! ञातिक में कालिङ्ग, निकत, कटिस्सह, तुट्ठ, संतुट्ठ, भद्र और सुभद्र नाम के उपासक मर गये हैं; उनकी अब क्या गति होगी ?

आनन्द ! ञातिक में कक्कट नाम का जो उपासक मर गया है, वह नीचे के पाँच संयोजनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हो उस लोक से बिना लौटे वहीं परिनिर्वाण पा लेगा। ···[इसी तरह सभी के साथ समझ लेना]

आनन्द ! ञातिक में पचास से भी ऊपर उपासक मर गये हैं, जो नीचे के पाँच संयोजनों के क्षय···। आनन्द ! ञातिक में नब्बे से भी अधिक उपासक मर गये हैं, जो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने, तथा राग, द्वेष और मोह के अत्यन्त दुर्बल हो जाने से सकृदागामी···। आनन्द ! ञातिक में पाँच सौ से अधिक उपासक मर गये हैं, जो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से स्रोतापन्न···।

आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरने पर तथागत के पास आकर इस बात को पूछा जाय। ···[ऊपर जैसा ही]

वेलुद्वार वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

सहस्सक वर्ग

§ १. सहस्स सुत्त (५३. २. १)

चार बातों से स्रोतापन्न

एक समय भगवान् श्रावस्ती में राजकाराम में विहार करते थे।

तब, सहस्र-भिक्षुणी-संघ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ी उन भिक्षुणियों से भगवान् बोले, "भिक्षुणियाँ ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्य-श्रावक स्रोतापन्न होता है···। किन चार से ?

"···बुद्ध के प्रति···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

"भिक्षुणियाँ ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है···।

§ २. ब्राह्मण सुत्त (५३. २. २)

उदयगामी-मार्ग

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! ब्राह्मण लोग उदयगामी-मार्ग का उपदेश करते हैं। वे अपने श्रावकों को कहते हैं—सुनो, बहुत तड़के उठकर पूरब की ओर जाओ; बीच में पड़नेवाली ऊँची-नीची भूमि, खाई, ठूँठ, कंटीली जगह, गड्ढे या नाले से बचकर मत निकलो। जहाँ गिरोगे वहीं तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इस प्रकार, मरने के बाद तुम स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होगे।

भिक्षुओ ! यह ब्राह्मणों की मूर्खता का जाना है। यह न तो निर्वेद के लिये, न विराग के लिये, न निरोध के लिये, न उपशम के लिये, न ज्ञान-प्राप्ति के लिये, और न निर्वाण के लिये है।

भिक्षुओ ! मैं आर्यविनय में उदयगामी-मार्ग का उपदेश करता हूँ, जो बिल्कुल निर्वेद के लिये···और निर्वाण के लिये है।

भिक्षुओ ! वह उदय-गामी मार्ग कौन सा है जो बिल्कुल निर्वेद के लिये···?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

भिक्षुओ ! यही वह उदय-गामी मार्ग है जो बिल्कुल निर्वेद के लिये···।

§ ३. आनन्द सुत्त (५३. २. ३)

चार बातों से स्रोतापन्न

एक समय आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र संध्या समय ध्यान से उठ जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गये और कुशल-क्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् आनन्द से बोले, "आवुस आनन्द! किन धर्मों के प्रहण से किन धर्मों से युक्त होने के कारण भगवान् ने किसी को स्रोतापन्न होना बतलाया है?"

आवुस! चार धर्मों के प्रहाण से चार धर्मों से युक्त होने के कारण भगवान् ने किसी को स्रोतापन्न होना बतलाया है। किन चार के?

आवुस! अज्ञ पृथक्-जन बुद्ध के प्रति जैसी अश्रद्धा से युक्त हो मरने के बाद नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होता है वैसी बुद्ध के प्रति उसे अश्रद्धा नहीं रहती है। आवुस! पण्डित आर्यश्रावक बुद्धके प्रति जैसी दृढ़ श्रद्धा से युक्त हो मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होता है, उसे बुद्ध के प्रति वैसी ही श्रद्धा होती है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्…।

धर्म के प्रति…।

संघ के प्रति…।

आवुस! जैसे दुःशील से युक्त हो अज्ञ पृथक् जन मरने के बाद…दुर्गति को प्राप्त होता है। वैसे दुःशील से वह युक्त नहीं होता। जैसे श्रेष्ठ और सुन्दर शीलोंसे युक्त हो पण्डित आर्यश्रावक मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होता है, वैसे ही उसके शील श्रेष्ठ, सुन्दर, अखण्ड…।

आवुस! इन चार धर्मों के प्रहाण से चार धर्मों से युक्त होने के कारण भगवान् ने किसी को स्रोतापन्न होना बतलाया है।

§ ४. पठम दुग्गति सुत्त (५३. २. ४)

चार बातों से दुर्गति नहीं

भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक सभी दुर्गति के भय से बच जाता है। किन चार से?…

§ ५. दुतिय दुग्गति सुत्त (५३. २. ५)

चार बातों से दुर्गति नहीं

भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक सभी दुर्गति में पड़ने से बच जाता है। किन चार से?…

§ ६. पठम मित्तेनामच्च सुत्त (५३. २. ६)

चार बातों की शिक्षा

भिक्षुओ! जिन पर तुम्हारी कृपा हो, तथा जिन किन्हीं मित्र, सलाहकार, या बन्धु-बान्धव को समझो कि यह मेरी बात सुनेंगे, उन्हें स्रोतापत्ति के चार अंगों में शिक्षा दो, प्रवेश करा दो, प्रतिष्ठित कर दो। किन चार में?

बुद्ध के प्रति…।

§ ७. दुतिय मित्तेनामच्च सुत्त (५३. २. ७)

चार बातों की शिक्षा

भिक्षुओ! जिन पर तुम्हारी कृपा हो, तथा जिन किन्हीं मित्र, सलाहकार, या बन्धु-बान्धव को समझो कि यह मेरी बात सुनेंगे, उन्हें स्रोतापत्ति के चार अंगों में शिक्षा दो, प्रवेश करा दो, प्रतिष्ठित कर दो। किन चार में?

बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा रखने में शिक्षा दो,…—ऐसे वह भगवान् अर्हत्…। पृथ्वी आदि चार धातुओं में भले ही कुछ हेर-फेर हो जाय, किन्तु बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त आर्यश्रावक में कुछ

हेर-फेर नहीं हो सकता है। हेर-फेर होना यह है कि बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त आर्यश्रावक नरक में उत्पन्न हो जाय, या तिरश्चीन-योनि में, या प्रेत-योनि में। ऐसा कभी हो नहीं सकता।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों में शिक्षा दो···।

भिक्षुओ! जिन पर तुम्हारी कृपा हो, तथा जिन किन्हीं मित्र, सलाहकार, या बन्धु-बान्धव को समझो कि यह मेरी बात सुनेंगे, उन्हें स्रोतापत्ति के इन चार अंगों में शिक्षा दो, प्रवेश करा दो, प्रतिष्ठित कर दो।

§ ८. पठम देवचारिक सुत्त (५३. २. ८)

बुद्ध-भक्ति से स्वर्ग-प्राप्ति

श्रावस्ती···जेतवन···।

तब, आयुष्मान् महा-मोग्गलान, जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे, जेतवन में अन्तर्धान हो त्रयस्त्रिंश देवलोक में प्रकट हुये।

तब, त्रयस्त्रिंश के कुछ देवता जहाँ आयुष्मान् मोग्गलान थे वहाँ आये और प्रणाम् कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े उन देवता से आयुष्मान् महामोग्गलान बोले, "आवुस! बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्···। आवुस! बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होने से कितने प्राणी मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

मारिस मोग्गलान! ठीक है; आप ठीक कहते हैं कि बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···सुगति को प्राप्त होते हैं।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

§ ९. दुतिय देवचारिक सुत्त (५३. २. ९)

बुद्ध-भक्ति से स्वर्ग-प्राप्ति

एक समय, आयुष्मान महा-मोग्गलान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब, आयुष्मान् महा-मोग्गलान···त्रयस्त्रिंश देवलोक में प्रकट हुये।···[ऊपर जैसा ही]

§ १०. ततिय देवचारिक सुत्त (५३. २. १०)

बुद्ध-भक्ति से स्वर्ग-प्राप्ति

तब, भगवान्···जेतवन में अन्तर्धान हो त्रयस्त्रिंश देवलोक में प्रकट हुये।

···एक ओर खड़े उन देवता से भगवान् बोले—आवुस! बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा का होना बड़ा अच्छा है···। आवुस! बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होने से कितने लोग स्रोतापन्न होते हैं।

धर्म···। संघ···। श्रेष्ठ और सुन्दर शील···।

मारिस! ठीक है···।

सहस्सक वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

सरकानि वर्ग

§ १. पठम महानाम सुत्त (५३. ३. १)

भावित चित्तवाले की निष्पाप मृत्यु

ऐसा मैंने सुना।

एक समय भगवान् शाक्य (जनपद) में कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे।

तब, महानाम शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया।

एक ओर खड़ा हो, महानाम शाक्य भगवान् से बोला, "भन्ते! यह कपिलवस्तु बड़ा समृद्ध, उन्नतिशील, गुलजार और गुञ्जान है। भन्ते! तो भी भगवान् या अच्छे-अच्छे भिक्षुओं का सत्संग करने के बाद जब मैं सायंकाल कपिलवस्तु को लौटता हूँ तब न तो किसी हाथी से मिलता हूँ, न घोड़ा से, न रथ से, न बैलगाड़ी से, और न किसी पुरुष से। भन्ते! उस समय मुझे भगवान् का ख्याल चला जाता है, धर्म का ख्याल चला जाता है; संघ का ख्याल चला जाता है। भन्ते! उस समय मेरे मन में होता है—यदि मैं इस समय मर जाऊँ तो मेरी क्या गति होगी?

महानाम! मत डरो, मत डरो!! तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी। महानाम! जिसने दीर्घकाल से अपने चित्त को श्रद्धा में भावित कर लिया है, शील में भावित कर लिया है, विद्या में भावित कर लिया है, त्याग में भावित कर लिया है, प्रज्ञा में भावित कर लिया है, उसका जो यह स्थूल शरीर, चार महा-भूतों का बना, माता-पिता के संयोग से उत्पन्न, भात-दाल खा कर पला पोसा…है उसे यहीं कौवे, गीध, चीलें, कुत्ते, सियार और भी कितने प्राणी (नोंच-नोंच कर) खा जाते हैं; किन्तु उसका जो दीर्घकाल से भावित चित्त है उसकी गति कुछ और (ऊर्ध्वगामी, विशेषगामी) ही होती है।

महानाम! जैसे, कोई घी या तेल के एक घड़े को गहरे पानी में डुबो कर फोड़ दे। तब, उसमें जो ठिकड़े-कंकड़ हैं वे नीचे बैठ जायेंगे, और जो घी या तेल है वह ऊपर चला आवेगा।

महानाम! वैसे ही, जिसने दीर्घकाल से अपने चित्त को श्रद्धा में भावित कर लिया है…।

महानाम! तुमने दीर्घकाल से अपने चित्त को श्रद्धा में भावित कर लिया है, शील…, विद्या…, त्याग…, प्रज्ञा में भावित कर लिया है। महानाम! मत डरो!! मत डरो!! तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।

§ २. दुतिय महानाम सुत्त (५३. ३. २)

निर्वाण की ओर अग्रसर होना

…[ऊपर जैसा ही]

महानाम! मत डरो!! मत डरो!! तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी। महानाम! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। किन चार से?

। बुद्ध के प्रति···। धर्म···। संघ···। श्रेष्ठ और सुन्दर शील···।

महानाम ! कोई वृक्ष हो जो पूरब की ओर झुका हो। तब, जड़ से काट देने पर वह किस ओर गिरेगा ?

भन्ते ! जिस ओर वह झुका है।

महानाम ! वैसे ही, चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

§ ३. गोध सुत्त (५३. ३. ३)

गोधा उपासक की बुद्ध-भक्ति

कपिलवस्तु···।

तब, महानाम शाक्य जहाँ गोधा शाक्य था वहाँ गया। जाकर, गोधा शाक्य से बोला, "रे गोधे ! कितने धर्मों से युक्त होने से तुम किसी मनुष्य को स्रोतापन्न होना समझते हो···?

महानाम ! तीन धर्मों से युक्त होने से मैं किसी मनुष्य को स्रोतापन्न होना समझता हूँ। किन तीन से ?

महानाम ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान्···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···।

महानाम ! इन्हीं तीन धर्मों से युक्त होने से···।

महानाम ! तुम कितने धर्मों से युक्त होने से किसी को स्रोतापन्न समझते हो···?

गोधे ! चार धर्मों से युक्त होने से मैं किसी को स्रोतापन्न होना समझता हूँ···। किन चार से ?

गोधे ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···।

धर्म के प्रति···।

संघ के प्रति···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

गोधे ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से मैं किसी को स्रोतापन्न होना समझता हूँ···।

महानाम ! ठहरो, ठहरो !! भगवान् ही बतावेंगे कि इन धर्मों से युक्त होने से या नहीं होने से।

हाँ गोधे ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ हम चलें और इस बात को भगवान् से पूछें।

तब, महानाम शाक्य और गोधा शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ, महानाम शाक्य भगवान् से बोला, "भन्ते ! जहाँ गोधा शाक्य था वहाँ मैं गया और बोला,—"गोधे ! कितने धर्मों से युक्त होने से तुम किसी को स्रोतापन्न होना समझते हो···? ···[ऊपर की सारी बात]" ठहरो, ठहरो !! भगवान् ही बतावेंगे कि इन धर्मों से युक्त होने से या नहीं होने से।

"भन्ते ! यदि कोई धर्म की बात उठे और उसमें भगवान् एक ओर हो जायँ और भिक्षु-संघ एक ओर, तो भन्ते ! मैं उधर ही रहूँगा जिधर भगवान् हैं; मैं भगवान् के प्रति इतना श्रद्धालु हूँ।

"भन्ते ! यदि कोई धर्म की बात उठे और उसमें भगवान् एक ओर हो जायँ और भिक्षु-भिक्षुणी-संघ एक ओर, तो भन्ते ! मैं उधर ही रहूँगा जिधर भगवान् हैं; मैं भगवान् के प्रति इतना श्रद्धालु हूँ।

भन्ते ! यदि···एक ओर भगवान् हो जायँ और एक ओर भिक्षु-संघ, भिक्षुणी-संघ तथा सभी उपासक···।

भन्ते ! यदि···एक ओर भगवान् हो जायँ और एक ओर भिक्षु-संघ, भिक्षुणी-संघ, सभी उपासक, तथा उपासिकायें,···।

भन्ते ! यदि···एक ओर भगवान् हो जायँ और एक ओर भिक्षु-संघ, भिक्षुणी-संघ, सभी उपासक, उपासिकायें, तथा देव-मार-ब्रह्मा के साथ यह लोक, और देवता, मनुष्य, श्रमण तथा ब्राह्मण···।

गोधे ! सो तुमने इस प्रकार का विचार रखते हुये महानाम शाक्य को क्या कहा ?

भन्ते ! मैंने महानाम शाक्य को कल्याण और कुशल छोड़ कर कुछ नहीं कहा ?

§ ४. पठम सरकानि सुत्त (५३. ३. ४)

सरकानि शाक्य का स्रोतापन्न होना

कपिलवस्तु···।

उस समय सरकानि शाक्य मर गया था, और भगवान् ने उसके स्रोतापन्न हो जाने की बात कह दी थी···।

वहाँ, कुछ शाक्य इकट्ठे होकर चिढ़ रहे थे, खिसिया रहे थे, और विरोध कर रहे थे—आश्चर्य है रे, अद्भुत है रे, आजकल भी कोई यहाँ क्या स्रोतापन्न होगा !! कि सरकानि शाक्य मर गया है, और भगवान् ने उसके स्रोतापन्न हो जाने की बात कह दी है। सरकानि शाक्य तो धर्मपालन में बड़ा दुर्बल था, मदिरा भी पीता था।

तब,···एक ओर बैठ, महानाम शाक्य भगवान् से बोला, "भन्ते ! ···यहाँ कुछ शाक्य इकट्ठे होकर चिढ़ रहे हैं, खिसिया रहे हैं, और विरोध कर रहे हैं···।"

महानाम ! जो उपासक दीर्घकाल से बुद्ध की शरण में आ चुका है, धर्म की···, और संघ की शरण में आ चुका है, उसकी बुरी गति कैसे हो सकती है !

महानाम ! यदि कोई सच कहना चाहे तो कहेगा कि सरकानि शाक्य दीर्घकाल से बुद्ध की शरण में आ चुका था, धर्म की···, और संघ की···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। श्रेष्ठ प्रज्ञा और विमुक्ति से युक्त होता है। वह आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को देखते ही देखते स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करता है। महानाम ! वह पुरुष नरक से मुक्त होता है, तिरश्चीन (=पशु) योनि से मुक्त होता है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। श्रेष्ठ प्रज्ञा से युक्त होता है; किन्तु विमुक्ति से युक्त नहीं होता है। वह नीचे के पाँच बन्धनों के क्षय हो जाने से औपपातिक होता है···। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। किन्तु न तो श्रेष्ठ प्रज्ञा से युक्त होता है और न विमुक्ति से। वह तीन संयोजनों के क्षय हो जाने तथा राग-द्वेष-मोह के अत्यन्त दुर्बल हो जाने से सकृदागामी होता है, एक बार इस लोक में जन्म लेकर दुःखों का अन्त कर लेता है। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है···।

महानाम !···किन्तु, न तो श्रेष्ठ प्रज्ञा से युक्त होता है और न विमुक्ति से। वह तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से स्रोतापन्न होता है···। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है।

महानाम ! कोई पुरुष न बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है, न धर्म के प्रति, न संघ के प्रति, न श्रेष्ठ प्रज्ञा से युक्त होता है, और न विमुक्ति से। किन्तु, उसे यह धर्म होते हैं—श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय, प्रज्ञेन्द्रिय। बुद्ध के बताये धर्मों को वह बुद्धि से कुछ समझता है। महानाम ! वह पुरुष नरक में नहीं पड़ेगा, तिरश्चीन योनि में नहीं पड़ेगा···।

महानाम !···किन्तु, उसे यह धर्म होते हैं—श्रद्धेन्द्रिय···बुद्ध के प्रति उसे कुछ प्रेम = श्रद्धा होती है। महानाम ! वह पुरुष भी नरकमें नहीं पड़ेगा···।

महानाम ! यदि यह बड़े-बड़े वृक्ष भी सुभाषित और दुर्भाषित को समझते तो मैं इन्हें भी स्रोतापन्न होना कहता···। सरकानि शाक्यका तो कहना ही क्या ! महानाम ! सरकानि शाक्य ने मरते समय धर्मको ग्रहण किया था।

§ ५. दुतिय सरकानि सुत्त (५३. ३. ५)

नरक में न पड़नेवाले व्यक्ति

कपिलवस्तु···।

···[ऊपर जैसा ही]

तब, ···एक ओर बैठ, महानाम शाक्य भगवान्‌से बोला—"भन्ते !···कुछ शाक्य इकट्ठे होकर चिढ़ रहे हैं···।'

महानाम ! जो बुद्धके प्रति दृढ़ श्रद्धा···, धर्म···, संघ···, उसकी गति बुरी कैसे हो सकती है ?

महानाम ! कोई पुरुष बुद्धके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु होता है—ऐसे वह भगवान्···; वह नरकसे मुक्त हो गया है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्धके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु होता है···, धर्मके प्रति, संघके प्रति···, श्रेष्ठ प्रज्ञा और विमुक्ति से युक्त होता है, वह नीचेके पाँच बन्धनोंके कट जानेसे बीच ही में परिनिर्वाण पा लेनेवाला होता है। उपहत्य-परिनिर्वायी* होता है। संस्कार-परिनिर्वायी* होता है, असंस्कार-परिनिर्वायी* होता है। ऊर्ध्वस्रोत···अकनिष्ठगामी* होता है। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु होता है···, धर्म के प्रति···, संघ के प्रति ··, किन्तु न तो श्रेष्ठ प्रज्ञा और न विमुक्ति से युक्त होता है, वह तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से तथा राग, द्वेष और मोह के अत्यन्त दुर्बल हो जाने से सकृदागामी होता है···। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु होता है···, धर्म के प्रति···, संघ के प्रति···, किन्तु न तो श्रेष्ठ प्रज्ञा और न विमुक्ति से युक्त होता है, वह तीन संयोजनों के क्षय होने से स्रोतापन्न होता है···। महानाम ! वह पुरुष भी नरक से मुक्त होता है···।

महानाम ! कोई पुरुष बुद्ध के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु नहीं होता, न धर्म के प्रति, न संघ के प्रति, ···किन्तु उसे यह धर्म होते हैं—श्रद्धेन्द्रिय···। महानाम ! वह पुरुष भी नरक में नहीं पड़ता है···।

महानाम ! ···न विमुक्ति से युक्त होता है, किन्तु उसे यह धर्म, और बुद्ध के प्रति उसे कुछ श्रद्धा-प्रेम रहता है, महानाम ! वह पुरुष भी नरक में नहीं पड़ता है···।

महानाम ! जैसे, कोई बुरी जमीन हो, जिसमें घास-पौधे साफ नहीं किये गये हों और बीज भी बुरे हों, सड़े-गले, हवा और धूप में सूख गये, सार-रहित, जो सहज में लगाये नहीं जा सकते हों। पानी भी ठीक से नहीं बरसे। तो, क्या वह बीज उगकर बढ़ने पावेंगे ?

नहीं भन्ते !

महानाम ! वैसे ही, यदि धर्म बुरी तरह कहा गया हो (= दुराख्यात), बुरी तरह बताया गया हो, निर्वाण की ओर ले जानेवाला नहीं हो, (राग, द्वेष और मोह के) उपशम के लिए नहीं हो, तथा असम्यक्-सम्बुद्ध से प्रवेदित हो, तो उसे मैं बुरी जमीन बताता हूँ। उस धर्म के अनुसार ठीक से चलनेवाले जो श्रावक हैं, उन्हें मैं बुरे बीज बताता हूँ।

---

* इन शब्दों की व्याख्या के लिये देखो ४६.२.५, पृष्ठ ७१४।

महानाम ! जैसे, कोई अच्छी जमीन हो, जिसमें घास-पौधे साफ कर दिये गये हों; और बीज भी अच्छे पुष्ट हों, न सड़े-गले, न हवा और धूप में सूख गये, सारयुक्त, जो सहज में लगाये जा सकते हों। पानी भी ठीक से बरसे। तो, क्या वह बीज उगकर बढ़ने पायेंगे ?

हाँ भन्ते !

महानाम ! वैसे ही, यदि धर्म अच्छी तरह कहा गया हो (= स्वाख्यात), अच्छी तरह बताया गया हो, निर्वाणकी ओर ले जानेवाला हो, उपशम के लिए हो, तथा सम्यक्-सम्बुद्ध से प्रवेदित हो, तो उसे मैं अच्छी जमीन बताता हूँ। उस धर्म के अनुसार ठीक से चलनेवाले जो श्रावक हैं, उन्हें मैं अच्छे बीज बताता हूँ।

…महानाम ! सरकानि शाक्य ने मरने के समय धर्म को पूरा कर लिया था।

§ ६. पठम अनाथपिण्डिक सुत्त (५३. ३. ६)

अनाथपिण्डिक गृहपति के गुण

श्रावस्ती… जेतवन…।

उस समय, अनाथपिण्डिक गृहपति बड़ा बीमार पड़ा था।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति ने एक पुरुष को आमन्त्रित किया, …सुनो, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं वहाँ जाओ और मेरी ओर से उनके चरणों पर शिर से वन्दना करना—भन्ते ! अनाथपिण्डिक गृहपति बड़ा बीमार पड़ा है, सो आयुष्मान् सारिपुत्र के चरणों पर शिर से वन्दना करता है। और, यह कहो—भन्ते ! यदि अनुकम्पा करके आयुष्मान् जहाँ अनाथपिण्डिक गृहपति का घर है वहाँ चलते तो बड़ी अच्छी बात होती।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, वह पुरुष…।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने चुप रहकर स्वीकार कर लिया।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्ण समय, पहन और पात्र-चीवर ले आयुष्मान् आनन्द को पीछे कर जहाँ अनाथपिण्डिक गृहपति का घर था वहाँ गये, और बिछे आसन पर बैठ गये।

बैठकर, आयुष्मान् सारिपुत्र अनाथपिण्डिक गृहपति से बोले, "गृहपति ! आप की तबियत…?"

भन्ते ! मेरी तबियत अच्छी नहीं…।

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन बुद्ध के प्रति जिस श्रद्धा से युक्त होकर मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है, वैसी अश्रद्धा आप में नहीं है; बल्कि गृहपति आपको बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा है—ऐसे वह भगवान्…। बुद्ध के प्रति उस दृढ़ श्रद्धा को अपने में देखते हुए वेदना को शान्त करें।

गृहपति ! …धर्म के प्रति उस दृढ़ श्रद्धा को अपने में देखते हुए वेदना को शान्त करें।

गृहपति ! …संघके प्रति…।

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन जिस दुःशील से युक्त होकर मरने के बाद नरक में…; बल्कि, गृहपति ! आप श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त हैं। उन श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों को अपने में देखते हुए वेदना में देखते हुए वेदना को शान्त करें।

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन जिस मिथ्या-दृष्टि से युक्त; बल्कि गृहपति ! आपको सम्यक्-दृष्टि है। उस सम्यक्-दृष्टि को अपने में देखते हुए…।

…उस सम्यक्-संकल्प को अपने में देखते हुए…।

…उस सम्यक्-वाचा को अपने में देखते हुए…।

…उस सम्यक्-कर्मान्त को अपने में देखते हुए…।

…उस सम्यक्-आजीव को अपने में देखते हुए… ।

…उस सम्यक्-व्यायाम को अपने में देखते हुये… ।

…उस सम्यक् स्मृति को अपने में देखते हुए… ।

…उस सम्यक्-समाधि को अपने में देखते हुए… ।

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन जिस मिथ्या-ज्ञान से युक्त…; बल्कि, गृहपति ! आप को सम्यक्-ज्ञान है । उस सम्यक्-ज्ञान को अपने में देखते हुए… ।

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन जिस मिथ्या-विमुक्ति से युक्त…; बल्कि, गृहपति ! आपको सम्यक्-विमुक्ति है । उस सम्यक्-विमुक्ति को अपने में देखते हुए… ।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति की वेदनायें शान्त हो गईं ।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति ने आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् आनन्द को स्वयं स्थालीपाक परोसा ।

तब, आयुष्मान् सारिपुत्र के भोजन कर लेने के बाद अनाथपिण्डिक गृहपति नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक को आयुष्मान् सारिपुत्र ने इन गाथाओं से अनुमोदन किया—

बुद्ध के प्रति जिसे अचल श्रद्धा सुप्रतिष्ठित है,
जिसका शील कल्याणकर, श्रेष्ठ, सुन्दर और प्रशंसित है ॥ १ ॥
संघ के प्रति जिसे श्रद्धा है, जिसकी समझ सीधी है,
उसी को अदरिद्र कहते हैं, उसका जीवन सफल है ॥ २ ॥
इसलिए श्रद्धा, शील और स्पष्ट धर्म-ज्ञान से,
पण्डितजन युक्त होवें, बुद्धों के उपदेश को स्मरण करते हुए ॥ ३ ॥

तब आयुष्मान् सारिपुत्र अनाथपिण्डिक गृहपति को इन गाथाओं से अनुमोदन कर आसन से उठ चले गये ।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये… । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् आनन्द से भगवान् बोले—"आनन्द ! तुम इस दुपहरिये में कहाँ से आ रहे हो ?"

भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र ने अनाथपिण्डिक गृहपति को ऐसे-ऐसे उपदेश दिये हैं ।

आनन्द ! सारिपुत्र पण्डित है, महाप्रज्ञ है कि स्रोतापत्ति के चार अंगों को दस प्रकार से विभक्त कर देता है ।

§ ७. द्वितिय अनाथपिण्डिक सुत्त (५३. ३. ७)

चार बातों से भय नहीं

श्रावस्ती… जेतवन… ।

…तब, अनाथपिण्डिक गृहपति ने एक पुरुष को आमन्त्रित किया, "सुनो, जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ… ।"

…तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय पहन और पात्र-चीवर ले… ।

…भन्ते ! मेरी तबियत अच्छी नहीं… ।

गृहपति ! चार धर्मों से युक्त होने से अज्ञ पृथक्-जन को घबराहट, कँपकँपी और मृत्यु से भय होते हैं । किन चार से ?

गृहपति ! अज्ञ पृथक्-जन बुद्ध के प्रति अश्रद्धा से युक्त होता है । उस अश्रद्धा को अपने में देख, उसे घबराहट, कँपकँपी और मृत्यु से भय होते हैं ।

धर्म के प्रति अश्रद्धा··· ।

संघ के प्रति अश्रद्धा··· ।

दुःशील··· ।

गृहपति ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से अज्ञ पृथक्-जन को घबड़ाहट, कँपकँपी और मृत्यु से भय होते हैं ।

गृहपति ! चार धर्मों से युक्त होने से पण्डित आर्यश्रावक को न घबड़ाहट, न कँपकँपी और न मृत्यु से भय होते हैं । किन चार से ?

गृहपति ! पण्डित आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त··· ।

धर्म··· । संघ··· । श्रेष्ठ और सुन्दर शील··· ।

गृहपति ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से पण्डित आर्यश्रावक को न घबड़ाहट, न कँपकँपी और न मृत्यु से भय होते हैं ।

भन्ते आनन्द ! मुझे भय नहीं होता । मैं किससे डरूँगा ? भन्ते ! मैं बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···; धर्म···; संघ···; तथा भगवान् ने जो गृहस्थोचित शिक्षापद बताये हैं, उनमें से मैं अपने में किसी को खण्डित हुआ नहीं देखता हूँ ।

गृहपति ! लाभ हुआ, सुलाभ हुआ !! यह आपने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है ।

§ ८. ततिय अनाथपिण्डिक सुत्त (५३. ३. ८)

आर्यश्रावक को वैर-भय नहीं

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ आया··· ।

एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति से भगवान् बोले—"गृहपति ! आर्यश्रावक के पाँच भय, वैर शान्त होते हैं । वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है । वह आर्यज्ञान को प्रज्ञा से पैठ कर देख लेता है । वह यदि चाहे तो अपने विषय में ऐसा कह सकता है—मेरा नरक क्षीण हो गया, तिरश्चीन योनि क्षीण हो गई··· मैं स्रोतापन्न हूँ··· ।

गृहपति ! जीव-हिंसा करनेवाले को जीव-हिंसा करनेके कारण इस लोक में भी और परलोक में भी भय तथा वैर होते हैं । जीव-हिंसा से विरत रहनेवाले के वह वैर और भय शान्त होते हैं ।

···चोरी से विरत रहनेवाले के··· ।

···व्यभिचार से विरत रहनेवाले के··· ।

···मिथ्या-भाषण से विरत रहनेवाले के··· ।

···सुरा आदि नशीली चीजों के सेवन से विरत रहने वाले के··· ।

इन से पाँच भय-वैर शान्त होते हैं ।

वह किन स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है ?

बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· । धर्म··· । संघ··· । श्रेष्ठ और सुन्दर शील··· ।

वह इन्हीं स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है ।

किस आर्यज्ञान को वह प्रज्ञा से पैठ कर देख लेता है ?

गृहपति ! आर्यश्रावक प्रतीत्य समुत्पाद का ठीक से मनन करता है—इस तरह, इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है । इस तरह इसके न होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध होने से यह निरुद्ध हो जाता है । जो यह अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान··· । ···इस तरह सारे दुःख-समुदाय का निरोध होता है ।

इसी आर्यज्ञान को वह प्रज्ञा से पैठ कर देख लेता है।

गृहपति ! (इस तरह) आर्यश्रावक के पाँच भय वैर शान्त होते हैं। वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है। वह आर्य-ज्ञान को प्रज्ञा से पैठकर देख लेता है। वह यदि चाहे तो अपने विषय में ऐसा कह सकता है—मेरा नरक क्षीण हो गया··· मैं स्रोतापन्न हूँ···।

§ ९. भय सुत्त (५३.३. ९)

वैर-भय रहित व्यक्ति

श्रावस्ती··· जेतवन···।

तब कुछ भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ आये···।

एक ओर बैठे उन भिक्षुओं से भगवान् बोले—··· [ऊपर जैसा ही]

§ १०. लिच्छवि सुत्त (५३. ३. १०)

भीतरी स्नान

एक समय भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

तब लिच्छवियों का महामात्य नन्दक जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे लिच्छवियों के महामात्य नन्दक से भगवान् बोले—"नन्दक ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है···। किन चार से ?

बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा···। धर्म···। संघ···। श्रेष्ठ और सुन्दर शील···।

नन्दक ! इन चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक दिव्य और मानुष आयुवाला होता है, वर्णवाला होता है··· सुखवाला होता है, आधिपत्यवाला होता है।

नन्दक ! इसे मैं किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कह रहा हूँ, किन्तु जिसे मैंने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है वही कह रहा हूँ।

यह कहने पर, कोई एक पुरुष आकर···नन्दक से बोला—भन्ते ! स्नान का समय हो गया।

अरे ! इस बाहरी स्नान से क्या, मैंने आध्यात्म (= भीतरी) स्नान कर लिया, जो भगवान् के प्रति श्रद्धा हुई।

सरकानि वर्ग समाप्त

चौथा भाग

पुण्याभिसन्द वर्ग

§ १. पठम अभिसन्द सुत्त (५३. ४. १)

पुण्य की चार धारायें

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! चार पुण्य की धारायें = कुशल की धारायें, सुखवर्धक हैं । कौन-सी चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भिक्षुओ ! यही चार पुण्य की··· ।

§ २. दुतिय अभिसन्द सुत्त (५३. ४. २)

पुण्य की चार धारायें

भिक्षुओ ! चार पुण्य की धारायें = कुशल की धारायें, सुखवर्धक हैं । कौन-सी चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

भिक्षुओ ! फिर भी आर्यश्रावक मल-मात्सर्य से रहित चित्त से घर में बसता है, दानशील, दानी, त्याग में रत, याचन करने के योग्य··· । यह चौथी पुण्य की धारा = कुशल की धारा सुखवर्धक है ।

भिक्षुओ ! यही चार पुण्य की··· ।

§ ३. ततिय अभिसन्द सुत्त (५३. ४. ३)

पुण्य की चार धारायें

भिक्षुओ ! चार पुण्य की··· । कौन चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

प्रज्ञावान् होता है; (सभी चीजें) उदय और अस्त होने वाली हैं—इस प्रज्ञा से युक्त होता है; श्रेष्ठ और तीक्ष्ण प्रज्ञा से युक्त होता है जिससे दुःखों का बिल्कुल क्षय हो जाता है । यह चौथी पुण्य की धारा, कुशल की धारा सुखवर्धक है ।

भिक्षुओ ! यही चार पुण्य की··· ।

§ ४. पठम देवपद सुत्त (५३. ४. ४)

चार देव-पद

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

भिक्षुओ ! यह चार देवों के देव-पद, अविशुद्ध प्राणियों के विशुद्धि के लिए, अस्वच्छ प्राणियों को स्वच्छ करने के लिए हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भिक्षुओ ! यह चार देवों के देव-पद··· ।

§ ५. दुतिय देवपद सुत्त (५३. ४. ५)

चार देव-पद

भिक्षुओ ! यह चार देवों के देव-पद··· । कौन से चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्··· । वह ऐसा चिन्तन करता है, "देवों का देवपद क्या है ?" वह यह समझता है, "मैं सुनता हूँ कि देवता हिंसा से विरत रहते हैं, मैं भी किसी चल या अचल प्राणी को नहीं सताता हूँ। यह मैं तो देव-पद से युक्त होकर विहार करता हूँ। यह प्रथम देवों का देव-पद है··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भिक्षुओ ! यही चार देवों के देव-पद··· ।

§ ६. सभागत सुत्त (५३. ४. ६)

देवता भी स्वागत करते हैं

भिक्षुओ ! चार धर्मों से युक्त पुरुष को देवता भी सन्तोषपूर्वक स्वागत के शब्द कहते हैं।

किन चार से ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान्··· । जो देवता बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त हैं वह यहाँ मरकर वहाँ उत्पन्न होते हैं। उनके मन में यह होता है—बुद्ध के प्रति जिस श्रद्धा से युक्त हो हम वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुए हैं, उसी श्रद्धा से युक्त आर्यश्रावक को देवता "आइये !" कह अपने पास बुलाते हैं।

धर्म··· ।

संघ··· ।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भिक्षुओ ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त पुरुष को देवता भी सन्तोषपूर्वक स्वागत के शब्द कहते हैं।

§ ७. महानाम सुत्त (५३. ४. ७)

सच्चे उपासक के गुण

एक समय भगवान् शाक्य (जनपद)में कपिलवस्तुमें निग्रोधाराममें विहार करते थे।

तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ आया··· । एक ओर बैठ महानाम शाक्य भगवान्‌से बोला, "भन्ते ! कोई उपासक कैसे होता है ?"

महानाम ! जो बुद्ध की, धर्म की और संघ की शरण में आ गया है वही उपासक है।

भन्ते ! उपासक शीलसम्पन्न कैसे होता है ?

महानाम ! जो उपासक जीवहिंसा से विरत होता है···शराब इत्यादि नशीली चीजोंके सेवन करने से विरत होता है; वह उपासक शील-सम्पन्न है।

भन्ते ! उपासक श्रद्धा-सम्पन्न कैसे होता है ?

महानाम ! जो उपासक श्रद्धालु होता है; बुद्ध की बोधिमें श्रद्धा करता है—ऐसे वह भगवान्···; महानाम ! इतनेसे उपासक श्रद्धा-सम्पन्न होता है।

भन्ते ! उपासक त्याग-सम्पन्न कैसे होता है ?

महानाम ! उपासक मल-मात्सर्यसे रहित···; महानाम ! इतने से उपासक त्याग-सम्पन्न होता है।

भन्ते ! उपासक प्रज्ञा-सम्पन्न कैसे होता है ?

महानाम ! उपासक प्रज्ञावान् होता है; सभी चीज उदय और अस्त होती हैं—इस प्रज्ञासे युक्त होता है; आर्य और तीक्ष्ण प्रज्ञासे युक्त होता है। जिससे दुःखोंका बिल्कुल क्षय होता है। महानाम ! इतने से उपासक प्रज्ञा-सम्पन्न होता है।

§ ८. वस्स सुत्त (५३. ४. ८)

आश्रव-क्षय के साधक-धर्म

भिक्षुओ ! जैसे पर्वत के ऊपर कुछ बरस जाने से पानी नीचे की ओर बहते हुए पर्वत के कन्दरे और प्रदर को भर देता है, उनको भरकर छोटी-छोटी नालियों को भर देता है; उनको भरकर बड़े-बड़े नालों को भर देता है; ···छोटी-छोटी नदियों को भर देता है; ···बड़ी-बड़ी नदियों को भर देता है; ···महासमुद्र, सागर को भी भर देता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही आर्यश्रावक को जो बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा है, धर्म के प्रति···, संघ के प्रति···; श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···; यह धर्म बहते हुए जाकर आश्रवों के क्षय के लिए साधक होते हैं।

§ ९. कालि सुत्त (५३. ४. ९)

स्रोतापन्न के चार धर्म

[ऊपर जैसा ही]

तब, भगवान् पूर्वाह्ण-समय पहन और पात्र-चीवर ले जहाँ कालिगोधा शाक्यानी का घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये।

···एक ओर बैठी कालिगोधा शाक्यानी से भगवान् बोले—"गोधे ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्राविका स्रोतापन्न होती है···। किन चार से ?

"गोधे ! आर्यश्राविका बुद्धके प्रति दृढ़ श्रद्धा···।

"धर्म के प्रति···।

"संघ के प्रति···।

"मल-मात्सर्य से रहित चित्त से घर में बसती है···।

"गोधे ! इन्हीं चार धर्मों से···।"

भन्ते ! भगवान् ने जो यह चार स्रोतापत्ति के अंग बताये हैं, वह धर्म मुझमें हैं, मैं उनका पालन करती हूँ।···

गोधे ! तुम्हें लाभ हुआ, सुलाभ हुआ, तुमने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है।

§ १०. नन्दिय सुत्त (५३. ४. १०)

प्रमाद तथा अप्रमाद से विहरना

[ऊपर जैसा ही]

···एक ओर बैठ नन्दिय शाक्य भगवान् से बोला—"भन्ते ! जिस आर्यश्रावक के चार स्रोतापत्ति-अंग किसी तरह कुछ भी नहीं है वह प्रमाद से विहार करने वाला कहा जाता है।"

नन्दिय ! जिसे चार स्रोतापत्ति-अङ्ग किसी तरह कुछ भी नहीं है उसे मैं बाहर का पृथक्-जन कहता हूँ।

नन्दिय ! और भी जैसे आर्यश्रावक प्रमाद से विहार करनेवाला या अप्रमाद से विहार करने वाला होता है उसे सुनो, अच्छी तरह मन में लाओ, मैं कहता हूँ।

"भन्ते ! बहुत अच्छा" कह, नन्दिय शाक्य ने भगवन् को उत्तर दिया।

भगवान् बोले—

नन्दिय ! कैसे आर्यश्रावक प्रमाद से विहार करने वाला होता है ?

नन्दिय ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है—ऐसे वह भगवान्···। वह अपनी इस श्रद्धा से संतुष्ट हो, इसके आगे दिन में प्रविवेक के लिये या रात में ध्यानाभ्यास के लिये परवाह नहीं करता है। इस प्रकार प्रमाद से विहार करने से उसे प्रमोद नहीं होता है। प्रमोद के न होने से उसे प्रीति भी नहीं होती है। प्रीति के नहीं होने से उसे प्रश्रब्धि भी नहीं होती है। प्रश्रब्धि के नहीं होने से वह दुःख-पूर्वक विहार करता है। दुःखी पुरुष का चित्त समाहित नहीं होता है। चित्त के समाहित न होने से उसे धर्म भी प्रगट नहीं होते हैं। धर्मों के प्रगट नहीं होने से वह प्रमाद-विहारी कहा जाता है।

धर्म···। संघ···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···। ···इसके आगे दिन में प्रविवेक के लिये या रात में ध्यानाभ्यास के लिये परवाह नहीं करता है।···

नन्दिय ! कैसे आर्यश्रावक अप्रमाद से विहार करने वाला होता है ?

नन्दिय ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होता है···। वह अपनी इस श्रद्धा भर ही से संतुष्ट न हो, इसके आगे दिन में प्रविवेक के लिये और रात में ध्यानाभ्यास के लिये प्रयत्न करता है। इस प्रकार अमाद से विहार करने से उसे प्रमोद होता है। प्रमोद के होने से प्रीति होती है। प्रीति के होने से उसे प्रश्रब्धि होती है। प्रश्रब्धि के होने से वह सुख-पूर्वक विहार है। सुख से चित्त समाहित होता है। चित्त के समाहित होने से उसे धर्म प्रगट हो जाते हैं। धर्मों के प्रगट होने से वह अप्रमाद-विहारी कहा जाता है।

धर्म···। संघ···।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

पुण्याभिसन्द वर्ग समाप्त

पाँचवाँ भाग

सगाथक पुण्याभिसन्द वर्ग

§ १. पठम अभिसन्द सुत्त (५३. ५. १)

पुण्य की चार धारायें

भिक्षुओ ! चार पुण्य की धारायें = कुशल की धारायें, सुखवर्धक हैं। कौन चार ?

भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।

धर्म के प्रति··· ।

संघ के प्रति··· ।

श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भिक्षुओ ! यही चार पुण्य की धारायें··· ।

भिक्षुओ ! इन चार से युक्त आर्यश्रावक को यह कहना कठिन है कि—इनके पुण्य इतने हैं, कुशल इतने हैं, सुख की वृद्धि इतनी है। अतः वह असंख्येय = अप्रमेय = महा-पुण्य-स्कन्ध नाम पाता है।

भिक्षुओ ! जैसे समुद्र के जल के विषय में यह कहा नहीं जा सकता कि—इतना जल है, इतना आल्हक (= उस समय की एक तौल) है, इतना सौ, हजार या लाख आल्हक है; बल्कि वह असंख्येय = अप्रमेय महा-उदक-स्कन्ध—ऐसा कहा जाता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, इन चार से युक्त आर्यश्रावक के विषय में यह कहना कठिन है··· ।

···भगवान् यह बोले—

जैसे अगाध, महासर, महोदधि,
खतरों से भरे, रत्नों के आकर में,
नर-गण-संघ-सेवित नदियाँ,
आकर मिल जाती हैं ॥
वैसे ही, अन्न-पान-वस्त्र के दान करने वाले,
शय्या-आसन-चादर के दानी,
पण्डित पुरुष में पुण्य की धारायें आ गिरती हैं,
वारि-वहा नदियाँ जैसे सागर में ॥

§ २. दुतिय अभिसन्द सुत्त (५३. ५. २)

पुण्य की चार धारायें

भिक्षुओ ! चार पुण्य की धारायें···। कौन चार ?

भिक्षुओ ! बुद्ध के प्रति···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। मल-मात्सर्य-रहित चित्त से घर में बसता है···।

भिक्षुओ ! इन चार से युक्त आर्यश्रावक के विषय में यह कहना कठिन है···।

भिक्षुओ ! जैसे, जहाँ गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही महानदियाँ गिरती हैं वहाँ के जल के विषय में यह कहना कठिन है···।

भिक्षुओ ! वैसे ही, इन चार से युक्त आर्यश्रावक के विषय में यह कहना कठिन है।

भगवान् यह बोले···—

जैसे अगाध, महासर, महोदधि;

···[ऊपर जैसा ही]

§ ३. ततिय अभिसन्द सुत्त (५३. ५. ३)

पुण्य की चार धारायें

भिक्षुओ ! चार पुण्य की धारायें···। कौन चार ?

भिक्षुओ ! बुद्ध के प्रति···। धर्म के प्रति···। संघ के प्रति···। प्रज्ञावान् होता है···।

भिक्षुओ ! इन चार से युक्त आर्यश्रावक के विषय में यह कहना कठिन है···।

भगवान् बोले···—

जो पुण्य-कामी, पुण्य में प्रतिष्ठित,
अमृत-पद की प्राप्ति के लिये मार्ग की भावना करता है,
उसने धर्म के रहस्य को पा लिया, क्लेश-क्षय में रत,
वह कम्पित नहीं होता, मृत्यु-राज के पास नहीं जाता है ॥

§ ४. पठम महद्धन सुत्त (५३. ५. ४)

महाधनवान् श्रावक

भिक्षुओ ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक सम्पत्तिशाली, महाधनी, महा-भोग, महा-यशवाला कहा जाता है ? किन चार से ?

बुद्ध के प्रति··· । धर्म··· । संघ··· । श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से··· ।

भिक्षुओ ! इन्हीं चार धर्मों से युक्त होने से··· ।

§ ५. दुतिय महद्धन सुत्त (५३. ५. ५)

महाधनवान् श्रावक

···[ऊपर जैसा ही]

§ ६. भिक्खु सुत्त (५३. ५. ६)

चार बातों से स्रोतापन्न

भिक्षुओ ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है··· । किन चार से ?

बुद्ध के प्रति··· । धर्म··· । संघ··· । श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।···

§ ७. नन्दिय सुत्त (५३. ५. ७)

चार बातों से स्रोतापन्न

कपिलवस्तु··· ।

···एक ओर बैठे नन्दिय शाक्य से भगवान् बोले—"नन्दिय ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न··· ।"

§ ८. भद्दिय सुत्त (५३. ५. ८)

चार बातों से स्रोत

कपिलवस्तु···।

···एक ओर बैठे भद्दिय शाक्य से···।

§ ९. महानाम सु··· (५३. ५. ९)

चार बातों से स्रोतापन्न

कपिलवस्तु···।

···एक ओर बैठे महानाम शाक्य से···।

§ १०. अङ्ग सुत्त (५३. ५. १०)

स्रोतापन्न के चार अङ्ग

भिक्षुओ! स्रोतापत्ति के अंग चार हैं। कौन चार?

सत्पुरुष का सेवन। सद्धर्म का श्रवण। ठीकसे मनन करना। धर्मानुकूल आचरण।

भिक्षुओ! यही स्रोतापत्ति के चार अङ्ग हैं।

सगाथक पुण्याभिसन्द वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

सप्रज्ञ वर्ग

§ १. सगाथक सुत्त (५३. ६. १)

चार बातों से स्रोतापन्न

भिक्षुओ ! चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है··· । किन चार से ?
भिक्षुओ ! आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा··· ।
धर्म के प्रति··· ।
संघ के प्रति··· ।
श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।
भिक्षुओ ! इन्हीं चार धर्मों से··· ।
भगवान् यह बोले —

बुद्ध के प्रति जिसे अचल सुप्रतिष्ठित श्रद्धा है,
जिसका शील कल्याण-कर, आर्य, सुन्दर और प्रशंसित है ।
संघ के प्रति जो प्रसन्न है, जिसका ज्ञान ऋजुभूत है,
उसी को अदरिद्र कहते, उसका जीना सफल है ॥
इसलिए, श्रद्धा, शील और स्पष्ट धर्म-दर्शन में,
पण्डितजन लग जावें बुद्ध के उपदेश को स्मरण करते हुए ॥

§ २. वस्सवुत्थ सुत्त (५३. ६. २)

अर्हत् कम, शैक्ष्य अधिक

श्रावस्ती··· जेतवन··· ।

उस समय, कोई भिक्षु श्रावस्ती में वर्षावास कर किसी काम से कपिलवस्तु आया हुआ था ।

···तब, कपिलवस्तु के शाक्य जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये, और उसे अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, कपिलवस्तु के शाक्य उस भिक्षु से बोले—"भन्ते ! भगवान् भले-चंगे तो हैं न ?"

हाँ आवुस ! भगवान् भले-चंगे हैं ।

भन्ते ! सारिपुत्र और मोग्गलान तो भले-चंगे हैं न ?

हाँ आवुस ! वे भी भले-चंगे हैं ।

भन्ते ! और, भिक्षुसंघ तो भला-चंगा है न ?

हाँ आवुस ! भिक्षु-संघ भी भला-चंगा है ।

भन्ते ! इस वर्षावास में क्या आपने भगवान् के मुख से स्वयं कुछ सुनकर सीखा है ?

हाँ आवुस ! भगवान् के मुख से स्वयं कुछ सुनकर मैंने सीखा है—भिक्षुओ ! ऐसे भिक्षु थोड़े

ही हैं जो आश्रवों के क्षय हो जाने से अनाश्रव चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति को देखते ही देखते स्वयं ज्ञान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करते हैं। किन्तु, ऐसे ही भिक्षु बहुत हैं जो पाँच नीचेवाले बन्धनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हो बिना उस लोक से लौटे परिनिर्वाण पा लेते हैं।

आवुस ! मैंने और भी कुछ भगवान् के मुख से स्वयं सुनकर सीखा है—भिक्षुओ ! ऐसे भिक्षु थोड़े ही हैं जो पाँच नीचेवाले बन्धनों के क्षय हो जाने से, किन्तु, ऐसे ही भिक्षु बहुत हैं जो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से राग-द्वेष-मोह के अत्यन्त दुर्बल हो जाने से सकृदागामी होते हैं, इस लोक में एक ही बार आ दुःखों का अन्त कर लेते हैं।

आवुस ! मैंने और भी···सीखा है—भिक्षुओ ! ऐसे भिक्षु थोड़े ही हैं जो···सकृदागामी होते हैं··· । किन्तु ऐसे ही भिक्षु बहुत हैं जो तीन संयोजनों के क्षय होने से स्रोतापन्न होते हैं, जो मार्ग से च्युत नहीं हो सकते, परम-पद पाना जिनका निश्चय है, जो संबोधि-परायण हैं।

§ ३. धम्मदिन्न सुत्त (५३. ६. ३)

गार्हस्थ-धर्म

एक समय भगवान् वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

तब, धर्मदिन्न उपासक पाँच सौ उपासकों के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठ, धर्मदिन्न उपासक भगवान् से बोला, "भन्ते ! भगवान् हमें कृपया कुछ उपदेश करें कि जो दीर्घकाल तक हमारे हित और सुख के लिये हो।"

धर्मदिन्न ! तो तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—बुद्ध ने जिन गम्भीर, गम्भीर अर्थ वाले, लोकोत्तर और शून्यता को प्रकाशित करनेवाले सूत्रों का उपदेश किया है, उन्हें समय-समय पर लाभकर विहार करूँगा। धर्मदिन्न ! तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिये।

भन्ते ! बाल-बच्चों की झंझट में रहनेवाले··· रुपये-पैसे के पीछे पड़े हुए हम लोगों को यह आसान नहीं कि··· उन्हें समय-समय पर लाभ कर विहार करें। भन्ते ! पाँच शिक्षा-पदों में स्थित रहने वाले हमको इसके ऊपर के कुछ धर्म का उपदेश करें।

धर्मदिन्न ! तो, तुम्हें ऐसा सीखना चाहिए—

बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त होऊँगा··· धर्म के प्रति··· । संघ के प्रति··· । श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त··· ।

भन्ते ! भगवान् ने जो यह स्रोतापत्ति के चार अंग बताये हैं वे मुझमें हैं ··· ।

धर्मदिन्न ! तुम्हें लाभ हुआ, सुलाभ हुआ··· ।

§ ४. गिलान सुत्त (५३. ६. ४)

विमुक्त गृहस्थ और भिक्षु में अन्तर नहीं

कपिलवस्तु··· निग्रोधाराम···।

उस समय, कुछ भिक्षु भगवान् के लिए चीवर बना रहे थे कि तेमासा के बीतने पर बने चीवर को लेकर भगवान् चारिका के लिए निकलेंगे।

महानाम शाक्य ने सुना कि कुछ भिक्षु··· ।

भन्ते ! एक ओर बैठ महानाम शाक्य भगवान् से बोला—"भन्ते ! मैंने सुना है कि कुछ भिक्षु भगवान् के लिए चीवर बना रहे हैं कि तेमासा के बीतने पर बने चीवर को लेकर भगवान् चारिका के

लिए निकलेंगे। भन्ते ! जो सप्रज्ञ से सप्रज्ञ उपासक हैं उन्होंने अभी तक भगवान् के मुख से स्वयं सुनकर कुछ सीखने नहीं पाया है, वे जो बड़े बीमार पड़े हैं उन्हें भगवान् धर्मोपदेश करते तो बड़ा अच्छा था।

महानाम ! उन्हें इन चार धर्मों से आश्वासन देना चाहिए—आयुष्मान् आश्वासन करें कि आयुष्मान् बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा से युक्त हैं—ऐसे वह भगवान्···।

धर्म···। संघ···। श्रेष्ठ और सुन्दर शीलों से युक्त···।

महानाम ! उन्हें इन चार धर्मों से आश्वासन देकर यह कहना चाहिए—"क्या आयुष्मान् को माता-पिता के प्रति मोह-माया है ?"

यदि वह कहे कि—हाँ, मुझे माता-पिता के प्रति मोह-माया है, तो उसे यह कहना चाहिये—"यदि आप माता-पिता के प्रति मोह-माया करेंगे तो भी मरेंगे ही, और नहीं करेंगे तो भी; तो क्यों न उस मोह-माया को छोड़ दें।

यदि वह ऐसा कहे—माता-पिता के प्रति मेरी जो मोह-माया थी वह प्रहीण हो गई, तो उसे यह कहना चाहिये, "क्या आयुष्मान् को स्त्री और बाल-बच्चों के प्रति मोह-माया है ?"···

क्या आयुष्मान् को मानुषिक पाँच काम-गुणों के प्रति··· ?

यदि वह कहे—मानुषिक पाँच काम-गुणों से चित्त हट चुका, चार महाराज देवों में चित्त लगा है, तो उसे यह कहना चाहिए—"आवुस ! चार महाराज देवों से भी त्रयस्त्रिंश देव बड़े-चढ़े हैं; अच्छा हो यदि आयुष्मान् चार महाराज देवों से अपने चित्त को हटा त्रयस्त्रिंश देवों में लगावें।

यदि वह कहे—हाँ, मैंने चार महाराज देवों से अपने चित्त को हटा त्रयस्त्रिंश देवों में लगा दिया है, तो उसे यह कहना चाहिए—"आवुस ! त्रयस्त्रिंश देवों से भी याम देव···; तुषित देव···; निर्माण-रति देव···; परनिर्मितवशवर्ती देव···; ब्रह्मलोक···।

यदि वह कहे—हाँ, मैंने परनिर्मितवशवर्ती देवों से अपने चित्त को हटा ब्रह्मलोक में लगा दिया है, तो उसे यह कहना चाहिए—"आवुस ! ब्रह्मलोक भी अनित्य है, अध्रुव है, सत्काय की अविद्या से युक्त है, अच्छा हो यदि आयुष्मान् ब्रह्मलोक से अपने चित्त को हटा सत्काय के निरोध के लिए लगा दें।

यदि वह कहे—मैंने ब्रह्मलोक से अपने चित्त को हटा सत्काय के निरोध के लिए लगा दिया है, तो हे महानाम ! उस उपासक का आश्रवों से विमुक्त चित्तवाले भिक्षु से कोई भेद नहीं है, ऐसा मैं कहता हूँ। विमुक्ति विमुक्ति एक ही है।

§ ५. पठम चतुप्फल सुत्त (५३. ६. ५)

चार धर्मों की भावना से स्रोतापत्ति-फल

भिक्षुओ ! चार धर्म भावित और अभ्यस्त होने से स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होते हैं। कौन से चार ?

सत्पुरुष का सेवन करना, सद्धर्म का श्रवण, ठीक से मनन करना, धर्मानुकूल आचरण।

भिक्षुओ ! यही चार धर्म भावित और अभ्यस्त होने से स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होते हैं।

§ ६. दुतिय चतुप्फल सुत्त (५३. ६. ६)

चार धर्मों की भावना से सकृदागामी-फल

···सकृदागामी-फल के साक्षात्कार के लिए···।

§ ७. ततिय चतुप्फल सुत्त (५३. ६. ७)

चार धर्मों की भावना से अनागामी-फल

···अनागामी-फल के साक्षात्कार के लिए··· ।

§ ८. चतुत्थ चतुप्फल सुत्त (५३. ६. ८)

चार धर्मों की भावना से अर्हत् फल

···अर्हत्-फल के साक्षात्कार के लिए··· ।

§ ९. पटिलाभ सुत्त (५३. ६. ९)

चार धर्मों की भावना से प्रज्ञा-लाभ

···प्रज्ञा के प्रतिलाभ के लिए··· ।

§ १०. वुद्धि सुत्त (५३. ६. १०)

प्रज्ञा-वृद्धि

···प्रज्ञा की वृद्धि के लिए··· ।

§ ११. वेपुल्ल सुत्त (५३. ६. ११)

प्रज्ञा की विपुलता

···प्रज्ञा की विपुलता के लिए··· ।

सप्रज्ञ-वर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

महाप्रज्ञा वर्ग

§ १. महा सुत्त (५३. ७. १)

महा-प्रज्ञा

···महा-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ २. पुथु सुत्त (५३. ७. २)

पृथुल-प्रज्ञा

···पृथुल-प्रज्ञता के लिये···

§ ३. विपुल सुत्त (५३. ७. ३)

विपुल-प्रज्ञा

···विपुल-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ ४. गम्भीर सुत्त (५३. ७. ४)

गम्भीर-प्रज्ञा

···गम्भीर-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ ५. अप्पमत्त सुत्त (५३. ७. ५)

अप्रमत्त-प्रज्ञा

···अप्रमत्त-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ ६. भूरि सुत्त (५३. ७. ६)

भूरि-प्रज्ञा

···भूरि-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ ७. बहुल सुत्त (५३. ७. ७)

प्रज्ञा-बाहुल्य

···प्रज्ञा-बाहुल्य के लिये··· ।

§ ८. सीघ सुत्त (५३. ७. ८)

शीघ्र-प्रज्ञा

···शीघ्र-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ ९. लहु सुत्त (५३. ७. ९)

लघु-प्रज्ञा

···लघु-प्रज्ञता के लिये··· ।

§ १०. हास सुत्त (५३. ७. १०)

प्रसन्न-प्रज्ञा

···प्रसन्न-प्रज्ञा के लिये··· ।

§ ११. जवन सुत्त (५३. ७. ११)

तीव्र-प्रज्ञा

···तीव्र-प्रज्ञा के लिये··· ।

§ १२. तिक्ख सुत्त (५३. ७. १२)

तीक्ष्ण-प्रज्ञा

···तीक्ष्ण-प्रज्ञा के लिये··· ।

§ १३. निब्बेधिक सुत्त (५३. ७. १३)

निर्वेधिक-प्रज्ञा

···तत्व में पैठनेवाली प्रज्ञा के लिये··· ।

महाप्रज्ञा वर्ग समाप्त

स्रोतापत्ति-संयुत्त समाप्त

बारहवाँ परिच्छेद

५४. सत्य-संयुत्त

पहला भाग

समाधि वर्ग

§ १. समाधि सुत्त (५४. १. १)

समाधि का अभ्यास करना

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो। भिक्षुओ ! समाधिस्थ भिक्षु यथार्थतः जान लेता है। क्या यथार्थतः जान लेता है ?

यह दुःख है, इसे यथार्थतः जान लेता है। यह दुःख-समुदय (= दुःख की उत्पत्ति का कारण) है, इसे यथार्थतः जान लेता है। यह दुःख-निरोध है, इसे···। यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है, इसे···।···

भिक्षुओ ! इसलिये, यह दुःख-समुदय है—ऐसा समझना चाहिये। यह दुःख-निरोध है···। यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है···।

§ २. पटिसल्लान सुत्त (५४. १. २)

आत्म-चिन्तन

भिक्षुओ ! आत्म-चिन्तन (= पटिसल्लान) करने में लगो। भिक्षुओ ! भिक्षु आत्म-चिन्तन कर यथार्थतः जान लेता है। क्या यथार्थतः जान लेता है ?

यह दुःख है, इसे···[ऊपर जैसा ही]

§ ३. पठम कुलपुत्त सुत्त (५४. १. ३)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जो कुलपुत्र ठीक से घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये थे, सभी चार आर्य सत्यों को यथार्थतः जानने के लिये ही।

भिक्षुओ ! अनागतकाल में···।

भिक्षुओ ! वर्तमानकाल में भी···सभी चार आर्य-सत्यों को जानने के लिये ही।

किन चार को ?

दुःख आर्यसत्य को। दुःख-समुदय आर्यसत्य को। दुःख-निरोध आर्यसत्य को। दुःख-निरोध-गामी-मार्ग आर्यसत्य को।···

भिक्षुओ ! इसलिये, यह दुःख है—ऐसा समझना चाहिये। यह दुःख-समुदय है···। यह दुःख-निरोध है···। यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है···।

§ ४. दुतिय कुलपुत्त सुत्त (५४. १. ४)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जो कुलपुत्र ठीक से घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये थे, और जिनने यथार्थतः जाना, सभी ने चार आर्य-सत्यों को यथार्थतः जाना।

भिक्षुओ ! अनागतकाल में...।

भिक्षुओ ! वर्तमानकाल में...।

...[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ५. पठम समणब्राह्मण सुत्त (५४. १. ५)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन श्रमण-ब्राह्मणों ने यथार्थतः जाना, सभी ने चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जाना।

भिक्षुओ ! अनागतकाल में...।

भिक्षुओ ! वर्तमानकाल में...।

...[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ६. दुतिय समणब्राह्मण सुत्त (५४. १. ६)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! जिन श्रमण-ब्राह्मणों ने अतीतकाल में परम-ज्ञान को यथार्थतः प्राप्त कर प्रगट किया था, सभी ने चार आर्य-सत्यों को ही यथार्थतः प्राप्त कर प्रगट किया था।

...[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ७. वितक्क सुत्त (५४. १. ७)

पाप-वितर्क न करना

भिक्षुओ ! पाप-मय अकुशल वितर्क मन में मत आने दो। जो यह, काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। सो क्यों ?

भिक्षुओ ! यह वितर्क अर्थ सिद्ध करने वाले नहीं हैं, ब्रह्मचर्य के अनुकूल नहीं हैं, निर्वेद के लिये नहीं हैं, विराग के लिये नहीं हैं, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न सम्बोधि और न निर्वाण के लिये हैं।

भिक्षुओ ! यदि तुम्हारे मन में कुछ वितर्क उठे, तो इसका कि 'यह दुःख है, यह दुःख-समुदय है; यह दुःख-निरोध है, यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है।

सो क्यों ?

भिक्षुओ ! यह वितर्क अर्थ सिद्ध करने वाले हैं, ब्रह्मचर्य के अनुकूल हैं...सम्बोधि और निर्वाण के लिये हैं।

भिक्षुओ ! इसलिये, यह दुःख है—ऐसा समझना चाहिये...।

§ ८. चिन्ता सुत्त (५४. १. ८)

पाप-चिन्तन न करना

भिक्षुओ ! पापमय अकुशल चिन्तन मत करो—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है; लोक सान्त है, या लोक अनन्त है; जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा है और शरीर दूसरा; तथागत मरने के बाद नहीं होते हैं, या होते हैं, होते भी हैं और नहीं भी होते हैं, न होते हैं, और न नहीं होते हैं।

सो क्यों ?

भिक्षुओ ! यह चिन्तन अर्थ सिद्ध करने वाले नहीं हैं···।

भिक्षुओ ! यदि तुम कुछ चिन्तन करो तो इसका कि 'यह दुःख है···।'

···[ऊपर जैसा ही]

§ ९. विग्गाहिक सुत्त (५४. १. ९)

लड़ाई-झगड़े की बात न करना

भिक्षुओ ! विग्रह (=लड़ाई-झगड़े) की बातें मत करो—तुम इस धर्म-विनय को नहीं जानते, मैं जानता हूँ; तुम इस धर्म-विनय को क्या जानोगे; तुम तो गलत रास्ते पर हो, मैं ठीक रास्ते पर हूँ; जो पहले कहना चाहिये था उसे पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिये था उसे पहले कह दिया; मैंने मतलब की बात कही, और तुमने तो उटपटांग; तुमने तो उलट-पुलट दिया; तुम पर यह वाद आरोपित हुआ, इससे छूटने की कोशिश करो; पकड़ लिये गये, यदि सको तो सुलझाओ।

सो क्यों ?

भिक्षुओ ! यह बात अर्थ सिद्ध करने वाली नहीं है···[शेष ऊपर जैसा ही [

§ १०. कथा सुत्त (५४. १. १०)

निरर्थक कथा न करना

भिक्षुओ ! अनेक प्रकार की तिरश्चीन (=निरर्थक) कथायें मत करो—जैसे, राज-कथा, चोर-कथा, महा-अमात्य कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, माला-कथा, गन्ध···, जाति-बिरादरी···, सवारी···, ग्राम···, निगम···, नगर···, जनपद···, स्त्री···, पुरुष···, सूर···, बाजार (= विशिखा)···, पनघट···, भूत-प्रेत···, नानात्व···, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका और भी इस तरहकी अनश्रुतियाँ।

सो क्यों ?

···[शेष ऊपर जैसा ही]

समाधि वर्ग समाप्त

दूसरा भाग

धर्मचक्र-प्रवर्तन वर्ग

§ १. धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त (५४. २. १)

तथागत का प्रथम उपदेश

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् वाराणसी में ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ! प्रव्रजितको दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिये। किन दो का?

(१) जो यह कामों के सुख के पीछे पड़ जाना है—हीन, ग्राम्य, पृथक् जनों के अनुकूल, अनार्य, अनर्थ करनेवाला। और (२) जो यह आत्म-क्लमथानुयोग (=पंचाग्नि तपना, इत्यादि कठोर तपस्यायें = आत्म पीड़ा) है— दुःख देनेवाला, अनार्य, अनर्थ करनेवाला।

भिक्षुओ! इन दो अन्तों को छोड़, तथागत ने मध्यम मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया है—जो चक्षु देनेवाला, ज्ञान पैदा करनेवाला, उपशम के लिये, अभिज्ञा के लिये, सम्बोधि के लिये, तथा निर्वाण के लिये है।

भिक्षुओ! वह मध्यम मार्ग क्या है जिसका तथागत ने ज्ञान प्राप्त किया है, जो चक्षु देनेवाला···?

यही आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो यह, (१) सम्यक्-दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यक्-वचन, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यक्-आजीव, (६) सम्यक्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति, और (८) सम्यक्-समाधि।

भिक्षुओ! यही मध्यम मार्ग है जिसका तथागत ने ज्ञान प्राप्त किया है···।

भिक्षुओ! 'दुःख आर्य-सत्य है'। जाति भी दुःख है, जरा भी, व्याधि भी, मरना भी, शोक-परिदेव (=रोना पीटना)-दुःख, दौर्मनस्य, उपायास (=परेशानी) भी। जो चाहा हुआ नहीं मिलता है वह भी दुःख है। संक्षेप से, पाँच उपादान स्कन्ध दुःख ही है।

भिक्षुओ! 'दुःख-समुदय आर्य-सत्य है'। जो यह "तृष्णा" है, पुनर्जन्म करानेवाली, मजा चाहनेवाली, राग करनेवाली, वहाँ-वहाँ आनन्द उठानेवाली। जो यह काम-तृष्णा, भव-तृष्णा (=शाश्वत-दृष्टि-सम्बन्धिनी तृष्णा), विभव-तृष्णा (उच्छेदवाद-दृष्टि-सम्बन्धिनी-तृष्णा)।

भिक्षुओ! 'दुःख-निरोध आर्यसत्य है'। जो उसी तृष्णा का बिल्कुल विराग=निरोध=त्याग=प्रतिनिःसर्ग=मुक्ति=अनालय है।

भिक्षुओ! दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य है जो यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है—सम्यक्-दृष्टि···सम्यक्-समाधि।

भिक्षुओ! "दुःख आर्यसत्य है" यह मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।··· भिक्षुओ! "यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञेय है" यह मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु···। भिक्षुओ! "यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञात हो गया" यह मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु···।

भिक्षुओ! "दुःख-समुदय आर्यसत्य है" यह मुझे···। भिक्षुओ! "दुःख-समुदय आर्यसत्य का

प्रहाण कर देना चाहिये" यह मुझे···। भिक्षुओ ! "दुःख-समुदय आर्यसत्य प्रहीण हो गया" यह मुझे···।

भिक्षुओ ! "दुःख-निरोध आर्यसत्य है" यह मुझे···। भिक्षुओ !" दुःख-निरोध आर्यसत्य का साक्षात्कार करना चाहिये "यह मुझे···। भिक्षुओ ! "···साक्षात्कार कर लिया गया" यह मुझे···।

भिक्षुओ ! "दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य है" यह मुझे···। भिक्षुओ ! "दुःख-निरोध-गामी मार्ग का अभ्यास करना चाहिये" यह मुझे···। भिक्षुओ। "दुःख-निरोध-गामी मार्ग का अभ्यास सिद्ध हो गया" यह मुझे पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।

भिक्षुओ ! जब तक, मुझे इन चार आर्यसत्यों में इस प्रकार तेहरा, बारह प्रकार से ज्ञान दर्शन यथार्थतः शुद्ध नहीं हुआ था, तब तक भिक्षुओ ! मैंने देवता-मार-ब्रह्मा के साथ इस लोक में, श्रमण और ब्राह्मणों में, जनता में, तथा देवता और मनुष्यों के बीच ऐसा दावा नहीं किया कि 'मैंने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि का लाभ कर लिया है।

भिक्षुओ ! जब मुझे इन चार आर्यसत्यों में इस प्रकार तेहरा, बारह प्रकारसे ज्ञान-दर्शन यथार्थतः शुद्ध हो गया। भिक्षुओ ! तभी मैंने···ऐसा दावा किया कि "मैंने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि का लाभ कर लिया है।" मुझे ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ—मेरा चित्त विमुक्त हो गया, यही मेरा अन्तिम जन्म है, अब पुनर्जन्म होने का नहीं।

भगवान् यह बोले। सन्तुष्ट हो पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया। इस धर्मोपदेश के कहे जाने पर आयुष्मान् कोण्डञ्ञ को राग-रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया—जो कुछ उत्पन्न होने वाला है सभी निरुद्ध होने वाला है।

भगवान् के यह धर्म-चक्र प्रवर्तित करने पर भूमिस्थ देवों ने शब्द सुनाये—वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में भगवान् ने अनुत्तर धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया है, जिसे न तो कोई श्रमण, न ब्राह्मण, न देव, न मार, न ब्रह्मा और न इस लोक में कोई दूसरा प्रवर्तित कर सकता है।

भूमिस्थ देवों के शब्द सुन चातुर्महाराजिक देवों ने भी शब्द सुनाये—वाराणसी के पास···।

···त्रयस्त्रिंश देवों ने भी···।

इस प्रकार, उसी क्षण, उसी लय, उसी मुहूर्त से ब्रह्मलोक तक यह शब्द पहुँच गये। यह दस सहस्र लोक-धातु काँपने = हिलने-डोलने लगी। देवों के देवानुभाव से भी बढ़ कर अप्रमाण अवभास लोक में प्रगट हुआ।

तब, भगवान् ने उदान के यह शब्द कहे—अरे ! कोण्डञ्ञ ने जान लिया, कोण्डञ्ञ ने जान लिया !! इसीलिये आयुष्मान् कोण्डञ्ञ का नाम अञ्ञा कोण्डञ्ञ पड़ा।

§ २. तथागतेन वुत्त सुत्त (५४. २. २)

चार आर्य-सत्यों का ज्ञान

भिक्षुओ ! "दुःख आर्य-सत्य है" यह बुद्ध को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ···।···परिज्ञेय है···।···परिज्ञात हो गया···।

भिक्षुओ ! "दुःख-समुदय आर्य-सत्य है" यह बुद्ध को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु···।···का प्रहाण करना चाहिये···।···प्रहीण हो गया···।

भिक्षुओ ! "दुःख-निरोध आर्य-सत्य है" यह बुद्ध को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु···।···का साक्षात्कार करना चाहिये···।···का साक्षात्कार हो गया···।

भिक्षुओ ! "दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य-सत्य है" यह बुद्ध को पहले कभी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु···।···का अभ्यास करना चाहिये···।···का अभ्यास सिद्ध हो गया···।

§ ३. खन्ध सुत्त (५४. २. ३)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! आर्य-सत्य चार हैं। कौन से चार ? दुःख आर्य-सत्य; दुःख-समुदय आर्य-सत्य; दुःख-निरोध आर्य-सत्य; दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य-सत्य।

भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य क्या है ? कहना चाहिये कि—यह पाँच उपादान-स्कन्ध, जो यह रूप-उपादान-स्कन्ध···विज्ञान-उपादान-स्कन्ध। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं दुःख आर्य-सत्य"।

भिक्षुओ ! दुःख-समुदय आर्य-सत्य क्या है ? जो यह तृष्णा···।

भिक्षुओ ! दुःख-निरोध आर्य-सत्य क्या है ? जो उसी तृष्णा का बिल्कुल विराग=निरोध···।

भिक्षुओ ! दुःख-निरोध-गामी मार्ग क्या है ? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग···।

भिक्षुओ ! यही आर्य-सत्य हैं। इसलिये, यह दुःख है—ऐसा समझना चाहिये···।

§ ४. आयतन सुत्त (५४. २. ४)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! आर्यसत्य चार हैं।···

भिक्षुओ ! दुःख आर्यसत्य क्या है ? कहना चाहिये कि—यह छः आध्यात्म के आयतन। कौन से छः ? चक्षु-आयतन···मन-आयतन। भिक्षुओ ! इसे कहते हैं दुःख आर्यसत्य।

भिक्षुओ ! दुःख-समुदय आर्यसत्य क्या है ?

···[शेष ऊपर जैसा ही]

§ ५. पठम धारण सुत्त (५४. २. ५)

चार आर्यसत्यों को धारण करना

भिक्षुओ ! मेरे उपदेश किये गये चार आर्यसत्यों को धारण करो।

यह कहने पर, कोई भिक्षु भगवान् से बोला—भन्ते ! भगवान् के उपदेश किये गये चार आर्य-सत्यों को मैं धारण करता हूँ।

भिक्षु ! कहो तो, मेरे उपदेश किये गये चार आर्यसत्यों को धारण कैसे करते हैं ?

भन्ते ! भगवान् ने दुःख को प्रथम आर्यसत्य बताया है, उसे मैं धारण करता हूँ।···दुःख-समुदय को द्वितीय आर्यसत्य···।···दुःख-निरोध को तृतीय···। दुःख-निरोध-गामी मार्ग को चतुर्थ···।

भन्ते ! भगवान् के उपदेश किये गये चार आर्यसत्यों को धारण मैं इस प्रकार करता हूँ।

भिक्षु ! ठीक, बहुत ठीक !! तुमने मेरे उपदेश किये गये चार आर्यसत्यों को ठीक से धारण किया है। मैंने दुःख को प्रथम आर्यसत्य बताया है, उसे वैसा ही धारण करो···मैंने दुःख-निरोध-गामी मार्ग को चतुर्थ आर्यसत्य बताया है, उसे वैसा ही धारण करो।···

§ ६. दुतिय धारण सुत्त (५४. २. ६)

चार आर्यसत्यों को धारण करना

···[ऊपर जैसा ही]

भन्ते ! भगवान् ने दुःख को प्रथम आर्यसत्य बताया है, उसे मैं धारण करता हूँ। भन्ते ! यदि कोई श्रमण या ब्राह्मण कहे, "दुःख प्रथम आर्यसत्य नहीं है, जिसे श्रमण गौतम ने बताया है, मैं दुःखको छोड़ दूसरा प्रथम आर्यसत्य बताऊँगा", तो यह सम्भव नहीं।

…दुःख-समुदय को द्वितीय आर्यसत्य…।

…दुःख-निरोध को तृतीय आर्यसत्य…।

…दुःख-निरोध-गामी मार्ग को चतुर्थ आर्यसत्य…।

भन्ते ! भगवान् के बताये चार आर्यसत्यों को मैं इसी प्रकार धारण करता हूँ।

भिक्षु ! ठीक, बहुत ठीक !! मेरे बताये चार आर्यसत्यों को तुमने बहुत ठीक धारण किया है।…

§ ७. अविज्जा सुत्त (५४. २. ७)

अविद्या क्या है ?

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'अविद्या, अविद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! अविद्या क्या है, और कोई अविद्या में कैसे पड़ जाता है ?"

भिक्षु ! जो दुःख का अज्ञान है, दुःख-समुदय का…, दुःख-निरोध का…, और दुःख-निरोध-गामी मार्ग का अज्ञान है, इसी को कहते हैं, 'अविद्या', और इसी से कोई अविद्या में पड़ता है।…

§ ८. विज्जा सुत्त (५४. २. ८)

विद्या क्या है ?

…एक ओर बैठ, वह भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! लोग 'विद्या, विद्या' कहा करते हैं। भन्ते ! विद्या क्या है, और कोई विद्या कैसे प्राप्त करता है ?"

भिक्षु ! जो दुःख का ज्ञान है, दुःख-समुदय का…, दुःख-निरोध का…, और दुःख-निरोध-गामी मार्ग का ज्ञान है, इसी को कहते हैं 'विद्या', और इसी से कोई विद्या का लाभ करता है।…

§ ९. संकासन सुत्त (५४. २. ९)

आर्यसत्यों को प्रगट करना

भिक्षुओ ! 'दुःख आर्यसत्य है' यह मैंने बताया है। उस दुःख को प्रगट करने के अनन्त शब्द हैं।

दुःख-समुदय आर्यसत्य है…।

दुःख-निरोध आर्यसत्य है…।

दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य है…।

§ १०. तथा सुत्त (५४. २. १०)

चार यथार्थ बातें

भिक्षुओ ! यह चार तथ्य, अवितथ, हू-ब-हू वैसे ही हैं। कौन से चार ?

भिक्षुओ ! दुःख तथ्य है, यह अवितथ, हू-ब-हू ऐसा ही है।

दुःख-समुदय…।

दुःख-निरोध…।

दुःख-निरोध-गामी मार्ग…।…

धर्मचक्र-प्रवर्तन वर्ग समाप्त

तीसरा भाग

कोटिग्राम वर्ग

§ १. पठम विज्जा सुत्त (५४. ३. १)

आर्यसत्यों के अदर्शन से ही आवागमन

ऐसा मैंने सुना।

एक समय, भगवान् वज्जी (जनपद) में कोटिग्राम में विहार करते थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—भिक्षुओ ! चार आर्यसत्यों के अनुबोध = प्रतिवेध न होने से ही दीर्घकाल से मेरा और तुम्हारा यह दौड़ना-धूपना, एक जन्म से दूसरे जन्म में पड़ना लगा रहा है। किन चार के ?

भिक्षुओ ! दुःख आर्यसत्य है, इसके अनुबोध = प्रतिवेध न होने से…'मैं, तू' चल रहा है। दुःख-समुदय…। दुःख-निरोध…। दुःख-निरोध-गामी मार्ग…।

भिक्षुओ ! उन्हीं दुःख आर्यसत्य, दुःख समुदय…। दुःख निरोध…, तथा दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य के अनुबोध = प्रतिवेध हो जाने से भव-तृष्णा उच्छिन्न हो जाती है, भव (=जीवन) का सिलसिला टूट जाता है, पुनर्जन्म नहीं होता।

भगवान् यह बोले…।

> चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान न होने से,
> दीर्घकाल से उस-उस जन्म में पड़ते रहना पड़ा।
> अब वे (चार आर्यसत्य) देख लिये गये हैं,
> भव में लानेवाली (= तृष्णा) नष्ट कर दी गई है।
> दुःखों का जड़ कट गया,
> अब, पुनर्जन्म होने का नहीं।

§ २. दुतिय विज्जा सुत्त (५४. ३. २)

वे श्रमण और ब्राह्मण नहीं

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, 'यह दुःख-समुदय है' इसे…, 'यह दुःख-निरोध है' इसे…, 'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे…, वह न तो श्रमणों में श्रमण जाने जाते हैं, और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण। वह आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को देखते ही देखते स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार नहीं करते हैं।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है। इसे यथार्थतः जानते हैं…वह आयुष्मान् श्रमण या ब्राह्मण के परमार्थ को देखते ही देखते स्वयं जान, साक्षात्कार कर और प्राप्त कर विहार करते हैं।

भगवान् यह बोले…।

> जो दुःख को नहीं जानते हैं, और दुःख की उत्पत्ति को।
> और जहाँ दुःख सभी तरह से बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है॥

उस मार्ग को भी नहीं जानते हैं, जिससे दुःखों का उपशम होता है।
चित्त की विमुक्ति से हीन, और प्रज्ञा की विमुक्ति से भी॥
वे अन्त करने में असमर्थ, जाति और जरा में पड़ते हैं।
जो दुःख को जानते हैं, और दुःख की उत्पत्ति को॥
और जहाँ दुःख सभी तरह से बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है।
उस मार्ग को भी जानते हैं, जिससे दुःखों का उपशम होता है॥
चित्त की विमुक्ति से युक्त, और प्रज्ञा की विमुक्ति से भी।
वे अन्त करने में समर्थ, जाति और जरा में नहीं पड़ते हैं॥

§ ३. सम्मासम्बुद्ध सुत्त (५४. ३. ३)

चार आर्यसत्यों के ज्ञान से सम्बुद्ध

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! आर्यसत्य चार हैं। कौन से चार ?

दुःख-आर्यसत्य···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य। भिक्षुओ ! यही चार आर्यसत्य हैं।

भिक्षुओ ! इन चार आर्यसत्यों का यथार्थतः बुद्ध को ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसी से वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कहे जाते हैं।···

§ ४. अरहा सुत्त (५४. ३. ४)

चार आर्यसत्य

श्रावस्ती···जेतवन···।

भिक्षुओ ! अतीतकाल में जिन अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध ने यथार्थ का अवबोध किया है, सभी ने इन्हीं चार आर्यसत्यों के यथार्थ का ही अवबोध किया है।

अनागतकाल में···।

वर्तमानकाल में···।

किन चार के ? दुःख आर्यसत्य का, दुःख-समुदय आर्यसत्य का, दुःख-निरोध आर्यसत्य का, दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य का ······

§ ५. आसवक्खय सुत्त (५४. ३. ५)

चार आर्यसत्यों के ज्ञान से आश्रव-क्षय

भिक्षुओ ! मैं जान और देख कर ही आश्रवों के क्षय का उपदेश करता हूँ, बिना जाने देखे नहीं। भिक्षुओ ! क्या जान और देख कर आश्रवों का क्षय होता है ?

"यह दुःख है" इसे जान और देख कर आश्रवों का क्षय होता है।···"यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है" इसे जान और देख कर आश्रवों का क्षय होता है।······

§ ६. मित्त सुत्त (५४. ३. ६)

चार आर्यसत्यों की शिक्षा

भिक्षुओ ! जिन पर तुम्हारी अनुकम्पा हो, जिन्हें समझो कि तुम्हारी बात सुनेंगे, मित्र, सलाहकार, या बन्धु-बान्धव, उन्हें चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान में शिक्षा दे दो, प्रवेश करा दो, प्रतिष्ठित कर दो।

किन चार के ? दुःख आर्य-सत्य के···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य-सत्य के।···

§ ७. तथा सुत्त (५४. ३. ७)

आर्य-सत्य यथार्थ हैं

भिक्षुओ ! आर्य-सत्य चार हैं।···

भिक्षुओ ! यह चार आर्य-सत्य तथ्य हैं, अवितथ हैं, हू-बहू वैसे ही हैं, इसी से वे आर्य-सत्य कहे जाते हैं।···

§ ८. लोक सुत्त (५४. ३. ८)

बुद्ध ही आर्य हैं

भिक्षुओ ! आर्य-सत्य चार हैं।···

भिक्षुओ ! देव-मार-ब्रह्मा सहित इस लोक में···बुद्ध ही आर्य हैं। इसलिये आर्य-सत्य कहे जाते हैं।······

§ ९. परिज्ञेय सुत्त (५४. ३. ९)

चार आर्य-सत्य

भिक्षुओ ! आर्य-सत्य चार हैं।···

भिक्षुओ ! इन चार आर्य-सत्यों में कोई आर्य-सत्य परिज्ञेय है, कोई आर्य-सत्य प्रहीण करने योग्य है, कोई आर्य-सत्य साक्षात्कार करने योग्य है, कोई आर्य-सत्य अभ्यास करने योग्य है।

भिक्षुओ ! कौन आर्य-सत्य परिज्ञेय है ? भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य परिज्ञेय है। दुःख-समुदय आर्य-सत्य प्रहाण करने योग्य है। दुःख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात्कार करने योग्य है। दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य-सत्य अभ्यास करने योग्य है।

§ १०. गवम्पति सुत्त (५४. ३. १०)

चार आर्य-सत्यों का दर्शन

एक समय, कुछ स्थविर भिक्षु चेत (जनपद) में सहञ्जनिक में विहार करते थे।

उस समय, भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद सभा-गृह में इकट्ठे हो बैठे उन स्थविर भिक्षुओं में यह बात चली, आवुस ! जो दुःखको देखता है और दुःख समुदय को, वह दुःख-निरोध को भी देख लेता है और दुःख-निरोध-गामी मार्ग को भी।

यह कहने पर आयुष्मान् गवम्पति उन स्थविर भिक्षुओं से बोले—आवुस ! मैंने भगवान् के अपने मुख से सुन कर सीखा है—

भिक्षुओ ! जो दुःख को देखता है, वह दुःख-समुदयको भी देखता है, दुःख-निरोध को देखता है, दुःख-निरोध-गामी मार्ग को भी देखता है। जो दुःख-समुदय को देखता है, वह दुःख को भी देखता है, दुःख-निरोध को भी देखता है, दुःख-निरोध-गामी मार्ग को भी देखता है। जो दुःख-निरोध को देखता है, वह दुःख को देखता है, दुःखसमुदय को भी देखता है, दुःख-निरोध-गामी मार्ग को भी देखता है। जो दुःख-निरोधगामी मार्ग को देखता है, वह दुःख को भी देखता है, दुःख-समुदय को भी देखता है, दुःख-निरोध को भी देखता है।

कोटिग्राम वर्ग समाप्त

चौथा भाग

सिंसपावन वर्ग

§ १. सिंसपा सुत्त (५४. ४. १)

कही हुई बातें थोड़ी ही हैं

एक समय, भगवान् कौशाम्बी में सिंसपावन में विहार करते थे।

तब, भगवान् ने हाथ में थोड़े-से सिंसप (= सीसम) के पत्ते लेकर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया 'भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक है, यह जो मेरे हाथ में थोड़े सिंसप के पत्ते हैं या जो ऊपर सिंसप-वन में हैं ?

भन्ते ! भगवान् ने अपने हाथ में जो सिंसप के पत्ते लिये हैं वह तो बहुत थोड़ा है, जो ऊपर इस सिंसप-वन में हैं वह बहुत हैं।

भिक्षुओ ! वैसे ही, मैंने जानकर जिसे नहीं कहा है वही बहुत है, जो कहा है यह तो बहुत थोड़ा है।

भिक्षुओ ! मैंने क्यों नहीं कहा है ? भिक्षुओ ! यह न तो अर्थ सिद्ध करनेवाला है, न ब्रह्मचर्य का साधक है, न निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न सम्बोधि और न निर्वाण के लिये है। इसीलिये मैंने इसे नहीं कहा है।

भिक्षुओ ! मैंने क्या कहा है ? यह दुःख है, ऐसा मैंने कहा है। यह दुःख-समुदय है···। यह दुःख-निरोध है···। यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है···।

भिक्षुओ ! मैंने यह क्यों कहा है ? भिक्षुओ ! यही अर्थ सिद्ध करनेवाला है···निर्वाण के लिये है। इसलिये यह कहा है।···

§ २. खदिर सुत्त (५४. ४. २)

चार आर्यसत्यों के ज्ञान से ही दुःख का अन्त

"मैं दुःख को यथार्थतः बिना जाने, दुःख-समुदय को यथार्थतः बिना जाने, दुःख-निरोध को यथार्थतः बिना जाने, दुःख-निरोधगामी मार्ग को यथार्थतः बिना जाने,···दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा," तो यह सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! जैसे, यदि कोई कहे, "मैं खैर, या पलास, या औरों के पत्तों का दोना बनाकर पानी या तेल ले आऊँ "तो यह सम्भव नहीं, वैसे ही यदि कोई कहे," मैं दुःख को बिना जाने···।

भिक्षुओ ! यदि कोई कहे, "मैं दुःख आर्यसत्य को यथार्थतः जान···दुःख-निरोध-गामी मार्ग को यथार्थतः जान दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा" तो यह सम्भव है।

भिक्षुओ ! जैसे, यदि कोई कहे "मैं पद्म, पलास या महुवा के पत्तों का दोना बनाकर पानी या तेल ले आऊँगा' तो यह सम्भव है, वैसे ही यदि कोई कहे "मैं दुःख आर्य-सत्य को यथार्थतः जान···।

§ ३. दण्ड सुत्त (५४. ४. ३)

चार आर्य-सत्यों के अ-दर्शन से आवागमन

भिक्षुओ ! जैसे लाठी ऊपर आकाश में फेंकी जाने पर एक बार मूल से गिरती है, एक बार मध्य से, और एक बार अग्र से, वैसे ही अविद्या में पड़े प्राणी, तृष्णा के बन्धन में बँधे, संसार में एक बार इस लोक से परलोक जाते हैं और एक बार परलोक से इस लोक में आते हैं। सो क्यों ? भिक्षुओ ! चार आर्य-सत्यों का दर्शन न होने से।

किन चार का ? दुःख आर्य-सत्य का…दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य सत्य का।……

§ ४. चेल सुत्त (५४. ४. ४)

जलने की परवाह न कर आर्य-सत्यों को जाने

भिक्षुओ ! कपड़े या शिर में आग पकड़ लेने से उसे क्या करना चाहिये ?

भन्ते ! कपड़े या शिर में आग पकड़ लेने से उसे बुझाने के लिये उसे अत्यन्त छन्द, व्यायाम, उत्साह, तत्परता, ख्याल और खबर गीरी करनी चाहिये।

भिक्षुओ ! कपड़े या शिर में आग पकड़ लेने पर भी उसकी उपेक्षा करके न जाने गये चार आर्य-सत्यों को यथार्थतः जानने के लिये अत्यन्त छन्द, व्यायाम, उत्साह, तत्परता, ख्याल और खबरगीरी करनी चाहिये।

किन चार को ? दुःख आर्य-सत्य को…दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्य-सत्य को।…

§ ५. सत्तिसत सुत्त (५४. ४. ५)

सौ भाले से भोंका जाना

भिक्षुओ ! जैसे, कोई सौ वर्षों की आयु वाला पुरुष हो। उसे कोई कहे, हे पुरुष ! सुबह में तुम्हें सौ भाले भोंके जायेंगे, दोपहर में भी तुम्हें सौ भाले भोंके जायेंगे, शाम में भी तुम्हें सौ भाले भोंके जायेंगे। हे पुरुष ! सो तुम इस प्रकार दिन में तीन बार सौ सौ भालों से भोंके जाते हुये सौ वर्षों के बाद न जाने गये चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त करोगे" तो हे भिक्षुओ ! परमार्थ पाने की इच्छा रखने वाले कुलपुत्र को स्वीकार कर लेना चाहिये। सो क्यों ?

भिक्षुओ ! इस संसार का छोर जाना नहीं जाता। भाले, तलवार और फरसे के प्रहार कब आरम्भ हुये (=पूर्वकोटि) पता नहीं चलता। भिक्षुओ ! बात ऐसी ही है, इसीलिये उसे मैं दुःख और दौर्मनस्य से चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त करना नहीं समझता, किन्तु सुख और सौमनस्य से।

किन चार का ?…

§ ६. पाण सुत्त (५४. ४. ६)

अपाय से मुक्त होना

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष इस जम्बूद्वीप के सारे तृण-काष्ठ-शाखा-पलास को काट कर एक जगह इकट्ठा करे, और उनके खूँटे बनावे। फिर, महासमुद्र के बड़े बड़े जीवों को बड़े खूँटे में बाँध दे; मझले जीवों को मझले खूँटे में बाँध दे; छोटे जीवों को छोटे खूँटे में बाँध दे। तो, भिक्षुओ ! महासमुद्र के पकड़े जा सकने वाले जीव समाप्त नहीं होंगे, और सारे तृण-काष्ठ…समाप्त हो जायेंगे। भिक्षुओ ! और महासमुद्र में इनसे कहीं अधिक तो वैसे सूक्ष्म जीव हैं जो खूँटे में नहीं बाँधे जा सकते हैं।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं।

भिक्षुओ ! अपाय (=यहाँ, 'नीच योनि') इतना बड़ा है। भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि से युक्त पुरुष उस अपाय से मुक्त हो जाता है, जिसने 'यह दुःख है' यथार्थतः जान लिया है···'यह दुःख-निरोध गामी मार्ग है' यथार्थतः जान लिया है।······

§ ७. पठम सुरियूप सुत्त (५४. ४. ७)

ज्ञान का पूर्व-लक्षण

भिक्षुओ ! आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण है। भिक्षुओ ! वैसे ही, सम्यक्-दृष्टि चार आर्यसत्यों के ज्ञान के लाभ का पूर्व-लक्षण है।

भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टिवाला भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः अलबत्ता जान सकता है··· यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है" इसे यथार्थतः अलबत्ता जान सकता है।···

§ ८. दुतिय सुरियूपम सुत्त (५४. ४. ८)

तथागत की उत्पत्ति से ज्ञानालोक

भिक्षुओ ! जबतक चाँद या सूरज नहीं उगता है तभी तक महान् आलोक = अवभास का प्रादुर्भाव नहीं होता है।

भिक्षुओ ! जब चाँद या सूरज उग जाता है तब महान् आलोक = अवभासका प्रादुर्भाव होता है। उस समय अन्धा बना देनेवाली अँधियारी नहीं रहती है।···रात-दिन का पता चलता है। महीना और आधे महीना का पता चलता है। ऋतु और वर्ष का पता चलता है।

भिक्षुओ ! वैसे ही जबतक तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध नहीं उत्पन्न होते हैं। तब तक महान् आलोक = अवभास का प्रादुर्भाव नहीं होता है। तब तक अन्धा बना देनेवाली अँधियारी छाई रहती है। तब तक, चार आर्य सत्यों की न तो कोई बातें करता है, न उपदेश करता है, न शिक्षा देता है, न सिद्धि करता है, न उसे खोलता है, न विभाजित करता है, न साफ करता है।

भिक्षुओ ! जब तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध संसार में उत्पन्न होते हैं तब महान् आलोक = अवभासका प्रादुर्भाव होता है। तब, अन्धा बना देने वाली अँधियारी रहने नहीं पाती। तब, चार आर्यसत्यों की बातें होने लगती हैं, शिक्षा होने लगती है, सिद्धि होती है, वह खोल दिया जाता है, विभाजित कर दिया जाता है, साफ कर दिया जाता है।

किन चार की ?···

§ ९. इन्दखील सुत्त (५४. ४. ९)

चार आर्यसत्यों के ज्ञान से स्थिरता

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे दूसरे श्रमण या ब्राह्मण का मुँह ताकते हैं—शायद यह संसार को जानता हुआ जानता होगा, देखता हुआ देखता होगा।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई हलका रूई या कपासका फाहा हवा चलते समय समतल जमीन पर फेंक दिया जाय। तब, पूरब की हवा उसे पश्चिम की ओर उड़ा कर ले जाय, पश्चिम की हवा पूरब की ओर उड़ा कर ले जाय, उत्तर की हवा दक्खिन की ओर उड़ा कर ले जाय, और दक्खिन की हवा उत्तर की ओर उड़ा कर ले जाय।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि कपास का फाहा बहुत हलका है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे दूसरे श्रमण या ब्राह्मण का मुँह ताकते हैं···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उनने चार आर्य-सत्यों का दर्शन नहीं किया है।

भिक्षुओ ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानते हैं···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है। इसे यथार्थतः जानते हैं, वे दूसरे श्रमण या ब्राह्मण का मुँह नहीं ताकते हैं···।

भिक्षुओ ! जैसे, कोई अचल, अकम्प, खूब गहरा अच्छी तरह गड़ा हुआ लोहे या पत्थर का खूँटा हो। तब, यदि पूरब की ओर से भी खूब आँधी-पानी आवे तो उसे कुछ भी कँपा नहीं सके, पश्चिम की ओर से भी···, उत्तर···, दक्खिन···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वह खूँटा इतना गहरा, और अच्छी तरह गाड़ा हुआ है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानते हैं···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानते हैं, वे दूसरे श्रमण या ब्राह्मण का मुँह नहीं ताकते···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उसने चार आर्यसत्यों का अच्छी तरह दर्शन कर लिया है।

किन चार का ? दुःख आर्यसत्य का··· दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य का।······

§ १०. वादि सुत्त (५४. ४. १०)

चार आर्यसत्यों के ज्ञान से स्थिरता

भिक्षुओ ! जो भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानता है, उसके पास यदि पूरब की ओर से भी कोई बहसी श्रमण या ब्राह्मण बहस करने के लिये आवे, तो वह उसे धर्म से कँपा देगा, ऐसा सम्भव नहीं। पच्छिम की ओर से···। उत्तर···। दक्खिन···।

भिक्षुओ ! जैसे, सोलह कुक्कु* (=उस समय में लम्बाई का एक परिमाण) का कोई पत्थर का यूप (=यज्ञ-स्तम्भ) हो। आठ कुक्कु जमीन में गड़ा हो, और आठ कुक्कु ऊपर निकला हो। तब, पूरब की ओर से खूब आँधी-पानी आवे, किन्तु उसे कँपा नहीं सके। पच्छिम···। उत्तर···। दक्खिन···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि वह पत्थर का यूप बहुत गहरा अच्छी तरह गड़ा हुआ है।

भिक्षुओ ! वैसे ही, जो भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानता है···, उसके पास यदि पूरब की ओर से···।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! क्योंकि उसने चार आर्यसत्यों का दर्शन अच्छी तरह कर लिया है।

किन चार का ?···

सिंसपावन वर्ग समाप्त

---

* सोलह हाथ—अट्ठकथा।

पाँचवाँ भाग

प्रपात वर्ग

§ १. चिन्ता सुत्त (५४. ५. १)

लोक का चिन्तन न करे

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ! बहुत पहले, कोई पुरुष राजगृह से निकल लोक का चिन्तन करने के लिये जहाँ सुमागधा पुष्करिणी थी वहाँ गया। जाकर, सुमागधा पुष्करिणी के तीर पर लोक का चिन्तन करते हुये बैठ गया।

"भिक्षुओ! उस पुरुष ने सुमागधा पुष्करिणी के तीर पर (बैठे) कमल-नालों के नीचे चतु-रंगिणी सेना को बैठती देखा। देखकर, उसके मन में हुआ, अरे! मैं क्या पागल हो गया हूँ कि मुझे यह अनहोनी बात दिखाई पड़ी है।

"भिक्षुओ! तब, वह पुरुष नगर में जाकर लोगों से बोला, भन्ते! मैं पागल हो गया हूँ कि मुझे यह अनहोनी बात दिखाई पड़ी है।

हे पुरुष! तुम कैसे पागल हो गये हो? तुमने क्या अनहोनी बात देखी है?

भन्ते! मैं राजगृह से निकल कर लोकका चिन्तन करने के लिये···। भन्ते! सो मैं पागल हो गया हूँ कि मुझे यह अनहोनी बात दिखाई पड़ी है।

हे पुरुष! तो, तुम ठीक में पागल हो कि···।

भिक्षुओ! उस पुरुष ने भूत (=यथार्थ) को ही देखा अभूत को नहीं।

भिक्षुओ! बहुत पहले देवासुर-संग्राम छिड़ा हुआ था। उस संग्राम में देवता जीत गये और असुर पराजित हुये। सो देवताओं के डर से वह असुर कमल-नाल के नीचे से होकर असुर-पुर पैठ गये।

भिक्षुओ! इसलिये लोक का चिन्तन मत करो—लोक शाश्वत है, या लोक अशाश्वत है··· [देखो, ४२·२ अव्याकृत-संयुत्त]

भिक्षुओ! यह चिन्तन न तो अर्थ सिद्ध करने वाला है, न ब्रह्मचर्य का साधक है···।

भिक्षुओ! यदि तुम्हें चिन्तन करना है तो चिन्तन करो कि 'यह दुःख है···यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है'।

सो क्यों? भिक्षुओ! क्योंकि यह चिन्तन अर्थ सिद्ध करने वाला है···।···

§ २. पपात सुत्त (५४. ५. २)

भयानक प्रपात

एक समय भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे।

तब, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "आओ भिक्षुओ! जहाँ प्रतिभानकूट है वहा दिन के विहार के लिये चलें"।

"भन्ते! बहुत अच्छा" कह, भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब, भगवान् कुछ भिक्षुओं के साथ जहाँ प्रतिभानकूट है वहाँ गये। एक भिक्षु ने वहाँ प्रतिभान-कूट पर एक महान् प्रपात को देखा। देख कर भगवान् से बोला, "भन्ते ! यह एक बड़ा भयानक प्रपात है। भन्ते ! इस प्रपात से भी बढ़ कर कोई दूसरा बड़ा भयानक प्रपात है ?"

हाँ भिक्षु ! इस प्रपात से भी बढ़ कर दूसरा बड़ा भयानक प्रपात है।

भन्ते ! वह कौन सा प्रपात है ?

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं…'यह दुःख-निरोध गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे जन्म देने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं, बुढ़ापा लाने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं, मृत्यु देने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं, शोक-परिदेव-दुःख दौर्मनस्य-उपायास लाने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं।…इस प्रकार पड़े रह, वे और भी संस्कारों का संचय करते हैं। अतः वे जाति-प्रपात में गिरते हैं, जरा-प्रपात में गिरते हैं, मरण-प्रपात में गिरते हैं, शोकादि के प्रपात में गिरते हैं। वे जाति से भी मुक्त नहीं होते, जरा से भी…, मरण से भी…, शोकादि से भी मुक्त नहीं होते। दुःख से मुक्त नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानते हैं…'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानते हैं वे जन्म देनेवाले संस्कारों में नहीं पड़ते हैं, बुढ़ापा लानेवाले संस्कारों में नहीं पड़ते हैं…। इस प्रकार न पड़ वे और भी संस्कारों का सञ्चय नहीं करते हैं। अतः, वे जाति-प्रपात में भी नहीं गिरते हैं, जरा-प्रपात में भी नहीं गिरते हैं…। वे जाति से भी मुक्त हो जाते हैं, जरा से भी…। दुःखसे मुक्त हो जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।…

§ ३. परिलाह सुत्त (५४. ५. ३)

परिदाह-नरक

भिक्षुओ ! महा-परिदाह नाम का एक नरक है। वहाँ जो कुछ आँख से देखता है अनिष्ट ही देखता है, इष्ट नहीं; असुन्दर ही देखता है, सुन्दर नहीं; अप्रिय ही देखता है, प्रिय नहीं। जो कुछ कान से सुनता है अनिष्ट ही…।…जो कुछ मन से धर्मों को जानता है अनिष्ट ही…।

यह कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! यह तो बहुत बड़ा परिदाह है। भन्ते ! इससे भी क्या कोई दूसरा बड़ा भयानक परिदाह है ?"

हाँ भिक्षु ! इससे भी एक दूसरा बड़ा भयानक परिदाह है।

भन्ते ! वह परिदाह कौन सा है जो इस परिदाह से भी बड़ा भयानक है ?

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं…'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है, इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे जन्म देनेवाले संस्कारों में पड़े रहते हैं…।… और भी संस्कारों का सञ्चय करते हैं। अतः, वे जाति-परिदाह से भी जलते हैं, जरा-परिदाह से भी जलते हैं…। वे जाति से भी मुक्त नहीं होते…। दुःख से मुक्त नहीं होते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानते हैं…'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानते हैं, वे जन्म देनेवाले संस्कारों में नहीं पड़ते…।…संस्कारों का सञ्चय नहीं करते हैं। अतः वे जाति-परिदाह से भी नहीं जलते हैं, जरा-परिदाह से भी नहीं जलते हैं…। वे जाति से मुक्त हो जाते हैं…। दुःख से मुक्त हो जाते हैं—ऐसा मैं कहता हूँ।…

§ ४. कूटागार सुत्त (५४. ५. ४)

कूटागार की उपमा

भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा कहे कि, 'मैं दुःख आर्यसत्य को बिना जाने…दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य को बिना जाने दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा,' तो यह सम्भव नहीं।

भिक्षुओ ! जैसे, जो कोई कहे कि "मैं कूटागार का निचला कमरा बिना बनाये ऊपर का कमरा चढ़ा दूँगा," तो यह सम्भव नहीं । भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कोई कहे कि "मैं दुःख-आर्यसत्य को बिना जाने···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य को बिना जाने, दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा" तो यह सम्भव नहीं ।

भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा कहे कि "मैं दुःख आर्यसत्य को जान···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य को जान दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा" तो यह सम्भव है ।

भिक्षुओ ! जैसे, जो कोई कहे कि "मैं कूटागार का निचला कमरा बनाकर ऊपर का कमरा चढ़ा दूँगा" तो यह सम्भव है । भिक्षुओ ! वैसे ही, जो कोई कहे कि "मैं दुःख आर्यसत्य को जान···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य को जान दुःखों का बिल्कुल अन्त कर लूँगा" तो यह सम्भव है ।···

§ ५. पठम छिग्गल सुत्त (५४. ५. ५)

सबसे कठिन लक्ष्य

एक समय, भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे ।

तब, पूर्वाह्ण समय आयुष्मान् आनन्द पहन और पात्र-चीवर ले वैशाली में भिक्षाटन के लिये पैठे ।

आयुष्मान् आनन्द ने कुछ लिच्छवी-कुमारों को संस्थागार में धनुर्विद्या का अभ्यास करते देखा, जो दूर से ही एक छोटे छिद्र में बाण पर बाण फेंक रहे थे ।

देखकर उनके मन में हुआ—अरे ! यह लिच्छवी-कुमार खूब सीखे हुये हैं, जो दूर से ही एक छोटे छिद्र में बाण पर बाण फेंक रहे हैं ।

तब, भिक्षाटन से लौट भोजन कर लेने के उपरान्त आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठ, आयुष्मान् आनन्द भगवान् से बोले, "भन्ते ! यह मैं पूर्वाह्ण समय···। देख कर मेरे मन में हुआ—अरे ! यह लिच्छवी-कुमार खूब सीखे हुये हैं···।"

आनन्द ! तो, तुम क्या समझते हो, कौन अधिक कठिन है, यह जो दूर से ही एक छोटे छिद्र में बाण पर बाण फेंक रहे हैं वह या यह जो बाल के कटे हुये सौवें भाग को बाण से बेध दे ?

भन्ते ! वही अधिक कठिन है, जो बाल के कटे हुये सौवें भाग को बाण से बेध दे ।

आनन्द ! किन्तु, वे सब से कठिन लक्ष्य को बेधते हैं, जो "यह दुःख है " इसे यथार्थतः बेध लेते हैं ···"यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है" इसे यथार्थतः बेध लेते हैं ।···

§ ६. अन्धकार सुत्त (५४. ५. ६)

सबसे बड़ा भयानक अन्धकार

भिक्षुओ ! एक लोक है, जो अन्धा बना देनेवाले घोर अन्धकार से ढँका है, जहाँ इतने बड़े तेज वाले चाँद-सूरज की भी रोशनी नहीं पहुँचती है ।

यह कहने पर कोई भिक्षु भगवान् से बोला, "भन्ते ! यह तो महा-अन्धकार है, सुमहा-अन्धकार है !! भन्ते ! क्या कोई इससे भी बड़ा भयानक दूसरा अन्धकार है ?"

हाँ भिक्षु ! इससे भी बड़ा भयानक एक दूसरा अन्धकार है ।

भन्ते ! वह कौन-सा दूसरा अन्धकार है जो इससे भी बड़ा भयानक है ?

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं···'यह दुःख-निरोध-

गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे जन्म देनेवाले संस्कारों में पड़े रहते हैं···जाति-अन्धकार में गिरते हैं, जरा-अन्धकार में गिरते हैं···।

भिक्षु ! जो श्रमण या ब्राह्मण 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानते हैं···, वे जन्म देनेवाले संस्कारों में नहीं पड़ते···जाति-अन्धकार में नहीं गिरते, जरा-अन्धकार में नहीं गिरते···।···

§ ७. दुतिय छिग्गल सुत्त (५४. ५. ७)

काने कछुये की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष एक छिद्रवाला एक धुर महा-समुद्र में फेंक दे। वहाँ एक काना कछुआ हो जो सौ-सौ वर्षों के बाद एक बार ऊपर उठता हो।

भिक्षुओ ! तो तुम क्या समझते हो, इस प्रकार वह कछुआ क्या उस छिद्र में अपना गला कभी घुसा देगा ?

भन्ते ! शायद बहुत काल के बाद ऐसा हो जाय।

भिक्षुओ ! इस प्रकार भी वह कछुआ शीघ्र ही उस छिद्र में अपना गला घुसा लेगा, किन्तु मूर्ख एक बार नीच गति को प्राप्त कर मनुष्यता का जल्दी लाभ नहीं करता है। सो क्यों ?

भिक्षुओ ! यहाँ धर्म-चर्या=सम-चर्या=कुशल-चर्या=पुण्य-क्रिया नहीं है। भिक्षुओ ! यहाँ एक दूसरे को खाने पर पड़ा है, सबल दुर्बल को खा जाता है। सो क्यों ?

भिक्षुओ ! चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से। किन चार का ?···

§ ८. ततिय छिग्गल सुत्त (५४. ५. ८)

काने कछुये की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, यह महा-पृथ्वी पानी से बिल्कुल लबालब भर जाय। तब कोई पुरुष एक छिद्र-वाला एक धुर फेंक दे। उसे पूरब की हवा पश्चिम की ओर बहाकर ले जाय, पश्चिम की हवा पूरब की ओर, उत्तर की हवा दक्षिण की ओर, और दक्षिण की हवा उत्तर की ओर। वहाँ कोई एक काना कछुआ हो···।

भिक्षुओ ! तो तुम क्या समझते हो, इस प्रकार वह कछुआ क्या उस छिद्र में अपना गला कभी घुसा देगा ?

भन्ते ! शायद ऐसा कभी संयोग लग जाय तो वह कछुआ उस छिद्र में अपना गला कभी घुसा दे।

भिक्षुओ ! वैसे ही, यह बड़े संयोग की बात है कि कोई मनुष्यत्व का लाभ करता है। भिक्षुओ ! वैसे ही, यह भी बड़े संयोग की बात है कि तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध लोक में उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ ! वैसे ही, यह भी बड़े संयोग की बात है कि बुद्ध का उपदिष्ट धर्म लोक में प्रकाशित हो।

भिक्षुओ ! सो तुमने मनुष्यत्व का लाभ किया है। तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध लोक में उत्पन्न हुये हैं। बुद्ध का उपदिष्ट धर्म लोक में प्रकाशित भी हो रहा है।···

§ ९. पठम सुमेरु सुत्त (५४. ५. ९)

सुमेरु की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष सुमेरु पर्वतराज से सात मूँग के बराबर कंकड़ लेकर फेंक दे।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक महान् होगा, यह जो सात मूँग के बराबर कंकड़ फेंका गया है, या यह जो पर्वतराज सुमेरु है ?

भन्ते ! यही अधिक महान् होगा, जो पर्वतराज सुमेरु है । यह सात मूँग के बराबर फेंका गया कंकड़ तो बड़ा अदना है, उसकी भला पर्वतराज सुमेरु के सामने कौन सी गिनती !!

भिक्षुओ ! वैसे ही, धर्म को समझ लेने वाले, सम्यक्-दृष्टि से युक्त आर्यश्रावक के दुःख का वह हिस्सा बहुत बड़ा है जो क्षीण=समाप्त हो गया, जो बचा है वह उसके सामने अत्यन्त अल्प है—वह 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानता है ।

§ १०. दुतिय सुमेरु सुत्त (५४. ५. १०)

सुमेरु की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, यह पर्वतराज सुमेरु सात मूँग के बराबर एक कंकड़ को छोड़ क्षीण हो जाय, समाप्त हो जाय ।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक होगा, यह जो पर्वतराज सुमेरु क्षीण हो गया है=समाप्त हो गया है, या यह जो सात मूँग के बराबर कंकड़ बचा है ?···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

प्रपात वर्ग समाप्त

छठाँ भाग

अभिसमय वर्ग

§ १. नखसिख सुत्त (५४. ६. १)

धूल तथा पृथ्वी की उपमा

तब, अपने नखाग्र पर धूल का एक कण रख, भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक है, यह जो धूल का एक कण मैंने अपने नखाग्र पर रक्खा है, या यह जो महापृथ्वी है ?

भन्ते ! यही अधिक है जो महा-पृथ्वी है। भगवान् ने जो अपने नखाग्र पर धूल का कण रख लिया है वह तो बड़ा अदना है; महापृथ्वी के सामने भला उसकी क्या गिनती !!

भिक्षुओ ! वैसे ही, धर्म को समझ लेने वाले, सम्यक्-दृष्टि से युक्त आर्यश्रावक के दुःख का वह हिस्सा बहुत बड़ा है जो क्षीण=समाप्त हो गया, जो बचा है, वह उसके सामने अत्यन्त अल्प है वह 'यह दुःख है' इसे यथार्थतः जानता है···'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' इसे यथार्थतः जानता है।

§ २. पोक्खरणी सुत्त (५४. ६. २)

पुष्करिणी की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पचास योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, और पचास योजन गहरी एक पुष्करिणी हो, जो जल से लबालब भरी हो, कि कौआ भी किनारे बैठे-बैठे पी सके। तब, कोई पुरुष कुश के अग्र भाग से कुछ पानी निकाल कर बाहर फेंक दे।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक है, यह जो कुश के अग्र भाग से कुछ पानी निकाल कर बाहर फेंका गया है, या यह जो जल पुष्करिणी में है ?

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ३. पठम सम्बेज्ज सुत्त (५४. ६. ३)

जलकण की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, जहाँ गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही इत्यादि महानदियाँ गिरती हैं वहाँ से कोई पुरुष दो या तीन जल-कण निकाल कर फेंक दे।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ४. दुतिय सम्बेज्ज सुत्त (५४. ६. ४)

जलकण की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, जहाँ···महानदियाँ गिरती हैं वहाँ का सारा जल दो या तीन कण छोड़कर क्षीण हो जाय = समाप्त हो जाय।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ५. पठम पठवी सुत्त (५४. ६. ५)

पृथ्वी की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष इस महापृथ्वी से सात बेर की गुठली के बराबर एक ढेला ले कर फेंक दे।

भिक्षुओ ! तो क्या समझते हो, कौन अधिक है, यह जो सात बेर की गुठली के बराबर ढेला है, या यह जो महापृथ्वी है ?

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ६. दुतिय पठवी सुत्त (५४. ६. ६)

पृथ्वी की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, सात बेर की गुठली के बराबर एक ढेला को छोड़, यह महापृथ्वी क्षीण=समाप्त हो जाय।

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ७. पठम समुद्द सुत्त (५४. ६. ७)

महासमुद्र की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष महासमुद्र से दो या तीन जल-कण निकाल ले।

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ८. दुतिय समुद्द सुत्त (५४. ६. ८)

महा-समुद्र की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, दो या तीन जल-कण को छोड़ महा-समुद्र का सारा जल क्षीण=समाप्त हो जाय।

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ ९. पठम पब्बतुपमा सुत्त (५४. ६. ९)

हिमालय की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, कोई पुरुष पर्वतराज हिमालय से सात सरसों के बराबर एक कंकड़ लेकर फेंक दे।

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

§ १०. दुतिय पब्बतुपमा सुत्त (५४. ६. १०)

हिमालय की उपमा

भिक्षुओ ! जैसे, सात सरसों के बराबर एक कंकड़ को छोड़ पर्वतराज हिमालय क्षीण=समाप्त हो जाय।

···[ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये]

अभिसमय वर्ग समाप्त

सातवाँ भाग

सप्तम वर्ग

§ १. अञ्ञत्र सुत्त (५४. ७. १)

धूल तथा पृथ्वी की उपमा

तब, अपने नखपर कुछ धूल रख भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया, "भिक्षुओ ! ···कौन अधिक है, यह मेरे नखपर रक्खी हुई धूल या यह महापृथ्वी ?

भन्ते ! यही अधिक है जो महापृथ्वी है···।

भिक्षुओ ! वैसे ही, वे जीव बहुत कम हैं जो मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं; वे जीव बहुत हैं जो मनुष्य-योनि से दूसरी-दूसरी योनियों में जनमते हैं । सो क्यों ?

भिक्षुओ ! चार आर्य-सत्यों का दर्शन न होने से ।

किन चार का ? दुःख आर्यसत्य का···दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य का ।···

§ २. पच्चन्त सुत्त (५४. ७. २)

प्रत्यन्त जनपद की उपमा

···[ऊपर जैसा ही]

भिक्षुओ ! वैसे ही, वे बहुत थोड़े हैं जो मध्यम जनपदों में जन्म लेते हैं; वे बहुत हैं जो प्रत्यन्त जनपदों में अज्ञ म्लेच्छों के बीच पैदा होते हैं ।···

§ ३. पञ्ञा सुत्त (५४. ७. ३)

आर्य-प्रज्ञा

···भिक्षुओ ! वैसे ही, वे बहुत थोड़े हैं जो आर्य प्रज्ञा-चक्षु से युक्त हैं; वे बहुत हैं जो अविद्या में पड़े सम्मूढ़ हैं ।···

§ ४. सुरामेरय सुत्त (५४. ७. ४)

नशा से विरत होना

···भिक्षुओ ! वैसे ही, वे बहुत थोड़े हैं जो सुरा, मेरय (= कच्ची शराब), मद्य, इत्यादि नशीली चीज़ों से विरत रहते हैं; वे बहुत हैं जो इनसे विरत नहीं रहते हैं ।···

§ ५. आदेक सुत्त (५४. ७. ५)

स्थल और जल के प्राणी

···भिक्षुओ ! वैसे ही, वे प्राणी बहुत थोड़े हैं जो स्थल पर पैदा होते हैं; वे प्राणी बहुत हैं जो जल में पैदा होते हैं ।···

§ ६. मत्तेय्य सुत्त (५४. ७. ६)

मातृ-भक्त

…वे बहुत थोड़े हैं जो मातृभक्त हैं; वे बहुत हैं जो मातृ-भक्त नहीं हैं।…

§ ७. पेत्तेय्य सुत्त (५४. ७. ७)

पितृ-भक्त

…वे बहुत थोड़े हैं जो पितृ-भक्त हैं; वे बहुत हैं जो पितृ-भक्त नहीं हैं।…

§ ८. सामञ्ञ सुत्त (५४. ७. ८)

श्रामण्य

…वे बहुत थोड़े हैं जो श्रमण (= मुक्ति के लिये श्रम करने वाले) हैं; वे बहुत हैं जो श्रमण नहीं हैं।…

§ ९. ब्रह्मञ्ञ सुत्त (५४. ७. ९)

ब्राह्मण्य

…वे बहुत थोड़े हैं जो ब्राह्मण हैं; वे बहुत हैं जो ब्राह्मण नहीं हैं।…

§ १०. पचायिक सुत्त (५४.७.१०)

कुल के जेठों का सम्मान करना

…वे बहुत थोड़े हैं जो कुल के जेठों का सम्मान करते हैं; वे बहुत हैं जो कुल के जेठों का सम्मान नहीं करते हैं।…

सप्तम वर्ग समाप्त

आठवाँ भाग

अप्पका विरत वर्ग

§ १. पाण सुत्त (५४. ८. १)

हिंसा

…भिक्षुओ ! वैसे ही, वे बहुत थोड़े हैं जो जीव-हिंसा से विरत रहते हैं; वे बहुत हैं जो जीव-हिंसा से विरत नहीं रहते हैं।…

§ २. अदिन्न सुत्त (५४. ८. २)

चोरी

…वे बहुत थोड़े हैं जो अदत्तादान (= चोरी) से विरत रहते हैं… ।

§ ३. कामेसु सुत्त (५४. ८. ३)

व्यभिचार

…वे बहुत थोड़े हैं जो कामों में मिथ्याचार (= व्यभिचार) से विरत रहते हैं… ।

§ ४–१०. सब्बे सुत्तन्ता (५४. ८. ४–१०)

मृषा-वाद

…जो मृषा-वाद (= झूठ बोलने) से… ।
…जो चुगली खाने से… ।
…जो कठोर भाषण करने से… ।
…जो गप्पें मारने से… ।
…जो बीज-वनस्पति के नाश करने से… ।
…जो विकाल-भोजन से… ।
…जो माला-गन्ध-विलेपन के व्यवहार करने और अपने को सजने-धजने से विरत रहते हैं… ।

अप्पका विरत वर्ग समाप्त

नवाँ भाग

आमकधान्य-पेय्याल

§ १. नच्च सुत्त (५४. ९. १)

नृत्य

…जो नाचने, गाने, बजाने, और अश्लील हाव-भाव देखने से विरत रहते हैं… ।

§ २. सयन सुत्त (५४. ९. २)

शयन

…जो ऊँची और महार्घ शय्या के व्यवहार से विरत रहते हैं… ।

§ ३. रजत सुत्त (५४. ९. ३)

सोना-चाँदी

…जो सोना-चाँदी के ग्रहण करने से… ।

§ ४. धञ्ञ सुत्त (५४. ९. ४)

अन्न

…जो कच्चा अन्न लेने से विरत रहते हैं… ।

§ ५. मंस सुत्त (५४. ९. ५)

माँस

…जो कच्चा माँस ग्रहण करने से… ।

§ ६. कुमारिय सुत्त (५४. ९. ६)

स्त्री

…जो स्त्री-कुमारी के ग्रहण करने विरत रहते हैं… ।

§ ७. दासी सुत्त (५४. ९. ७)

दासी

…जो दासी-दास के ग्रहण करने से विरत रहते हैं… ।

§ ८. अजेळक सुत्त (५४. ९. ८)

भेड़-बकरी

…जो भेड़-बकरी के ग्रहण करने से विरत रहते हैं… ।

§ ९. कुक्कुटसूकर सुत्त (५४. ९. ९)

मूर्गा-सूअर

···जो मुर्गे और सूअर के ग्रहण करने से···।

§ १०. हत्थि सुत्त (५४. ९. १०)

हाथी

···जो हाथी-गाय-घोड़ा-घोड़ी के ग्रहण करने से···।

आमकधान्य-पेय्याल समाप्त

दसवाँ भाग

बहुतर सत्व वर्ग

§ १. खेत्त सुत्त (५४. १०. १)

खेत

...जो खेत-वस्तु के ग्रहण करने से...।

§ २. कयविक्कय सुत्त (५४. १०. २)

क्रय-विक्रय

...जो क्रय-विक्रय से विरत रहते हैं... ।

§ ३. दूतेय्य सुत्त (५४. १०. ३)

दूत

...जो दूत के काम में कहीं जाने से विरत... ।

§ ४. तुलाकूट सुत्त (५४. १०. ४)

नाप-जोख

...जो नाप-जोख में ठगी करने से विरत... ।

§ ५ उक्कोटन सुत्त (५४. १०. ५)

ठगी

...जो ठगने, धोखा देने, दग़ा देने से विरत...।

§ ६-११. सब्बे सुत्तन्ता (५४. १०. ६-११)

काटना-मारना

...जो काटने-मारने-बाँधने-चोरी-डकैती, क्रूर कर्म से विरत रहते हैं... ।

बहुतर सत्व वर्ग समाप्त

ग्यारहवाँ भाग

गति-पञ्चक वर्ग

§ १. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १)

नरक में पैदा होना

···भिक्षुओ ! वैसे ही, ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं जो मरकर फिर भी मनुष्य ही के यहाँ जन्म लेते हैं; वे बहुत हैं जो मरने के बाद नरक में पैदा होते हैं।···

§ २. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. २)

पशु-योनि में पैदा होना

···वे बहुत हैं जो मरने के बाद तिरश्चीन (=पशु) योनि में पैदा होते हैं।···

§ ३. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. ३)

प्रेत-योनि में पैदा होना

···वे बहुत हैं जो मरने के बाद प्रेत-योनि में पैदा होते हैं।···

§ ४–६. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. ४-६)

देवता होना

भिक्षुओ ! वैसे ही, ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं जो मरकर देवों के बीच उत्पन्न होते हैं; वे बहुत हैं जो नरक में··· ।

तिरश्चीन-योनि में··· ।

प्रेत-योनि में··· ।

§ ७-९. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. ७-९)

देवलोक में पैदा होना

···भिक्षुओ ! वैसे ही, ऐसे बहुत थोड़े हैं जो देवलोक से मर कर देवलोक में ही उत्पन्न होते हैं। वे बहुत हैं जो देवलोक में मरकर नरक में···तिरश्चीन योनि में···प्रेत-योनि में··· ।

§ १०-१२. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १०-१२)

मनुष्य योनि में पैदा होना

···भिक्षुओ ! वैसे ही, ऐसे बहुत थोड़े हैं जो देवलोक में मर कर मनुष्य-योनि में उत्पन्न होते हैं; वे बहुत हैं जो देवलोक में मर कर नरक···तिरश्चीन-योनि में···प्रेत-योनि में··· ।

§ १३-१५. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १३-१५)

नरक से मनुष्य-योनि में आना

···भिक्षुओ ! वैसे ही, ऐसे बहुत थोड़े हैं जो नरक में मर कर मनुष्य-योनि में उत्पन्न होते हैं; वे बहुत हैं जो नरक में मर कर नरक में···तिरश्चीन-योनि में···प्रेत-योनि में··· ।

§ १६-१८. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १६-१८)

नरक से देवलोक में आना

…ऐसे बहुत थोड़े हैं जो नरक में मर कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं… [ऊपर जैसा ही लगा लेना चाहिये ।]

§ १९-२१. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १९-२१)

पशु से मनुष्य होना

…ऐसे बहुत थोड़े हैं जो तिरश्चीन-योनि में मर कर मनुष्य-योनि में उत्पन्न… ।

§ २२-२४ पञ्चगति सुत्त (५४. ११. १२-२४)

पशु से देवता होना

…ऐसे बहुत थोड़े हैं जो तिरश्चीन-योनि में मर कर देवलोक में उत्पन्न… ।

§ २५-२७. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. २५-२७)

प्रेत से मनुष्य होना

ऐसे बहुत थोड़े हैं जो प्रेत-योनि में मर कर मनुष्य-योनि में उत्पन्न… ।

§ २८-३०. पञ्चगति सुत्त (५४. ११. २८-३०)

प्रेत से देवता होना

…ऐसे बहुत थोड़े हैं जो प्रेत-योनि में मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं; वे बहुत हैं जो प्रेत-योनि में…मरकर नरक में…तिरश्चीन-योनि में…प्रेत-योनि में…।

सो क्यों ? भिक्षुओ ! चार आर्यसत्यों का दर्शन नहीं होने से ।

किन चार का ? दुःख आर्यसत्य का, दुःख-समुदय आर्यसत्य का, दुःख-निरोध आर्यसत्य का, दुःख-निरोध-गामी मार्ग आर्यसत्य का ।

भिक्षुओ ! इसलिये, 'यह दुःख है' ऐसा समझना चाहिये; 'यह दुःख-समुदय है' ऐसा समझना चाहिये; 'यह दुःख-निरोध है' ऐसा समझना चाहिये; 'यह दुःख-निरोध-गामी मार्ग है' ऐसा समझना चाहिये ।

भगवान् यह बोले । संतुष्ट हो भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया ।

गतिपञ्चक वर्ग समाप्त

सत्य-संयुत्त समाप्त

महावर्ग समाप्त

संयुत्त निकाय समाप्त

परिशिष्ट

१. उपमा-सूची

२. नाम-अनुक्रमणी

---

३. शब्द-अनुक्रमणी